# वेदों में आयुर्वेद

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्
ज्ञानपुर ( भदोही )

ओ३म्

वेदामृतम् : भाग १३-१६

# वेदों में आयुर्वेद

## (Medical Sciences in the Vedas)

लेखक

**पद्मश्री डा० कपिलदेव द्विवेदी**

निदेशक

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्

ज्ञानपुर (भदोही)

एवं

**डा० भारतेन्दु द्विवेदी**

प्रवक्ता - संस्कृत

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

हमीरपुर (उ०प्र०)

**विश्वभारती अनुसंधान परिषद्**

**ज्ञानपुर ( भदोही ) उ०प्र०**

VEDĀMṚTAM : VOL. XIII - XVI

# VEDOṆ MEṆ ĀYURVEDA

## (MEDICAL SCIENCES IN THE VEDAS)

BY : Dr. K.D. DVIVEDI & Dr. B. DVIVEDI



संस्करण : २००१

ISBN 81-85246-36-X

प्रकाशक :
विश्वभारती अनुसंधान परिषद्
ज्ञानपुर ( भदोही )

मुद्रक :
सुरभि प्रिंटर्स
इण्डियन प्रेस कालोनी, मलदहिया, वाराणसी

# संकेत - सूची

| | | |
|---|---|---|
| अ०, अथर्व० | : | अथर्ववेद संहिता |
| अ० | : | अध्याय |
| अ० परि०, अथर्वपरि० | : | अथर्वपरिशिष्ट |
| अथर्व० चि० शा० | : | अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र |
| अष्टांग० | : | अष्टांग हृदय |
| आश्व० | : | आश्वलायन श्रौतसूत्र |
| इक्षु० | : | इक्षुवर्ग |
| IMM | : | Indian Materia Medica |
| उत्तर० | : | उत्तरस्थान |
| उप० | : | उपनिषद् |
| ऋग्० | : | ऋग्वेद संहिता |
| ऐत० ब्रा० | : | ऐतरेय ब्राह्मण |
| ऐन्द्र० | : | ऐन्द्रजालिक |
| कठ० | : | कठसंहिता |
| कपि० | : | कपिष्ठलसंहिता |
| कर्पूरादि० | : | कर्पूरादि वर्ग |
| कल्प० | : | कल्पस्थान |
| काठक०, काठक सं० | : | काठक संहिता |
| केशव० | : | केशवपद्धति |
| कौ० सूत्र, कौशिक० | : | कौशिक सूत्र |
| गुडू०, गुडूच्यदि० | : | गुडूच्यादिवर्ग |
| गो० ब्रो० | : | गोपथ ब्राह्मण |
| चरक० | : | चरकसंहिता |
| चि०, चिकित्सा० | : | चिकित्सा स्थान |
| चिकित्सित० | : | चिकित्सित स्थान |
| छान्दो० उप० | : | छान्दोग्य उपनिषद् |
| ज्वर० | : | ज्वर चिकित्सित |
| तै० ब्रा० | : | तैत्तिरीय ब्राह्मण |
| तैत्ति०, तैत्ति० सं० | : | तैत्तिरीय संहिता |

| | | |
|---|---|---|
| धातु० | : | धातुवर्ग |
| धान्य० | : | धान्यवर्ग |
| नि० | : | निघण्टु |
| निदान० | : | निदान स्थान |
| परि० | : | परिशिष्ट |
| पार० गृ० | : | पारस्कर गृह्यसूत्र |
| पुष्पादि० | : | पुष्पादि वर्ग |
| पूर्व० | : | पूर्वभाग |
| पृ० | : | पृष्ठ |
| पै०, पैप्प० | : | पैप्ललादि संहिता |
| फलादि० | : | फलादि वर्ग |
| ब्रा० | : | ब्राह्मण |
| बृहद्० | : | बृहद् देवतानुक्रमणी |
| भाव०, भावप्रकाश० | : | भावप्रकाश निघण्टु |
| मनु० | : | मनुस्मृति |
| मैत्रा०, मैत्रा० सं० | : | मैत्रायणी संहिता |
| यजु० | : | यजुर्वेद संहिता |
| राज नि० | : | राज निघण्टु |
| वटादि० | : | वटादि वर्ग |
| शत०, शतपथ० | : | शतपथ ब्राह्मण |
| शां० गृ० | : | शांखायन गृह्यसूत्र |
| शांखा० श्रौत० | : | शांखायन श्रौतसूत्र |
| शाक० | : | शाकवर्ग |
| शारी०, शारीर० | : | शारीर स्थान |
| सं० | : | संहिता |
| सर्पविष० | : | सर्पविष-चिकित्सा |
| साम० | : | सामवेद संहिता |
| सुश्रुत० | : | सुश्रुत संहिता |
| सूत्र० | : | सूत्रस्थान |
| हरी०, हरीत०, हरीतक्यादि० | : | हरीतक्यादि वर्ग |

---

ओम्

## प्राक्कथन

**वेदों का महत्त्व**—वेद आर्यजाति के सर्वस्व हैं और मानवमात्र के लिए प्रकाशस्तम्भ एवं शक्तिस्रोत हैं। वेदों का ज्ञान ही मानव जाति को सुख और शान्ति दे सकता है। वही अज्ञान, निराशा, अनाचार और आधि-व्याधि से मुक्त करके जीवन का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

**वेद और आयुर्वेद**—मनु का कथन है कि 'सर्वज्ञानमयो हि सः' (मनु० २.७) वेदों में सभी विद्याओं का भंडार है। वेदों में आयुर्वेद-विषयक सैकड़ों मन्त्र हैं, जिनमें विविध रोगों की चिकित्सा वर्णित है। अथर्ववेद को भेषज अर्थात् भिषग्वेद के नाम से पुकारा गया है। चरक और सुश्रुत में आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग बताया गया है। इससे ज्ञात होता है कि आयुर्वेद का उद्गम स्रोत अथर्ववेद है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में भी आयुर्वेद-विषयक पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।

ऋग्वेद आदि में ओषधियों का भी यथास्थान उल्लेख है। ऋग्वेद में ६७ वनस्पतियों का उल्लेख है, यजुर्वेद में ८२ और अथर्ववेद में २८८ का। इनका विस्तृत विवरण अध्याय १२ में दिया गया है।

**अध्यायों का विभाजन**—अध्यायों के विभाजन में चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेदीय ग्रन्थों की विभाजन-प्रक्रिया को अपनाया गया है। इस प्रकार क्रमशः सूत्रस्थान, शारीर-स्थान, निदान-स्थान और चिकित्सा-स्थान अध्यायों को रखा गया है। शरीरांगों आदि के अनुसार रोगों को क्रमबद्ध किया गया है। प्राकृतिक चिकित्सा का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शल्य-चिकित्सा पर महत्त्वपूर्ण सामग्री एकत्र की गई है।

**वेदामृतम्-ग्रन्थमाला**—इस ग्रन्थमाला के १२ पुष्प जनता की सेवा में अर्पित किए जा चुके हैं। भाग १३. शरीर-विज्ञान, भाग १४. रोग-चिकित्सा, भाग १५. विष-चिकित्सा और भाग १६. विविध ओषधियाँ, ये चारों भाग इस ग्रन्थ में एकत्र किए गए हैं। इससे आयुर्वेद-विषयक समस्त सामग्री एक स्थान पर संगृहीत हो सकी है। उपयोगिता की दृष्टि से चारों भागों को इकट्ठा छापना उचित समझा गया। छपाई की कुछ कठिनाइयों के कारण सभी पाद-टिप्पणियाँ प्रत्येक अध्याय के अन्त में क्रमशः दी गई हैं। पाठक उन्हें वहाँ देखने का कष्ट करें।

**आयुर्वेद**—आयुर्वेद जीवन का अंग है। जन्म से लेकर मृत्यु तक आयुर्वेद की आवश्यकता होती है। कालिदास का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि—'शरीरमाद्यं खुल धर्मसाधनम्' यह स्वस्थ शरीर ही धर्म का साधन है। स्वस्थ रहने की पद्धति का उपदेष्टा आयुर्वेद है। आधि और व्याधियों की चिकित्सा आयुर्वेद द्वारा ही संभव है, अतः यह शास्त्र हमारे जीवन का अभिन्न अंग है।

मैंने प्रयत्न किया है कि विषय से संबद्ध कोई भी आवश्यक सामग्री छूटने न पावे। साथ ही विषय को जितना अधिक सुबोध बनाया जा सके, उतना सुबोध बनाया जाए। ओषधियों के विवरण आदि में भी विषय का स्पष्टीकरण आवश्यक समझा गया है।

सूत्रस्थान, शारीर स्थान, निदान स्थान और चिकित्सा स्थान अध्यायों के लेखन में चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांगहृदय का पर्याप्त सहयोग लिया गया है। शल्यचिकित्सा अध्याय के लेखन में डा० रामजीत विश्वकर्मा प्रणीत 'वैदिक साहित्य में शल्य-चिकित्सा' से विशेष सहायता मिली है। 'विविध ओषधियाँ' अध्याय के लेखन में भावप्रकाश निघण्टु, आचार्य प्रियव्रत शर्मा कृत 'द्रव्यगुण विज्ञान' (भाग ४), डा० राजीव कमल के ग्रन्थ 'Economy of Plants in the Vedas' से विशेष सहायता मिली है। श्री स्वामी ब्रह्ममुनि कृत 'अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र' ग्रन्थ से भी उपयोगी सामग्री ली गई है। तदर्थ इनका आभारी हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशन की व्यवस्था ज्येष्ठ पुत्र डा० भारतेन्दु द्विवेदी ने की है। प्रूफ रीडिंग आदि कार्यों में परिवार के इन सदस्यों से विशेष सहयोग मिला है:—धर्मेन्दु, ज्ञानेन्दु, विश्वेन्दु, आर्येन्दु एवं पुत्रवधुएँ श्रीमती सविता, जया एवं सुनीता। इन सभी को हार्दिक आशीर्वाद है।

आशा है यह ग्रन्थ वेद एवं आयुर्वेद के प्रति जन-साधारण की रुचि जागृत करेगा और उनके लिए उपयोगी सिद्ध होगा। यदि इस ग्रन्थ के द्वारा जनता-जनार्दन की कुछ भी अर्चना हो सकी तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा।

**—डा० कपिलदेव द्विवेदी**

शान्ति निकेतन
ज्ञानपुर (वाराणसी)
दिनांक १४.१.१९९३ ई०
(मकर संक्रान्ति २०४९ वि०)

# विषयानुक्रमणिका

## अध्याय - ३

## निदान - स्थान ३५-४४



## अध्याय - ४

## चिकित्सा - स्थान ४५-१३६

## अध्याय - ६

अध्याय - १०



अध्याय - ११

**अध्याय - १२**

**विविध ओषधियाँ** २३३-२६१



---

अध्याय १

# सूत्रस्थान

१. वेद और आयुर्वेद
२. आयुर्वेद और उसके उद्देश्य
३. आयुर्वेद के ८ अंग
४. चिकित्सा चार प्रकार की
५. वैद्य और उसके कर्तव्य
६. चिकित्सालय और रोगी की शुश्रूषा
७. नीरोगता
८. दीर्घायुष्य
९. ओज, तेज, वर्चस् और ज्योति
१०. बल और शक्ति

ओम्

अध्याय-१

# सूत्रस्थान

## १. वेद और आयुर्वेद

वेद विश्व-संस्कृति के आधार-स्तम्भ हैं । आदिकाल से ही वेद मानवजाति के लिए प्रकाश-स्तम्भ रहे हैं । वेदों में ज्ञान और विज्ञान का अनन्त भंडार विद्यमान है । अतएव मनु ने वेदों को सर्वज्ञानमय कहा है, अर्थात् वेदों में सभी प्रकार का ज्ञान और विज्ञान निहित है ।[१] आयुर्वेद शास्त्र की दृष्टि से वेदों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि चारों वेदों में आयुर्वेद के विभिन्न अंगों और उपांगों का यथास्थान विशद वर्णन हुआ है ।

**ऋग्वेद और आयुर्वेद**—ऋग्वेद में आयुर्वेद के महत्त्वपूर्ण तथ्यों का यथास्थान विवेचन प्राप्त होता है । इसमें आयुर्वेद का उद्देश्य, वैद्य के गुण-कर्म, विविध ओषधियों के लाभ आदि, शरीर के विभिन्न अंग, विविध चिकित्साएँ, अग्नि-चिकित्सा, जलचिकित्सा, वायुचिकित्सा, सूर्यचिकित्सा, शल्यचिकित्सा, हस्तस्पर्श-चिकित्सा, यज्ञचिकित्सा, विष-चिकित्सा, कृमिनाशन, दीर्घायुष्य, तेज, ओज, नीरोगता, वशीकरण, कुस्वप्न-नाशन आदि का विशिष्ट वर्णन प्राप्त होता है ।[२] इनका आगे यथास्थान विवेचन किया गया है ।

**यजुर्वेद और आयुर्वेद**—यजुर्वेद में आयुर्वेद से संबद्ध निम्नलिखित विषयों की सामग्री प्राप्त होती है:—वैद्य के गुण-कर्म, विभिन्न ओषधियों के नाम आदि, शरीर के विभिन्न अंग, चिकित्सा, दीर्घायुष्य, नीरोगता, तेज, वर्चस्, बल, अग्नि और जल के गुण-कर्म आदि ।[३]

**सामवेद और आयुर्वेद**—सामवेद में आयुर्वेद-विषयक सामग्री अत्यन्त न्यून है । इसमें आयुर्वेद से संबद्ध कुछ मंत्र निम्नलिखित विषयों के प्रतिपादक हैं—वैद्य, चिकित्सा, दीर्घायुष्य, तेज, ज्योति, बल, शक्ति आदि ।[४]

**अथर्ववेद और आयुर्वेद**—आयुर्वेद की दृष्टि से अथर्ववेद अत्यन्त महनीय ग्रन्थ है । इसमें आयुर्वेद के प्रायः सभी अंगों और उपांगों का विस्तृत वर्णन मिलता है । अथर्ववेद आयुर्वेद का मूल-आधार है । इसमें आयुर्वेद से संबद्ध निम्नलिखित विषयों

का वर्णन प्राप्त होता है—भिषज् या वैद्य के गुण-कर्म, भैषज्य, शरीरांग, दीर्घायुष्य, नीरोगता, तेज, वर्चस्, वशीकरण, वाजीकरण, रोगनाशक, विभिन्न मणियाँ, विविध ओषधियों के नाम और गुण-कर्म, रोगनाम एवं चिकित्सा, कृमिनाशन, सूर्यचिकित्सा, जलचिकित्सा, विषचिकित्सा, पशुचिकित्सा, प्राण-चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा आदि ।[५]

अथर्ववेद में ही इस वेद को भेषज या भिषग्वेद नाम से पुकारा गया है ।[६] गोपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद के मन्त्रों को आयुर्वेद से संबद्ध बताया गया है और अथर्वा का अर्थ भेषज किया गया है ।[७] शतपथ ब्राह्मण में यजुर्वेद के एक मन्त्र की व्याख्या में प्राण को अथर्वा कहा गया है । इसका अभिप्राय यह है कि प्राणविद्या या जीवन-विद्या आथर्वण विद्या है ।[८]

अथर्ववेद का एक नाम ब्रह्मवेद भी है ।[९] गोपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्रह्म शब्द भी भेषज और भिषग्वेद का बोधक है । जो अथर्वा है, वह भेषज है, जो भेषज है, वह अमृत है, जो अमृत है, वह ब्रह्म है । अर्थात् भेषज और ब्रह्म शब्द समानार्थक हैं ।[१०] गोपथ ब्राह्मण के अनुसार अंगिरस् का संबन्ध आयुर्वेद और शरीरविज्ञान से है । अंगों के रसों अर्थात् तत्त्वों का जिसमें वर्णन किया जाता है, वह अंगिरस् है । अंगों से जो रस निकलता है, वह अंगरस है, उसी को अंगिरस् कहा जाता है ।[११] गोपथ में अन्यत्र वर्णन है कि रस या रसायन-विज्ञान को अंगिरस् कहते हैं ।[१२]

## २. आयुर्वेद और उसके उद्देश्य

चरक और सुश्रुत में आयुर्वेद का लक्षण और उसके उद्देश्यों का विशेष विस्तार से वर्णन किया गया है ।

**आयुर्वेद का लक्षण**—चरक ने आयुर्वेद का लक्षण दिया है—'आयुर्वेदयति इति आयुर्वेदः' ।[१३] जो आयु का ज्ञान कराता है, वह आयुर्वेद है । इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि आयुर्वेद ही मनुष्य की आयु के लिए हितकर (पथ्य) और अहितकर (अपथ्य) वस्तुओं का वर्णन करता है, सुखकर और दुःखदायी कारणों का वर्णन करता है, पदार्थों की ग्राह्य मात्रा और अनुचित मात्रा का उपदेश देता है तथा आयुवर्धक और आयुनाशक द्रव्यों गुणों और कर्मों का वर्णन करता है । इसमें आयु की इयत्ता और आयु के स्वरूप का भी वर्णन होता है ।[१४] सुश्रुत का कथन है कि जिसमें आयु के हितकर और अहितकर तत्त्वों का विचार हो और जो दीर्घ आयु प्राप्त कराता है, वह आयुर्वेद है ।[१५]

**आयुर्वेद का उद्देश्य**—चरक ने आयुर्वेद का उद्देश्य बताया है—स्वस्थ पुरुष

के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी व्यक्ति के रोग को दूर करना ।[१६] सुश्रुत ने भी यही भाव दिया है कि रोगी को रोग से मुक्त करना और स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा करना, ये ही दो आयुर्वेद के मुख्य प्रयोजन हैं ।[१७] पाश्चात्त्य चिकित्साशास्त्र में स्वास्थ्यरक्षण को Preventive Medicine and Hygiene तथा चिकित्साविभाग को Curative Medicine कह कर दो विभाग किए गए हैं ।

चरक का कथन है कि धातुओं की विषमता को रोग कहते हैं और धातुओं की समता को नीरोगता या स्वस्थता । आरोग्य का ही नाम सुख है और रोगावस्था का नाम दुःख है ।[१८] अतएव धातुओं को सम अवस्था में रखना आयुर्वेद का उद्देश्य है ।[१९]

**वेदों में आयुर्वेद के उद्देश्य**—वेदों में आयुर्वेद के उद्देश्यों का यत्र-तत्र उल्लेख और संकेत है ।

**(क) मृत्यु या रोग के कारणों का निवारण**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में कहा गया है कि—मृत्यु के कारणों को दूर करें ।[२०] **(ख) दीर्घायु की प्राप्ति**—हम दीर्घायु प्राप्त करें ।[२१] **(ग) आचार-विचार की शुद्धि**—दीर्घायु का साधन बताया गया है—आचार और विचार की शुद्धता ।[२२] पवित्र आचार और विचार से रोगों को नष्ट करके दीर्घायु हों । **(घ) रोग के कारणों का उन्मूलन**— तैत्तिरीय संहिता का कथन है कि जिन कारणों से रोग होता है, उन्हें दूर किया जाए ।[२३] **(ङ) जीवन का काल शतायु**—जीवन की सीमा सौ वर्ष या इससे अधिक होने का उल्लेख है ।[२४] वेदों में अनेक स्थानों पर दीर्घायु, शतायु और पूर्णायु या सर्वायु का उल्लेख है ।[२५] **(च) आत्मा और शरीर की पुष्टता**—अथर्ववेद में शरीर के अंगों की नीरोगता और आत्मा की अजेयता की प्रार्थना की गई है ।[२६] **(छ) रोग के कीटाणुओं का नाशन**—अथर्ववेद में सभी रोगों का कारण विष बताया गया है और उस विष या रोगकृमि को नष्ट करने का उल्लेख है ।[२७]

इस प्रकार आयुर्वेद के मूलभूत तत्त्वों में रोगनाशन, पूर्ण स्वस्थता, शतायु होना, रोगकृमिनाशन और आचार-विचार की शुद्धि का उल्लेख मिलता है ।

## ३. आयुर्वेद के ८ अंग

यद्यपि वैदिक वाङ्मय में आयुर्वेद के ८ अंगों का यत्र-तत्र वर्णन प्राप्त होता है, परन्तु आठ अंगों का कहीं पर स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । इससे ज्ञात होता है कि आयुर्वेद का आठ अंगों में विभाजन परकालीन चिन्तन है ।

चरक, सुश्रुत और अष्टांगहृदय में इन आठ अंगों का कुछ नामभेद से उल्लेख प्राप्त होता है । सुश्रुत ने इनके नाम दिए हैं:—१. शल्यचिकित्सा, २. शालाक्य

चिकित्सा, ३. कायचिकित्सा, ४. भूतविद्या, ५. कौमारभृत्य, ६. अगद तन्त्र, ७. रसायन तन्त्र, ८. वाजीकरण तन्त्र ।[२८] चरक ने इनके नाम दिए हैं—१. कायचिकित्सा, २. शालाक्य, ३. शल्यापहर्तृक (शल्य तंत्र), ४. विषगर-वैरोधिक-प्रशमन (अगदतंत्र), ५. भूतविद्या, ६. कौमारभृत्य, ७. रसायन, ८. वाजीकरण ।[२९] अष्टांगहृदय में इनके नाम हैं:—१. कायचिकित्सा, २. बालचिकित्सा, ३. ग्रहचिकित्सा, ४. ऊर्ध्वांग-चिकित्सा, ५. शल्यचिकित्सा, ६. दंष्ट्राचिकित्सा (विषचिकित्सा), ७ जराचिकित्सा (रसायन), ८. वृषचिकित्सा (वाजीकरण) ।[३०]

**१. कायचिकित्सा**—संपूर्ण शरीर की चिकित्सा । शरीर के सभी अंगों के रोगों की चिकित्सा कायचिकित्सा है । काय का अर्थ जाठराग्नि भी लिया गया है, तदनुसार अर्थ होगा—जठर (पेट) संबन्धी अग्नि की चिकित्सा ।

**२. बालचिकित्सा**—इसको कौमारभृत्य भी कहते हैं । इसका अर्थ है—बालकों का भरण-पोषण और उनके रोगों की चिकित्सा । इसे Science of Paediatrics कहते हैं ।

**३. ग्रहचिकित्सा**—इसे भूतविद्या भी कहते हैं । इसमें देवी विपत्तियों एवं ग्रहों आदि के कुप्रभाव को दूर करने के लिए शान्तिकर्म आदि का विधान है । इसे Demonology कहते हैं ।

**४. ऊर्ध्वांग-चिकित्सा**—इसे शालाक्य चिकित्सा भी कहते हैं । इसमें गले से ऊपर के सभी अंगों अर्थात् आँख, नाक, कान, गले आदि के रोगों की चिकित्सा का समावेश है । डॉक्टरी में इसे कायचिकित्सा का ही अंग माना जाता है ।

**५. शल्यचिकित्सा**—इसको शल्यतंत्र भी कहते हैं । इसमें तीक्ष्ण औजारों आदि के द्वारा चीर-फाड़ आदि का कार्य किया जाता है और दूषित तत्त्वों को निकाला जाता है । इसे Surgery कहते हैं ।

**६. विषचिकित्सा**—इसको अगदतंत्र, दंष्ट्राचिकित्सा, विषगर-वैरोधिक-प्रशमन भी कहते हैं । इसमें सर्प आदि के विष को दूर करने का विधान है । इसे Toxicology कहते हैं ।

**७. रसायनतन्त्र**—इसे रसायन या जराचिकित्सा भी कहते हैं । इसमें युवावस्था को अधिक समय तक बनाए रखना, बुढ़ापे के प्रभाव को दूर करना और शारीरिक शक्ति को बढ़ाने के उपायों का वर्णन होता है ।

**८. वाजीकरणतन्त्र**—इसे वृषचिकित्सा भी कहते हैं । शुक्ररहित को शुक्रयुक्त बनाने की विधि को वाजीकरण कहते हैं । इस चिकित्सा के द्वारा वीर्यहीन को भी वीर्ययुक्त बनाया जाता है ।

वेदों में कायचिकित्सा, विषचिकित्सा, शालाक्यचिकित्सा या आँख सिर आदि के रोगों की चिकित्सा और शल्यचिकित्सा का बहुत विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। इनका आगे यथास्थान वर्णन किया गया है। बालचिकित्सा या कौमारभृत्य का वर्णन बहुत कम है। इसी प्रकार ग्रहचिकित्सा, रसायनतन्त्र और वाजीकरण के प्रसंग अल्पमात्रा में ही प्राप्त होते हैं।

## ४. चिकित्सा चार प्रकार की

अथर्ववेद में चार प्रकार की ओषधियों और चिकित्सा-विधियों का उल्लेख मिलता है।[३१] ये हैं:—

**१. आथर्वणी चिकित्सा**—इस चिकित्सा-विधि का संबन्ध अथर्वन् या अथर्वा ऋषि से है। इस चिकित्सा-विधि के विषय में मतैक्य नहीं है, परन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि यह शान्तियुक्त विधि से की जाने वाली चिकित्सा है। अथर्वा का अर्थ योगी है। इसमें ध्यान, मनन, चिन्तन और मनोयोग से होने वाली चिकित्सा का समावेश है। अतएव इसे मानस चिकित्सा-विधि या Psycho-Therapy कह सकते हैं। इसमें मंत्रशक्ति, जप, पूजा-पाठ, आश्वासन-प्रक्रिया आदि के द्वारा प्राणशक्ति की वृद्धि और रोगनाशन किया जाता है।[३२] इसमें मनोबल को प्रदीप्त करके इच्छाशक्ति से रोगों को नष्ट या क्षीणप्राय किया जाता है। अतः Auto-Suggestion की विधि भी इसके अन्तर्गत आती है।[३३]

**२. आंगिरसी चिकित्सा**—इसका संबन्ध अंगिरस् या अंगिरा ऋषि से है। इसकी दो व्याख्याएँ हो सकती हैं—(क) अंगिरस् की व्याख्या गोपथ और शतपथ ब्राह्मण में अंग-रस की गई है।[३४] अंगों के रस से होने वाली चिकित्सा आंगिरसी है। इसमें अंगों का रस अर्थात् रक्त आदि दूसरों को चढ़ाना, शरीर में बाह्य रसों को पहुँचाना, शरीर में अन्य कार्यशील तत्त्वों को पहुँचाना, वृक्ष-वनस्पति आदि के पोषक तत्त्वों को शरीर में पहुँचाना, रोगी के शरीर में अन्य शक्ति-प्रेरक तत्त्वों को पहुँचाना आदि का समावेश होगा। अतः यह पद्धति कुछ अंशों तक Allopathic पद्धति से साम्य रखती है।

(ख) आंगिरस की दूसरी व्याख्या घोर कृत्यों से संबद्ध है। कौषीतकि ब्राह्मण, शांखायन श्रौतसूत्र, आश्वलायन श्रौतसूत्र और छान्दोग्य उपनिषद् में आंगिरस को घोर आंगिरस नाम से संबोधित किया गया है।[३५] अंगिरा ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्रों में व्रण-चिकित्सा, शत्रुनाशन, शत्रुसेनानाशन, मणि द्वारा समस्त रोगों शत्रुओं और राक्षसों के नाशन आदि का वर्णन है।[३६] यह भी वर्णन किया गया है कि ऋषि घोर होते हैं। इनकी दृष्टि और इनका चिन्तन सत्य है अर्थात् ये सूक्ष्मदृष्टि हैं।[३७]

आंगिरस विधि से शल्यक्रिया या चीर-फाड़ (Surgery) की विधि ली जा सकती है । इसमें सूक्ष्म दृष्टि, क्रूर-कृत्य अंग-छेदन आदि की क्षमता और रोगों के ठीक कारणों आदि का ज्ञान अनिवार्य है ।

**३. दैवी चिकित्सा**—पृथिवी आदि पंचतत्त्वों को देव कहते हैं । सूर्य, चन्द्र आदि भी देव हैं । अतः मृत्-चिकित्सा, जलचिकित्सा, अग्नि-चिकित्सा, वायु-चिकित्सा, सूर्य-चिकित्सा, प्राणायाम-चिकित्सा आदि चिकित्साएँ दैवी चिकित्सा के अन्तर्गत आती हैं । आधुनिक विज्ञान के अनुसार इसे प्राकृतिक चिकित्सा या Naturopathy कह सकते हैं ।

**४. मनुष्यजा या मानवी चिकित्सा**—यह मानवों द्वारा बनाई गई चिकित्सा है । इसमें मानवों द्वारा निर्मित चूर्ण, अवलेह, भस्म, कल्प, आसव, वटी आदि संमिलित हैं । यह चिकित्सा ओषधि-चिकित्सा है, अतः इसे Drug-Therapy कह सकते हैं ।

## ५. वैद्य और उसके कर्तव्य

वेदों में वैद्य और उसके कर्तव्यों का अनेक स्थानों पर वर्णन है । वैद्य के मुख्य कर्तव्य ये बताए गए हैं—

१. रक्षोहा-राक्षसों अर्थात् रोग-कृमियों का नाशक हो ।[३८]

२. अमीवचातन—रोगों को नष्ट करे ।

३. विप्र—अपने विषय का विशेषज्ञ हो ।

४. समस्त ओषधियों का संग्रह करे ।

५. चिकित्सा का कार्य करना ।[३९]

६. रोग के कारणों को नष्ट करना ।[४०]

७. ओषधियों के द्वारा शरीर के सभी दोषों को बाहर निकालना ।[४१]

८. शरीर को नीरोग बनाना ।[४२]

९. दीर्घायु प्रदान करना ।[४३]

१०. शल्यचिकित्सा के द्वारा टूटी हड्डियों आदि को जोड़ना ।[४४]

अथर्ववेद का कथन है कि वैद्य रोगों के विस्तार को रोककर उसकी सीमा टावे ।[४५] वह ओषधिनिर्माण के द्वारा मनुष्यों और पशुओं आदि को नीरोग खे ।[४६] वह सहस्रों ओषधियों का ज्ञान प्राप्त करे ।[४७] वैद्य के लिए कहा गया है क वह निरन्तर अपना अभ्यास बढ़ाता रहे, चिकित्सा कार्य करता रहे और पवित्र ोवन बितावे, तभी वह उच्चकोटि का वैद्य बन सकता है ।[४८] वैद्य ऐसी शक्तिवर्धक

ओषधियों का निर्माण करे, जिससे बुढ़ापे का प्रभाव न होने पावे और मनुष्य सौ वर्ष तक तेजस्वी होकर जीवित रहे ।[४९]

चरक, सुश्रुत और अष्टांगहृदय में वैद्य के गुणों और कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन है । उपर्युक्त सभी तत्त्वों का उनमें समावेश पाया जाता है । चरक ने योग्य वैद्य के प्रमुख चार गुण बताए हैं[५०]— (१) शास्त्र का अच्छे प्रकार से ज्ञान रखना, (२) अनेक बार रोगी, औषध-निर्माण और औषध-प्रयोग का प्रत्यक्ष-द्रष्टा होना, (३) दक्ष या चतुर होना, अर्थात् समयानुसार ठीक औषध का निर्णय करना और उसका प्रयोग करना, (४) पवित्रता, अर्थात् आन्तरिक और बाह्य शुद्धि । आन्तरिक शुद्धि से अभिप्राय है—संयमी एवं पवित्र जीवन बिताना । बाह्य शुद्धि से अभिप्राय है—शरीर और वस्त्रादि को स्वच्छ रखना । अष्टांगहृदय में भी वैद्य के ये चार गुण बताए गए हैं—दक्षता, गुरु से शास्त्र का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना, औषध-प्रयोग आदि कर्मों को स्वयं देखकर ज्ञान प्राप्त करना तथा बाह्य और आभ्यन्तर पवित्रता ।[५१]

सुश्रुत ने उच्चकोटि के वैद्य को 'भिषक्पाद' कहा है और उसके गुण तथा कर्तव्य बताए हैं कि वह शास्त्र का ज्ञाता हो, औषध-निर्माण आदि को स्वयं देखा हो, स्वयं औषध-निर्माण और चिकित्सा का कार्य करता हो, सिद्धहस्त हो, पवित्र और वीर हो, सब साधन तैयार रखता हो, प्रत्युत्पन्नमति और विद्वान् हो, कठिन परिस्थिति में भी धैर्य न छोड़ता हो, सब क्रियाओं में दक्ष हो, सत्यनिष्ठ और धार्मिक वृत्तिवाला हो ।[५२]

सुश्रुत ने इस बात पर भी बल दिया है कि केवल शास्त्रज्ञान से ही योग्य वैद्य नहीं हो सकता है, अपितु उसे क्रियात्मक ज्ञान भी होना आवश्यक है, अन्यथा वह कठिन रोगों आदि में भयभीत हो जाएगा । अतः सिद्धान्त और क्रियात्मक दोनों पक्षों का जानने वाला ही उत्तम वैद्य होता है ।[५३] सुश्रुत ने इस बात की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है कि योग्य वैद्य होने के लिए आवश्यक है कि उसे अपने शास्त्र के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों का भी ज्ञान हो और वह बहुश्रुत हो ।[५४]

## ६. चिकित्सालय और रोगी की शुश्रूषा

अथर्ववेद के वर्णन से ज्ञात होता है कि मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सालय थे । मंत्र में मनुष्य और गाय अश्व आदि पशुओं का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इनकी जीवन रक्षा होनी चाहिए ।[५५] दूसरे मन्त्र में कहा गया है कि यहाँ आकर सभी मनुष्य और पशु नीरोग और स्वस्थ हो जाते हैं ।[५६] साथ ही ग्राम का भी उल्लेख है । इससे ज्ञात होता है कि चिकित्सालय की व्यवस्था ग्रामों में भी प्रचलित थी । इनकी व्यवस्था अच्छी होने पर ही कहा जा सकता था कि यहाँ आने

पर मनुष्य और पशु सभी नीरोग हो जाते हैं । गाय और घोड़े आदि के उल्लेख से ज्ञात होता है कि मनुष्यों के चिकित्सालय के तुल्य पशुओं के चिकित्सालय की भी व्यवस्था थी ।

रोगी की परिचर्चा और शुश्रूषा के विषय में एक महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि वैद्य रोगी को आश्वासन देता रहे कि वह डरे नहीं, उसका रोग शीघ्र ठीक हो जाएगा । यहाँ आकर कोई मरता नहीं है । मैं मृत्यु के मुँह से तुझे छुड़ा लाऊँगा ।[५७] इस प्रकार के आश्वासनों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है और रोगी नीरोग हो जाता है । रोगी के मनोबल को उद्दीप्त करने से मानसिक शक्ति विद्युत् के तुल्य काम करती है और रोगों को जड़ से नष्ट कर देती है । आधुनिक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा में भी यही पद्धति अपनाई जाती है ।

चरक संहिता के सूत्रस्थान में चिकित्सालय (अस्पताल) के निर्माण का वर्णन है । अस्पताल में ओषधियों की सुन्दर व्यवस्था, शौचालय मूत्रालय आदि की व्यवस्था, पूर्ण स्वच्छता, मनोरंजन के साधन, सभी प्रकार के यन्त्र और शस्त्र (औजार), रोगियों को देने के लिए फल मेवा आदि की व्यवस्था आवश्यक बताई है । वैद्य और चिकित्सक के लिए कहा है कि वे अनुभवी, योग्य, सहृदय और उपचार-कुशल हों ।[५८]

## ७. नीरोगता

वेदों में नीरोगता के कुछ साधन बताए गए हैं । दीर्घायु के जो साधन बताए गए हैं, वे नीरोगता के आधार हैं । कुछ अन्य साधन ये हैं:—

**१. पाँच आरोग्यकारक तत्त्व**—अथर्ववेद के एक सूक्त में पाँच आरोग्यकारक तत्त्वों का उल्लेख है । ये हैं:—पर्जन्य (वर्षा का जल), मित्र (प्राणशक्ति), वरुण (जल), चन्द्र और सूर्य ।[५९] वर्षा का जल शुद्ध और रोगनाशक है । प्राणवायु शरीर को शक्ति प्रदान करती है । जल शरीर के दूषित तत्त्वों को बाहर निकालता है । चन्द्रमा इन्द्रियों और मन को शान्ति एवं शक्ति देता है । सूर्य शरीर का पोषक और रक्षक है ।

**२. शुद्ध और निर्विष अन्न का सेवन**—अथर्ववेद का कथन है कि शुद्ध अन्न शक्तिवर्धक और रोगनाशक होता है । जौ और चावल पोषक और रोगनाशक हैं ।[६०] अन्न के विषय में आवश्यक बताया गया है कि नीरोगता के लिए निर्विष अन्न ही खाया जाय ।[६१]

**३. भोजन के नियम**—अथर्ववेद में नीरोगता के लिए भोजन के कुछ नियम बताए गए हैं । ये हैं:—(क) ठीक चबाकर खाना,[६२] ठीक चबाकर खाया गया अन्न

बलवर्धक और पोषक होता है । (ख) ठीक ढंग से पानी पीना,[६३] पेय वस्तुओं को ठीक ढंग से और उचित मात्रा में पिया जाय । उचित मात्रा में पिया गया जल आदि रोगनाशक और शरीरशोधक होता है । (ग) ठीक ढंग से निगलना,[६४] भोजन जितनी शान्ति से किया जाता है और मुख की राल के साथ निगला जाता है, वह उतना ही पौष्टिक और सुपाच्य होता है । शीघ्रता से खाया हुआ भोजन अपाच्य होता है और अजीर्ण (कब्ज) करता है । इसलिए आयुर्वेद में भोजन के लिए तीन नियम बताए गए हैं:—(क) हितभुक्—हितकारी भोजन करना, (ख) मितभुक्—अल्प या संतुलित मात्रा में भोजन करना, (ग) ऋतभुक्—सात्त्विक एवं ईमानदारी से कमाया गया अन्न ही खाना । 'कोऽरुक्' कौन नीरोग रहता है ? इसके उत्तर में ये उपर्युक्त तीन बातें कही गई हैं ।

**४. मल-मूत्र के वेग को न रोकना**—मल और मूत्र के वेग को रोकने से नाना प्रकार की व्याधियाँ होती हैं, अतः उन्हें न रोके । अथर्ववेद में मूत्र के वेग को रोकने से मूत्रकृच्छ्र का वर्णन किया गया है और मूत्र को तुरन्त निकालना आवश्यक बताया गया है ।[६५] चरक ने 'न वेगान् धारणीय' अध्याय में इसका विस्तृत वर्णन किया है । वहाँ मूत्रादि रोकने से होने वाले रोगों और उपचारों का भी वर्णन है ।[६६]

**५. त्रिदोषज विकारों को रोकना**—वात, पित्त और कफ के विकार से सारे रोग होते हैं और इनको सम रखने से नीरोगता होती है ।[६७] अथर्ववेद में अभ्रज (कफ), वातज (वात) और शुष्म (पित्त) के विकार से होने वाले सिरदर्द और कास (खांसी) आदि रोगों का उल्लेख किया गया है और इनकी चिकित्सा ओषधि-सेवन एवं पर्वतों का आश्रय लेना बताया गया है ।[६८]

**६. सात्त्विक विचारों को ही अपनाना**—अष्टांगहृदय का कथन है कि रोगों के दो आश्रयस्थान हैं—शरीर और मन । मानसिक रोग रजोगुण और तमोगुण से उत्पन्न होते हैं ।[६९] यजुर्वेद में नीरोगता के लिए शुभ विचारों को उपादेय बताया गया है ।[७०] अथर्ववेद में उत्तम भावनाओं और विचारों से दीर्घायु की प्राप्ति बताई गई है ।[७१]

**७. प्रसन्नचित्त रहना**—प्रसन्नचित्त रहने से मनुष्य नीरोग, दीर्घायु और तेजस्वी होता है ।[७२]

**८. पापों और दुर्गुणों से बचना**—पापों, दुष्कर्मों और दुर्व्यसनों के परित्याग से मनुष्य नीरोग और दीर्घायु होता है ।[७३]

**९. शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखना**—अथर्ववेद का कथन है कि शरीर में नेत्र

आदि ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर के रक्षक हैं। इनको पुष्ट रखने से मनुष्य नीरोग और दीर्घायु होता है।[७४]

**१०. सूर्योदय से पूर्व उठना**—अथर्ववेद का कथन है कि उदय होता हुआ सूर्य सोने वाले का तेज हर लेता है।[७५] इसलिए नीरोगता और तेजस्विता के लिए सूर्योदय से पूर्व उठना आवश्यक है।

## ८. दीर्घायुष्य

चारों वेदों में दीर्घायु से संबद्ध सैकड़ों मन्त्र हैं। इन मंत्रों में विभिन्न देवों से दीर्घायु की प्रार्थना की गई है। कुछ मंत्रों में दीर्घायु के उपायों का भी उल्लेख है। अनेक मंत्रों में प्रार्थना की गई है कि हम नीरोग रहते हुए सौ वर्ष या उससे भी अधिक समय तक देखें, सुनें, बोलें, जीवित रहें, प्रबुद्ध हों और उन्नति करते रहें।[७६] दीर्घायु की कामना को सौ वर्ष तक ही सीमित न रखकर ३०० वर्ष तक की आयु की कामना की गई है और कहा गया है कि जमदग्नि और कश्यप ऋषि ३०० वर्ष जीवित रहे। देवों और ऋषियों की आयु ३०० वर्ष तक की होती है, वह ३०० वर्ष की आयु हमें भी प्राप्त हो।[७७] अथर्ववेद के एक मंत्र में इससे भी आगे बढ़कर सहस्र वर्ष की आयु की कामना की गई है।[७८] साथ ही इन मंत्रों में दीर्घायु और सहस्रायु के कुछ उपाय भी बताए गए हैं :—

(१) सुकृतः—सत्कर्मों को करना, (२) आवृतो ब्रह्मणा वर्मणा—ज्ञानरूपी कवच का आश्रय लेना, (३) ज्योतिषा वर्चसा च—जीवन तेजस्वी और वर्चस्वी हो, (४) ऋतेन गुप्तः—सत्य भाषण और सत्य व्यवहार का आश्रय लेना, (५) ऋतुभिश्च सर्वैः गुप्तः—ऋतु के अनुसार जीवनचर्या, (६) मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युः—मृत्यु या अल्पायु के कारण पाप या दुष्कर्म हैं, इनका परित्याग करना। (७) अग्निर्मा गोप्ता—अग्नि रक्षक है। शारीरिक अग्नि को सदा प्रज्वलित रखना, उसे मन्द न होने देना। (८) उद्यन् सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्—उदय होता हुआ सूर्य मृत्यु के कारणों को नष्ट कर देता है, अतः उदय होते हुए सूर्य की किरणों को अपने शरीर पर पड़ने देना। (९) व्युच्छन्तीः उषसः—उषाकाल या ब्राह्म मुहूर्त में उठना, धारणा, ध्यान आदि कार्य करना। (१०) पर्वता ध्रुवाः—पर्वतों का आश्रय लेना, पर्वतों पर जाना और रहना तथा पर्वतों की स्वच्छ वायु का सेवन करना। (११) सहस्रं प्राणा मयि आ यतन्ताम्—उपर्युक्त साधन मनुष्य को सौगुनी या हजारगुनी प्राणशक्ति देकर सहस्रायु बनाते हैं।[७९]

**दीर्घायु के उपाय**—उपर्युक्त सहस्रायु के साधनों के अतिरिक्त अन्य उपाय भी दीर्घायु के बताए गए हैं। संक्षेप में वे उपाय ये हैं:—

**१. रजोगुण और तमोगुण से बचना**—मंत्र में कहा गया है कि दीर्घायु के लिए रजोगुण और तमोगुण में न फंसें । रजोगुण राग-द्वेषादि-मूलक है, अतः आयु को क्षीण करता है । तमोगुण आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता और अविवेक का कारण है, अतः वह मनुष्य की जीवनी शक्ति को नष्ट करता है । दीर्घायु के लिए सत्त्वगुणप्रधान जीवन और सात्त्विक वृत्तियाँ आवश्यक हैं ।[८०]

**२. सत्य को अपनाना**—सत्यनिष्ठता, सत्य व्यवहार और सात्त्विक जीवन मृत्यु को दूर करने के सर्वोत्तम साधन हैं ।[८१]

**३. प्राण और अपान शक्ति का संयम**—अनेक मंत्रों में प्राण और अपान शक्ति के संयम को मृत्यु का नाशक और दीर्घायु का साधन बताया गया है ।[८२] मित्र और वरुण शब्दों से भी प्राण और अपान शक्ति को पुष्ट करना दीर्घायु के लिए आवश्यक बताया गया है ।[८३] प्राण और अपान शक्ति को पुष्ट करने का साधन प्राणायाम है ।

**४. चिन्ता का त्याग**—चिन्ता मनुष्य की आधि-व्याधि को बढ़ाती है, अतः उसका परित्याग करें । दुःख आदि की बीती बातों को भुला दें ।[८४]

**५. सूर्य और वायु से शक्ति प्राप्त करना**—सूर्य से दर्शन-शक्ति और वायु से प्राण-शक्ति प्राप्त करना दीर्घायु का साधन है ।[८५] सूर्य की किरणों को दीर्घायु का दाता और मृत्यु से रक्षक बताया गया है ।[८६] सूर्यकिरणचिकित्सा शीर्षक में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है ।

**६. अग्नि से प्राणशक्ति**—अग्नि प्राणशक्ति का दाता है ।[८७] शरीर में आग्नेय तत्त्वों को बढ़ाना और जठराग्नि को प्रदीप्त रखना शरीर को नीरोग एवं हृष्ट-पुष्ट बनाता है ।

**७. दुर्व्यसनों और दुर्गुणों का परित्याग**—दीर्घायु के लिए दुर्गुणों और दुर्व्यसनों का परित्याग आवश्यक है । मंत्र में 'दुरित' शब्द के द्वारा दुर्गुणों और दुर्व्यसनों का ग्रहण है ।[८८] ये दोनों मनुष्य की जीवनी शक्ति को नष्ट करके उसे अल्पायु बनाते हैं ।

**८. ओषधि-सेवन**—ओषधियों का महत्त्व बताया गया है कि ये मनुष्य को बड़े से बड़े रोगों और मृत्यु से बचाती हैं ।[८९] ओषधियाँ रोगनाशक और शक्तिवर्धक हैं । इनमें सहस्रों प्रकार की शक्ति हैं ।[९०] ये शरीर को नवीन बना देती हैं और दीर्घायु प्रदान करती हैं ।[९१]

**९. सूर्य, चन्द्रमा और ओषधियाँ**—एक मंत्र में सूर्य, चन्द्रमा और ओषधियों को दीर्घायु का साधन बताया गया है ।[९२] उदय होता हुआ सूर्य सभी रोगों का

नाशक है। चन्द्रमा ओषधियों का राजा है। सूर्य आग्नेय तत्त्वों को बढ़ाता है तो चन्द्रमा सोमीय गुणों का वर्धक है। चन्द्रमा शीतलता, सरसता, शान्ति और आह्लादकता प्रदान करता है। सोम्य गुणों से शान्ति, हर्ष और सद्भावों की वृद्धि होती है। ओषधियाँ सूर्य और चन्द्र के गुणों को ग्रहण करके अग्नि और सोम-तत्त्वों को पूर्ण करती हैं।

**१०. अज्ञान का त्याग और ज्योति का मार्ग अपनाना**—अज्ञानवश मनुष्य अपथ्य करता है और रोगग्रस्त होता है, अतः अज्ञान को दूर करके ज्योति का मार्ग अपनाना दीर्घायु का साधन बताया गया है।[६३] इसका अभिप्राय यह है कि दीर्घायु के लिए स्वास्थ्य-संबन्धी नियमों का ज्ञान और उनका पालन अनिवार्य है।

**११. इच्छाशक्ति और आत्मिक बल**—इच्छाशक्ति और मनोबल मनुष्य को दीर्घायु बनाते हैं। आत्मिक शक्ति रोगों को नष्ट करके शतायु और पुष्ट बनाती है।[६४] असुरों से विद्ध इन्द्र ने मनोबल (स्वधा) का आश्रय लेकर अपनी रक्षा की और मनोबल से आत्मिक शक्ति प्राप्त की।[६५]

**१२. शुद्ध जल का उपयोग**—शुद्ध वायु के तुल्य शुद्ध जल सर्वरोगनाशक है। वर्षा के जल को दिव्य जल कहा गया है और उसका गुण बताया गया है कि वह अमृत के तुल्य है और ओषधिरूप है।[६६]

**१३. मणि और रत्नधारण**—विविध मणियों और रत्नों को धारण करना दीर्घायु का साधन बताया गया है। अथर्ववेद में हिरण्य (सुवर्ण) तथा जंगिड आदि मणियों को सर्वरोगनिवारक एवं दीर्घायु का साधक कहा गया है।[६७]

**दीर्घायु के साधन**—अथर्ववेद में अनेक सूक्त हैं, जिनमें दीर्घ आयु की प्रार्थनाएँ की गई हैं। इनमें आयुवृद्धि के कतिपय साधनों का भी उल्लेख है। चारों वेदों में प्राकृतिक चिकित्सा और प्रकृति के सदुपयोग को दीर्घायु का सर्वोत्तम साधना बताया गया है। सूर्य की किरणों का सेवन, शुद्ध वायु में रहना और प्राणायाम आदि द्वारा शुद्ध वायु अपने अन्दर लेना, यज्ञ और अग्नि को अपनाना, शुद्ध जल का उचित मात्रा में प्रयोग आदि से शरीर स्वस्थ रहता है और दीर्घायु प्राप्त होती है।[६८] चिन्ताओं का त्याग दीर्घायु का उत्तम साधन है। बीती बातों को भुला देना चाहिए।[६९] मन को पवित्र रखने, सात्त्विक विचारों को अपनाने और सत्त्वगुणों के समावेश से आयु बढ़ती है। राजस और तामस विचार आयु को क्षीण करते हैं।[१००] सत्य बोलना, सत्यव्यवहार और सत्यनिष्ठा से जीवन की रक्षा होती है।[१०१] पवित्र एवं सात्त्विक अन्न खाने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। अपवित्र या विषैला अन्न आयु को क्षीण करता है।[१०२] दीर्घायु के लिए आवश्यक है कि मनुष्य स्वावलम्बी

और पुरुषार्थी हो ।[१०३] शारीरिक स्वस्थता, नीरोगता, शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखना और अपने पुरुषार्थ पर निर्भर रहना मनुष्य को शतायु बनाते हैं ।[१०४] अथर्ववेद का कथन है कि ओषधियों में और जल में दैवी शक्ति है । इनके ठीक सेवन से मनुष्य शतायु होता है ।[१०५] ओषधियों में सोमीय तत्त्व है । ये मरणासन्न व्यक्ति को भी मृत्यु से बचाकर दीर्घायु बनाती है ।[१०६] अथर्ववेद के एक सूक्त में बताया गया है कि दाक्षायण मणि (सुवर्णमणि) के धारण से मनुष्य दीर्घायु, शतायु, तेजस्वी और बलवान् होता है ।[१०७] अथर्ववेद में उग्रौषधि (दर्भ, कुशा, शब्द ४२) और दर्भ (कुशा, शब्द ११३) मणि के धारण को दीर्घायुष्य का साधन बताया गया है ।

## ६. ओज, तेज, वर्चस् और ज्योति

चारों वेदों में ओज, तेज, वर्चस् और ज्योति का सैकड़ों मंत्रों में वर्णन हुआ है और इनकी प्राप्ति के लिए देवों से प्रार्थना की गई है ।

सुश्रुत ने शरीरस्थ सभी धातुओं के उत्कृष्ट सार भाग (तेज) को 'ओज' कहा है । ओज के कारण ही मनुष्य में बल होता है । अतः बल को भी ओज कहते हैं । ओज के कारण मनुष्य में कार्य करने की शक्ति आती है और ज्ञानेन्द्रियाँ अपना काम उत्तम रीति से करती हैं । ओज का स्थान हृदय है, परन्तु वह रक्त के साथ सारे शरीर में व्याप्त होकर रहता है । ओज की स्थिति से शरीर की स्थिति है और ओज के क्षय होने से शरीर का नाश हो जाता है । ओज ही जीवन का आधार है ।[१०८]

ऋग्वेद में अक्षय ओज की प्रार्थना की गई है ।[१०९] ओज से मनुष्य उन्नति करता है ।[११०] सर्वश्रेष्ठ ओज और शक्ति हमें प्राप्त हो ।[१११] प्रजा जनों में ओज और तेज हो ।[११२] तेज के कारण ही सूर्य-चन्द्रदि प्रकाशमान हैं ।[११३] हम वर्चस्वी हों ।[११४] हमें तेज और महान् शक्ति प्राप्त हों ।[११५] मैं अमर ज्योति प्राप्त करूँ ।[११६] विद्वान् अन्धकार को हटाकर ज्योति प्राप्त करता है ।[११७] अश्विनी देवों ने मानव मात्र को ज्योति दी है ।[११८]

यजुर्वेद में अनेक मंत्रों में ओज, तेज आदि की प्रार्थना की गई है । इन्द्र ओज के कारण उन्नतिशील है । इन्द्र देवों में सबसे अधिक ओजस्वी है, मैं मनुष्यों में सबसे अधिक ओजस्वी होऊँ ।[११९] अग्नि देवों में सबसे अधिक वर्चस्वी है, मैं मनुष्यों में सबसे अधिक वर्चस्वी होऊँ ।[१२०] सूर्य सबसे अधिक ज्योतिर्मय है, मैं मनुष्यों में सबसे अधिक ज्योतिर्मय होऊँ ।[१२१] हे ईश ! तुम ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को तेजस्वी बनाओ ।[१२२] वर्चस्विता से मनुष्य में कर्मठता और दक्षता आती है ।[१२३] तेजस्विता मनुष्य की इन्द्रियों को पवित्र करती है ।[१२४] वर्चस् से आत्मिक

शक्ति, ओज और दीर्घायु प्राप्त होती हैं ।[१२५] वर्चस् से प्राण आदि शक्तियाँ, वाक्शक्ति, दर्शनशक्ति, श्रवणशक्ति, कर्मठता आदि प्राप्त होती हैं ।[१२६]

सामवेद में अनेक मंत्रों में ओज और तेज की प्रार्थना है । अग्नि हमें वर्चस् और महान् शक्ति दे ।[१२७] इन्द्र हमें ज्ञान, तेज और स्थायी शक्ति दे ।[१२८] सोम हमें वर्चस्विता के लिए शक्ति, वेग और सौन्दर्य दे ।[१२९] परमात्मा का श्रेष्ठ तेज हम हृदय में धारण करते हैं ।[१३०] ओज की प्राप्त के लिए हम अग्नि को नमस्कार करते हैं ।[१३१] तेज से मनुष्य देव लोक तक पहुँच जाता है ।[१३२] परमात्मा हमें तेज और यश दे ।[१३३] उदार परमात्मा ज्योति देकर हमारी रक्षा करता है ।[१३४] परमात्मा हमें सदा ज्योति और आनन्द दे ।[१३५]

अथर्ववेद में भी अनेक मंत्रों में तेज और वर्चस् की प्रार्थना की गई है । मैं ब्रह्मवर्चस् से वर्चस्वी होऊँ ।[१३६] दिव्य जल हमें वर्चस् प्रदान करे ।[१३७] मैं तेज से तेजस्वी होऊँ ।[१३८] अश्विनी देव मुझे वर्चस्, तेज, बल और ओज दें ।[१३९] सूर्य में जितना तेज है, उतना तेज मुझे प्राप्त हो ।[१४०] देवता ज्योति के कारण देवलोक को प्राप्त हुए ।[१४१] पृथिवी हमें तेजस्वी और तीक्ष्ण शक्ति से युक्त करे ।[१४२] सूर्य, अग्नि और ब्राह्मण में जो तेज है, वह हमें प्राप्त हो ।[१४३] परमात्मा ओजरूप है, वह हमें ओज दे ।[१४४] परमात्मा तेजरूप है, वह हमें तेज दे ।[१४५] हमें तेज, ज्ञान और दिव्य प्रकाश प्राप्त हो ।[१४६] तेज और कान्ति हमें कभी न छोड़े ।[१४७] अग्नि मेरे शरीर में ओज, वर्चस्, शक्ति और बल दे ।[१४८] तुम दिव्य ज्योति से प्रकाशित होओ ।[१४९] हाथी के तेज के तुल्य हमारा महान् यश सर्वत्र फैले ।[१५०]

## १०. बल और शक्ति

चारों वेदों में अनेक मंत्रों में शारीरिक शक्ति की प्रार्थना की गई है और उसके साधनों का भी वर्णन है ।

चरक ने शक्तिवर्धक तत्त्वों को रसायन कहा है । चरक का कथन है कि ब्रह्मचर्य या संयम सर्वोत्तम रसायन है ।[१५१] यह धर्म, यश, दीर्घायु और दोनों लोकों में हितकारी रसायन है ।[१५२] अष्टांगहृदय में बल और शक्ति के लिए इन गुणों को अपूर्व रसायन बताया है :—सत्यभाषण, अक्रोध, आत्मचिन्तन, शान्तचित्तता और सदाचार ।[१५३]

सुश्रुत ने जीवन बल, वर्ण और ओज का मूल कारण आहार माना है । आहार से ही शरीर की वृद्धि, बल, आरोग्य, वर्ण और इन्द्रियों की प्रसन्नता होती है । आहार की विषमता से अस्वास्थ्य एवं रोग होते हैं ।[१५४] भोजन के विषय में सुश्रुत ने कुछ उपयोगी नियम बताए हैं :—१. भूख होने पर ही भोजन करें, २. ठीक

मात्रा में भोजन करें, ३. खूब चबाकर भोजन करें, ४. निश्चित समय पर भोजन करें , ५. हल्का, पौष्टिक, सरस एवं गर्म भोजन करें ।[१५५]

ऋग्वेद में बल और शक्ति की प्रार्थना के साथ ही उसके साधनों का भी उल्लेख है । यथा—१. प्रातःकाल उठना—उषाकाल हमें बल और वीर्य दे ।[१५६] २. प्राण और अपानशक्ति को बढ़ाना—अश्विनी हमें बल दे ।[१५७] प्राण और अपानशक्ति का नाम अश्विनी है । ३. घृत का सेवन—घृत से अपनी शक्ति को बढ़ावें ।[१५८] ४. तेजस्विता के लिए शक्तिवृद्धि—हमें तेजोमय और सुखवर्धक शक्ति प्राप्त हो ।[१५९] ५. जल और दूध का सेवन—जल और दूध से शक्ति प्राप्त हो ।[१६०]

यजुर्वेद में अनेक मंत्रों में शक्ति की प्रार्थना है और कुछ उपायों का भी वर्णन है । १. शुद्ध अन्न से शक्ति—गव्य पदार्थ अन्नरूप हैं, उनका भक्षण करें ।[१६१] २. गोदुग्धादि से ऊर्जा—गव्य पदार्थ ऊर्जारूप हैं, उनके सेवन से ऊर्जा प्राप्त करें ।[१६२] ३. घृत-सेवन—घी से शरीर पुष्ट करें ।[१६३] ४. संयम और वीर्यरक्षा—वीर्य अमृत है । वीर्यरक्षा से शक्ति बढ़ावें ।[१६४] ५. ज्ञानपूर्वक कर्म करना—वाग्देवी प्राणशक्ति के द्वारा शक्ति देती है ।[१६५]

सामवेद में कुछ मन्त्रों में बल और शक्ति की प्रार्थना है । इनमें कुछ साधन ये बताए हैं:—१. आस्तिकता और उपासना—स्तुतिकर्ता को उत्तम शक्ति प्राप्त होती है ।[१६६] २. अग्नि (जाठराग्नि) को प्रदीप्त करना । अग्नि प्रजा को शक्ति देता है ।[१६७] ३. प्राण और अपान से शक्ति—अश्विनी अर्थात् प्राण और अपानशक्ति मनुष्य को बल देती है ।[१६८] ४. सोमपान—सोम हमें तेजोमय शक्ति दे ।[१६९] ५. उत्तम पुरुषार्थ—उत्तम पुरुषार्थी ही शक्ति प्राप्त करता है ।[१७०]

अथर्ववेद में अनेक मंत्रों में बल और शक्ति की प्रार्थना की गई है । कुछ उपाय ये बताए गए हैं:—१. सूर्य किरणों से शक्ति—सूर्य देव हमें शक्ति दे ।[१७१] २. प्राणायाम से शक्ति—वायु हमें प्राण और अपान शक्ति दे ।[१७२] ३. सूर्य से नेत्रशक्ति—सूर्य से नेत्रशक्ति और आकाश से श्रवणशक्ति प्राप्त करें ।[१७३] ४. ईश-प्रार्थना—हे ईश ! तुम बलरूप हो, हमें बल दो ।[१७४] ५. अग्नि से दिव्यशक्ति—अग्नि में ३३ देवों का निवास है । अग्नि हमें सभी ३३ देवों की शक्ति दे ।[१७५] ६. यज्ञोपवीत से त्रिविध शक्ति—यज्ञोपवीत के तीन धागों से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार की शक्ति हमें प्राप्त हो ।[१७६] ७. ज्ञान से वाक्शक्ति—सरस्वती से हमें वाक्शक्ति प्राप्त हो ।[१७७] ८. श्रम से बल—हमें शारीरिक बल प्राप्त हो ।[१७८] ९. पुरुषार्थ—पुरुषार्थ से हम सर्वथा नीरोग और

पराक्रमी हों ।[१७९] १०. मृत्यु के कारणों से बचना—हम मृत्यु के कारणों को दूर भगावें ।[१८०]

•

---

**१. वेद और आयुर्वेद**

१. सर्वज्ञानमयो हि सः । मनुस्मृति २.७
२. देखो, वेदामृतम् भाग १२, ऋग्वेद सुभाषितावली, पृष्ठ ३३० से ३५८
३. देखो, वेदामृतम् भाग ६, यजुर्वेद सुभाषितावली, पृष्ठ १७६ से १६३
४. वेदामृतम् भाग १०, सामवेद सुभाषितावली, पृष्ठ १३७-१४१
५. वेदामृतम् भाग ११, अथर्ववेद सुभाषितावली, पृष्ठ २२६-३०३
६. ऋचः सामानि भेषजा, यजूंषि० । अथर्व० ११.६.१४
७. येऽथर्वाणः, तद् भेषजम् । गोपथ ब्रा० १.३.४
८. यजु० ११.३३ । प्राणो वा अथर्वा । शतपथ ब्रा० ६.४.२.२
६. यजूंषि च ब्रह्म च० । अथर्व० १५.६.८
१०. यद् भेषजं तदमृतम्, यदमृतं तद् ब्रह्म । गोपथ ब्रा० १.३.४
११. एतम् अङ्गरसं सन्तम् अङ्गिरा इत्याचक्षते । गो० ब्रा० १.१.७
१२. येऽङ्गिरसः स रसः । गोपथ ब्रा० १.३.४

**२. आयुर्वेद और उसके उद्देश्य**

१३. चरक सूत्र० ३०.२३
१४. हिताहितं सुखं दुःखम्, आयुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तम्, आयुर्वेदः स उच्यते ।। चरक सूत्र० १.४१
१५. आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दतीति आयुर्वेदः । सुश्रुत सूत्र० १.२३
१६. प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम् आतुरस्य विकारप्रशमनं च । चरक सूत्र० ३०.२६
१७. सुश्रुत सूत्र० १.२२
१८. चरक सूत्र० ६.४
१६ धातुसाम्यक्रिया प्रोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम् । चरक सूत्र० १.५३
२०. मृत्योः पदं योपयन्तः । ऋग्० १०.१८.२, अथर्व० १२.२.३०
२१. द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः । ऋग्० १०.१८.२, अथर्व० १२.२.३०
२२. शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः । ऋग्० १०.१८.२
२३. यदामयति निष्कृत । तैत्ति० सं० ४.२.६.२
२४. शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीः । ऋग्० १०.१८.४
२५. अथर्व० १६.६७. १ से ८; १६.६६. १ से ४
२६. अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः । अ० १६.६०.२
२७. यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् । अ० ६.८.१२

**३. आयुर्वेद के ८ अंग**

२८. सुश्रुत० सूत्र० १.७
२९. चरक० सूत्र० ३०.२८
३०. अष्टांग० सूत्र० १.५.६

**४. चिकित्सा चार प्रकार की**

३१. आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ।। अथर्व० ११.४.१६
३२. प्राणो वा अथर्वा । शतपथ ब्रा० ६.४.२.१
३३. येऽथर्वाणस्तद् भेषज़म् । गो० ब्रा० १.३.४
३४. सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यो रसोऽक्षरत्, सोऽङ्गरसोऽभवत्, तं वा एतम् अङ्गरसं सन्तम् अङ्गिरा इत्याचक्षते, गोपथ पूर्व० १.७ । आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः । शत० ब्रा० १४.४.१.९
३५. घोर आंगिरसोऽध्वर्युः । कौषीतकि ब्रा० ३०-६ । आश्व० श्रौत० १०.७.४, शांखा० श्रौत० १६.२.१२, छान्दोग्य उप० ३.१७.६
३६. अथर्व० २.३, ७.७७, ७.९०, १९.३४, ३५ ।
३७. घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यः ।
चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम ।। अथर्व० २.३५.४

**५. वैद्य और उसके कर्तव्य**

३८. यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहाऽमीवचातनः ।। ऋग्० १०.९७.६
३९. यद् वा देव भिषज्यथः । ऋग्० ८.९.६ । वरुणो भिषज्यन् । यजु० १९.८०
४०. यदामयति निष्कृथ । ऋग्० १०.९७.९
४१. ओषधीः प्राचुच्यवुः यत् किं च तत्वो रपः । ऋग्० १०.९७.१०
४२. इमं मे अगदं कृत । ऋग्० १०.९७.२
४३. प्र न आयूंषि तारिषत् । साम० १८४
४४. निष्कर्ता विह्रुतं पुनः । साम० २४४
४५. यथा सो अस्य परिधिष्पताति । अ० ५.२९.२
४६. अ० ५.२९.१
४७. अ० २.९.३
४८. यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः । अ० २.९.५
४९. ऊर्जा स्वधामजराम् ..... भिषजस्ते अक्रन् । अ० २.२९.७
५०. श्रुते पर्यवदातत्वं, बहुशो दृष्टकर्मता ।
दाक्ष्यं शौचमिति श्रेयं, वैद्ये गुणचतुष्टयम् ।। चरक सूत्र० ९.६
५१. दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा शुचिर्भिषक् । अष्टांग० सूत्र० १.२८
५२. तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयंकृती ।
लघुहस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः ।।
प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान् व्यवसायी विशारदः ।
सत्यधर्मपरो यश्च स भिषक्पाद उच्यते ।। सुश्रुत० सूत्र० ३४.१९.२०
५३. यस्तूभयज्ञो मतिमान्, स समर्थोऽर्थसाधने । सुश्रुत० सूत्र० ३.५३
५४. तस्माद् बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयात् चिकित्सकः । सुश्रुत० सूत्र ४.७

**६. चिकित्सालय और रोगी की शुश्रूषा**

५५. त्रायन्ताम् अस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् । अ० ८.७.११
५६. सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः । अ० ८.२.२५
५७. न मरिष्यसि मा बिभेः । अ० ८.२.२४
त्वं मृत्योः.... उद् भरामि, स मा बिभेः । अ० ८.२.२३
५८. चरक, सूत्रस्थान, १५.७

**७. नीरोगता**

५९. अथर्व० १.३. १-५
६०. व्रीहियवौ... एतौ यक्ष्मं विबाधेते । अ० ८.२.१८
६१. सर्वं ते अन्नम् अविषं कृणोमि । अ० ८.२.१९
६२. यदश्नामि बलं कुर्वे० । अ० ६.१३५.१
६३. यत् पिबामि सं पिबामि० । अ० ६. १३५.२
६४. यद् गिरामि सं गिरामि० । अ० ६. १३५.३
६५. यदान्त्रेषु.... एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिः । अ० १.३.६
६६. न वेगान् धारयेद् धीमान् जातान् मूत्रपुरीषयोः । चरक, सूत्र० अ० ७.३
६७. रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता । अष्टांग० सूत्र० १.२०
६८. मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं० । यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन् सचतां पर्वतांश्च । अथर्व० १.१२.३
६९. रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ । अष्टांग० सूत्र० १.२१
७०. तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु । यजु० ३४. १ से ६
७१. शिवाभिस्ते हृदयं तर्पयामि । अ० २.२९.६
७२. अनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः । अ० २.२९.६
७३. व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा । अ० ३.३१.१
७४. आयुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः । अ० ६.४१.३
७५. उद्यन् सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे । अ० ७.१३.२

**८. दीर्घायुष्य**

७६. अथर्व० १९.६७. १ से ८, यजु० ३६.१९,२४
७७. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ।। यजु० ३.६२
७८. सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् । अथर्व० १७.१.२७
७९. अथर्व० १७.१. २७ से ३०
८०. रजस्तमो मोप गाः । अ० ८.२.१
८१. सत्यस्य हस्ताभ्याम् उदमुञ्चद् बृहस्पतिः । अ० ३.११.८
८२. कृणोमि ते प्राणापानौ... दीर्घमायुः । अ० ८.२.११, २.२८.४, ३.११.५
८३. अथर्व० २.२८.२
८४. मा गतानामा दीधीथाः० । अ० ८.१.८
८५. वातात् ते प्राणमविदं सूर्यात् चक्षुरहं तव । अ० ८.२.३, १४
८६. सूर्यस्त्वा... मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः । अ० ५.३०.१५
८७. अग्नेष्टे प्राणम् अमृताद् आयुष्मतो वन्वे० । अ० ८.२.१३

८८. अपसिध्य दुरितं धत्तमायुः । अ० ८.२.७
८९. मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् । अ० ८.१.१७
९०. अ० ८.१.१८ ९१. अ० ८.१.२०
९२. शिवास्ते सन्त्वोषधयः० । ...रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभौ । अ० ८.२.१५
९३. आरोह तमसो ज्योतिः । अ० ८.१.८
९४. अरिष्टः ...शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् । अ० ८.२.८
९५. इन्द्रः ....विद्धो अग्र ऊर्जा स्वधामजराम्० । अ० २.२९.७
९६. अप्सु अन्तरमृतम् अप्सु भेषजम् । अ० १.४.४
९७. दाक्षायणा हिरण्यं.... दीर्घायुत्वाय शतशारदाय । अ० १.३५.१
दीर्घायुत्वाय... मणिं... जंगिडं बिभृमो वयम् । अ० २.४.१
९८. अथर्व० ८.१.५ । ८.२. १३ और १४ ।
९९. अ० ८.१.८ १०० अ० ८.२.१ । २.२९.६
१०१. तं ते सत्यस्य हस्ताभ्याम् उदमुञ्चद् बृहस्पतिः । अ० ३.११.८
१०२ अ० ८.२. १८ और १९ १०३. अ० २.२९.७
१०४. अ० ६.४१.३ । ८.२.८ १०५. अ० १.३०.३
१०६. अ० ८.१.१७ । ८.२.५ १०७. अ० १.३५. १ से ४

**९. ओज, तेज, वर्चस् और ज्योति**

१०८. तत्र रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत् परं तेजस्तत् खल्वोजः तदेव बलमित्युच्यते । सुश्रुत, सूत्र० १५. २४ से ३० ।
१०९. ऋग्० ३.६२.५, ११०. ऋग्० ८.७६.१०
१११. ऋग्० ६.१६.६ ११२. ऋग्० ६.४६.७
११३. ऋग्० १.६.१ ११४. ऋग्० १.२३.२३
११५. ऋग्० ९.६६.२१ ११६. ऋग्० २.२७.११,
११७. ऋग्० ३.३९.७ ११८. ऋग्० १.९२.१७
११९. यजु० ८.३९ १२०. यजु० ८.३८
१२१. यजु० ८.४० १२२. यजु० १८.४८
१२३. यजु० ७.२७ १२४. यजु० १९.५
१२५. यजु० ७.२८ १२६. यजु० ७.२७
१२७. साम० १५२० १२८. साम० ६२५
१२९. साम० ८३४ १३०. साम० १४९२
१३१. साम० ११ १३२. साम० ८७५
१३३. साम० ६०२ १३४. साम० १३५९
१३५. साम० १०४८ १३६. अथर्व० १७.१.२१
१३७. अ० १०.५.७ १३८. अ० १७.१.२०
१३९. अ० ९.१.१७ १४०. अ० ३.२२.४
१४१. अ० ११.१.३७ १४२. अ० १२.१.२१
१४३. अ० ६.३८.१ १४४. अ० २.१७.१
१४५. अ० ७.८९.४ १४६. अ० १९.८.१
१४७. अ० १९.३.२ १४८. अ० १९.३७.२
१४९. अ० २.६.१ १५०. अ० ३.२२.१

**१०. बल और शक्ति**

१५१. ब्रह्मचर्यम् आयुष्कराणां श्रेष्ठतमम् । चरक

१५२. धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम् ।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्तनिर्मलम् ।। अष्टांग० उत्तर० ४०.४

१५३. सत्यवादिनमक्रोधम् अध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ।
शान्तं सद्वृत्तनिरतं विद्याद् नित्यरसायनम् । अष्टांग० उत्तर० ३९.१७९

१५४. प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च० । सुश्रुत, सूत्र० ४६.३

१५५. काले सात्म्यं लघु स्निग्धं, क्षिप्रमुष्णं द्रवोत्तरम् ।
बुभुक्षितोऽन्नमश्नीयाद् मात्रावद् विदितागमः ।। सुश्रुत, सूत्र० ४६.४७१

१५६. ऋग्० १.४८.१२
१५७. ऋग्० ८.३५.१०
१५८. ऋग्० १०५९.५
१५९. ऋग्० ९.१०६.४
१६०. ऋग्० १.९१.१८
१६१. यजु० ३.२०
१६२. यजु० ३.२०
१६३. यजु० १२.४४
१६४. यजु० १९.७९; २१.५५
१६५. यजु० २०.८०
१६६. साम० १३१२
१६७. साम० १७३८
१६८. साम० १७३६
१६९. साम० १३२५
१७०. साम० २३८
१७१. अथर्व० ६.६१.१
१७२. अथर्व० ५.१०.८
१७३. अथर्व० ५.१०.८
१७४. अ० २.१७.३
१७५. अ० १९.३७.१
१७६. अ० ५.२८.३
१७७. अ० ५.१०.८
१७८. अ० ९.४.२०
१७९. अ० ५.३.५
१८०. अ० १२.२.३०

•

अध्याय २

# शारीर - स्थान

अध्याय २

# शारीर - स्थान

**१. शरीर में धातुएँ**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में त्रिधातु शब्द का प्रयोग है ।[१] ऋग्वेद में सायण ने त्रिधातु की व्याख्या की है—वात, पित्त और श्लेष्म (कफ) रूपी तीन धातुएँ । अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि एक ओज ही त्रेधा अर्थात् तीन रूप में शरीर में व्याप्त है ।[२] सायण ने इसकी व्याख्या में भी 'त्रेधा' का अर्थ वात, पित्त और कफ रूपी त्रिदोष किया है ।

अथर्ववेद में पित्त शब्द का स्पष्ट उल्लेख है ।[३] वात के लिए वात शब्द है । वातीकार, वातीकृत, वातीकृतनाशिनी शब्दों से स्पष्ट है कि वात शब्द 'वात' धातु के लिए है और इसके दोषों से उत्पन्न रोगों को वातीकृत आदि कहते हैं ।[४] कफ के लिए अभ्र (वर्षाजल) शब्द मिलता है और कफज रोगों के लिए अभ्रजा और बलास शब्द हैं ।[५]

एक मंत्र में इनको अभ्रजा (कफ, वर्षा या ठंड से उत्पन्न होने वाला), वातजा (वात, वायु से उत्पन्न होने वाला) और शुष्म (पित्त या गर्मी से उत्पन्न होने वाला) कहा गया है ।[६] एक अन्य मन्त्र में इनको वायु (वात), अर्क (पित्त, सूर्यवत् उष्णता का कारण होने से) और रयि (कफ, सोमवत् पोषक होने से) नाम से निर्दिष्ट किया गया है ।[७]

चरक, सुश्रुत और अष्टांगहृदय में वात, पित्त और कफ इन तीनों को शरीर का आधार माना गया है । इन तीनों के विकार से ही शरीर में नाना प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं ।[८] सुश्रुत का कथन है कि वात, पित्त श्लेष्म (कफ) ये तीन शरीर की उत्पत्ति के कारण हैं । जिस प्रकार तीन खंभों से मकान धारण किया जाता है, उसी प्रकार इन तीनों से शरीर स्थित है । इसलिए शरीर को त्रिस्थूण कहते हैं ।[९]

अष्टांगहृदय का कथन है कि वायु (वात), पित्त और कफ ये तीन दोष हैं । ये विकृत होने पर शरीर को हानि पहुँचाते हैं और अविकृत होने पर शरीर को स्थिर रखते हैं ।[१०]

अथर्ववेद में जिस प्रकार वात, पित्त और कफ को वायु, अर्क (अग्नि) और

रयि (सोम) कहा है, उसी प्रकार चरक और सुश्रुत में वायु को वात, अग्नि को पित्त और सोम को श्लेष्म कहा गया है ।[११] अथर्ववेद में सात धातुओं को शरीर का निर्माता कहा गया है और इसके लिए 'सप्तमातरम्' शब्द आया है ।[१२] अष्टांगहृदय में सात धातुएँ ये मानी गई हैः—रस, रक्त, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र । ये वात पित्त आदि से दूषित होते हैं, अतः इन्हें दूष्य कहा गया है ।[१३] वेदों में इन सात धातुओं का उल्लेख मिलता है । रस, असृक् (रक्त), मांस, मेदस् (मेद), अस्थि, मज्जा और शुक्र (वीर्य) ।[१४]

अष्टांगहृदय में रस आदि की उत्पत्ति का यह क्रम बताया हैः—भोजन का परिपाक होने पर रस बनता है । रस से रक्त बनता है, रक्त में मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र बनता है । इस शुक्र से ही गर्भ बनता है ।[१५]

**२. शिराएँ और धमनियाँ**—शिरा को सिरा भी लिखा जाता है । वेद में शिरा के लिए हिरा शब्द है । धमनी शब्द भी दो प्रकार से लिखा जाता है—धमनी और धमनि । शिरा और धमनी दोनों नसें हैं । शिराओं की Veins (वेन्स) कहते हैं । ये अशुद्ध रक्तवाहिनी हैं । ये सारे शरीर से अशुद्ध रक्त हृदय में पहुँचाती है । आयुर्वेद में इन्हें काली या कालिका कहा गया है । इनका रंग काला या नीला होता है । धमनी को Arteries कहते हैं । ये शुद्ध रक्तवाहिनी हैं । ये हृदय से शुद्ध रक्त शरीर के प्रत्येक अंग में पहुँचाती हैं । आयुर्वेद में इन्हें लोहितिका कहा गया है । इनका रंग लाल होता है । वातसूत्रों को ज्ञानतन्तु, नस या Nerve कहते हैं । आयुर्वेद में इन्हें मर्मरिका कहा है ।

अथर्ववेद में नाड़ियों को शरीर का आधार माना गया है । शिराओं और धमनियों की संख्या सैकड़ों और सहस्रों कही गई है ।[१६] शिराओं को रक्तवाहिनी नाड़ियाँ कहा गया है और इनका रंग लाल कहा है ।[१७] नाड़ियाँ ऊपर, नीचे और बीच में सर्वत्र फैली हुई हैं । ये छोटी और बड़ी दोनों प्रकार की हैं ।[१८]

सुश्रुत के शारीरस्थान प्रकरण में शिरा और धमनियों का विस्तृत वर्णन दिया गया है । इसकोAngiology (एंजिओलाजी, नाडीविज्ञान) कहते हैं । सुश्रुत का कथन है कि जैसे छोटे जलमार्गों से उपवन को सींचते हैं, उसी प्रकार शिराओं से यह शरीर पोषित होता है । पेड़ के पत्तों की सीवनियों के तुल्य शिराएँ सारे शरीर में फैली हुई हैं । इन शिराओं का मूल स्थान नाभि है । नाभि से ये शिराएँ ऊपर, नीचे और इधर-उधर फैली हुई हैं । इन शिराओं के द्वारा ही हाथ आदि का फैलाना, मोड़ना आदि क्रियाएँ होती हैं ।[१९]

मूल शिराएँ ४० हैं । इनमें वात, पित्त, कफ और रक्तवाहक दस-दस शिराएँ

हैं, अतः ये चालीस हो जाती हैं । ये शिराएँ ही भेद-उपभेद होकर ७०० हो जाती हैं । सभी शिराएँ वात, पित्त, कफ इन तीनों का वहन करती हैं, अतः इन्हें सर्ववहा कहा जाता है । जिनमें वात की अधिकता होती है, उन्हें वातवहा, पित्त की अधिकता वाले को पित्तवहा आदि कहा जाता है । सभी में वात, पित्त, कफ कम या अधिक मात्रा में रहता है ।[२०]

सुश्रुत में शिराओं के वर्ण (रंग) का भी वर्णन है । पित्तवहा को नीली, कफवहा को गौरी (सफेद) और रक्तवहा को रोहिणी (लाल रंग की चमकदार) कहा है । इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है:—

शिराओं को रक्तवहा (Blood Vessels) मानने पर नीली शिरा Veins हैं, गोरी या श्वेत Lymphatics रसायनी हैं और असृग्वहा या रक्तवहा Arteries धमनियाँ है ।[२१]

सुश्रुत में धमनियों (Arteries) का भी विस्तृत वर्णन है । इनका कर्म बताया गया है—रस का निरन्तर वहन करना, शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध को ग्रहण करना और श्वास-उच्छ्वास को ग्रहण करना ।[२२]

सभी धमनियाँ नाभि से उत्पन्न होती हैं । इनकी संख्या २४ है । इनमें से १० ऊपर जाती हैं, १० नीचे और ४ तिरछी (बगल में) । ऊपर जाने वाली धमनियाँ रूप रस गन्ध आदि, हँसना, बोलना, रोना आदि को वहन करती हुई शरीर को धारण करती हैं । धमनियाँ हृदय को प्राप्त होकर तीन भागों में विभक्त होकर ३० हो जाती हैं । नीचे जाने वाली धमनियाँ अपानवायु, मल-मूत्र, रज-वीर्य को नीचे की ओर वहन करती हैं । ये हृदय को रस पहुँचाती हैं । ऊपर की ओर तिरछी धमनियों को भी रस पहुँचाती हैं । मल-मूत्र और पसीने का विभाजन करती हैं ।[२३]

तिरछी जाने वाली धमनियाँ सैकड़ों प्रकार से विभक्त हैं । इनकी हजारों शाखाएँ हैं । इन शाखाओं के मुख होते हैं । इनकी उपमा मृणाल या कमलनाल से दी गई हैं । इन धमनियों में छिद्र होते हैं । ये छिद्र रोमकूपों से मिले होते हैं । इनके द्वारा पसीना बाहर निकलता है । तेल मालिश आदि में तेल आदि का शोषण ये ही करती हैं । इनके द्वारा ही स्पर्श का ज्ञान होता है । ये रस को ग्रहण करती हैं ।[२४]

**३. शरीर के अंग**—अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर शरीर के अंगों के नाम दिए गए हैं ।[२५] मन्त्रों में निम्नलिखित अंगों के नाम दिए गए हैं:—

(१) अक्षि (दो आँखें), (२) नासिका (दो नाक के छिद्र), (३) कर्ण (दो कान), (४) छुबुक (ठोड़ी), (५) मस्तिष्क (सिर, मस्तक), (६) जिह्वा (जीभ), (७) ग्रीवा (गर्दन के विभिन्न भाग), (८) उष्णिहा (गर्दन का पिछला भाग, गुद्दी), (९) कीकसा (छाती और हँसली की हड्डियाँ), (१०) अनूक्य (रीढ़ की हड्डी), (११) अंस (दोनों

कन्धे), (१२) बाहु (दोनों भुजाएँ), (१३) हृदय (हृदय), (१४) क्लोमन् (दाहिनी ओर का फुफ्फुस या फेफड़ा), (१५) हलीक्ष्ण (बाईं ओर का फेफड़ा), (१६) पार्श्व (दोनों ओर की पसलियाँ), (१७) मतस्न (दोनों वृक्क या गुर्दे), (१८) प्लीहा (तिल्ली), (१६) यकृत् (जिगर), (२०) आन्त्र (आंतें), (२१) गुदा (गुदा के भाग), (२२) वनिष्ठु (स्थूल या बड़ी आंतें), (२३) उदर (पेट), (२४) कुक्षि (दोनों कोख), (२५) प्लाशि (मूत्राशय, मसाना या मूत्रेन्द्रिय के ऊपर की नाड़ियाँ), (२६) नाभि (नाभि), (२७) ऊरु (दोनों जँघाएँ), (२८) अष्ठीवत् (दोनों घुटने), (२६) पार्ष्णि (दोनों एड़ियाँ), (३०) प्रपद (दोनों पैर के पन्जे), (३१) श्रोणि (दोनों कूल्हे), (३२) भंसस् (गुप्तेन्द्रिय, योनि), (३३) अस्थि (हड्डियाँ), (३४) मज्जन् (मज्जा, चर्बी), (३५) स्नावन् (नाड़, पुट्ठा, शिराएँ), (३६) धमनि (धमनियाँ), (३७) पाणि (दोनों हाथ), (३८) अंगुलि (अंगुलियाँ), (३६) नख (नाखून), (४०) अंग (मांसपेशियाँ), (४१) लोमन् (बाल), (४२) पर्वन् (जोड़, गाँठ)।

एक अन्य स्थल पर भी शरीरांगों के नाम हैं।[२६] उसमें उपर्युक्त के अतिरिक्त नए नाम ये दिए हैं :—

(१) मांस (मांस), (२) गुल्फ (दो टखने), (३) ख (रोमकूप, रोमच्छिद्र), (४) उच्छ्लङ्ख (दो पाँव के तलवे), (५) कबन्ध (धड़), (६) उरस् (छाती), (७) स्तन (२ स्तन), (८) कफोड (दो कोहनियाँ), (६) पृष्टि (पसलियाँ), (१०) मुख (मुँह), (११) हनु (दो जबड़े), (१२) ललाट (माथा), (१३) ककाटिका (सामने की हड्डी), (१४) कृकाट (गरदन का जोड़) (१५) कपाल (कपाल), (१६) उत्तरहनु (ऊपर का जबड़ा), (१७) अधरहनु (नीचे का जबड़ा), (१८) मेधा (बुद्धि), (१६) पुरीतत् (हृदय का वेष्टन या आवरण), (२०) क्रोड (गोद), (२१) पाजस्य (पेट), (२२) दन्त (दाँत), (२३) पर्शु (पसली), (२४) निवेष्य (पृष्ठवंश), (२५) वृक्क (गुर्दे), (२६) आण्ड (अंडकोश), (२७) शेप (जननेन्द्रिय, मूत्रेन्द्रिय), (२८) चर्मन् (त्वचा), (२६) लोमन् (रोम, केश), (३०) पीवस् (चर्बी), (३१) मज्जा (मज्जा), (३२) तीव्रा (तीव्रगति वाली, श्वेत कफवाहक नाड़ियाँ), (३३) अरुणा (कुछ लाल रंग की वातवाहक नाड़ियाँ), (३४) ताम्रधूमा (नीले रंग वाली पित्तवाहक नाड़ियाँ), (३५) वासस् (वस्त्र, त्वचा), (३६) रेतः (वीर्य), (३७) प्राणः (प्राण), (३८) अपान (अपान वायु), (३६) व्यान (व्यान वायु), (४०) समान (समान वायु), (४१) उदान (उदान वायु), (४२) वाक् (वाणी), (४३) मनस् (मन)। कुछ अन्य नाम हैं :—त्वच् (त्वचा), उदर (पेट), आस्य (मुख), दत् (दाँत)।[२७] गवीनी (मूत्रनाडियाँ), वस्ति (मूत्राशय), वस्तिबिल (मूत्राशय का बिल), मेहन (मूत्रेन्द्रिय, मूत्रद्वार)।[२८]

अथर्ववेद में अन्तःकरण के कतिपय गुण-धर्मों का उल्लेख है ।[२६] ये हैं:—

(१) प्रिय (अनुकूल विषय), (२) अप्रिय (प्रतिकूल विषय), (३) स्वप्न (स्वप्नावस्था), (४) संबाध (नींद टूटना, नींद में बाधा), (५) तन्द्रि (तन्द्रा, आलस्य), (६) आनन्द (आनन्द की अनुभूति), (७) नन्द (हर्ष, प्रसन्नता), (८) आर्ति (पीडा, दुःख), (९) अवर्ति (अरुचि या विवशता), (१०) निर्ऋति (व्याकुलता, दुःखातिशय), (११) अमति (कुमति या किंकर्तव्यविमूढता), (१२) राद्धि (पूर्णता, इष्ट की प्राप्ति), (१३) समृद्धि (पुष्टता, संपन्नता), (१४) अव्यृद्धि (अक्षीणता, गरिमा), (१५) मति (बुद्धि, चिन्तन शक्ति), (१६) उदिति (उन्नति, प्रगति की भावना), (१७) मेधा (धारणा शक्ति), (१८) पाप्मानः (पाप की भावनाएँ), (१९) सत्य (सत्यनिष्ठता), (२०) तृष्णा (भोगवासनाएँ), (२१) श्रद्धा (प्रेम, विश्वास), (२२) अश्रद्धा (घृणा, अविश्वास), (२३) विद्या (ज्ञान), (२४) अविद्या (अज्ञान), (२५) मोद (प्रसन्नता), (२६) प्रमुद (मनोरंजन, विनोद), (२७) अभीमोदमुद (आनन्दातिरेक, हर्षातिरेक), (२८) आयुजः (आयोजन या नवनिर्माण की शक्ति), (२९) प्रयुजः (विचारों के प्रयोग की शक्ति), (३०) युजः (प्रवृत्ति, कार्य में संलग्नता), (३१) आशिषः (आशा की भावना), (३२) प्रशिषः (प्रबोधन या उद्‌बोधन की भावना), (३३) संशिषः (समन्वय या संगठन की भावना), (३४) विशिषः (वैशिष्ट्य या अनुशासन की भावना), (३५) चित्त (चिन्तन शक्ति), (३६) संकल्प (विचार शक्ति या इच्छा शक्ति) ।[३०]

अन्तःकरण शरीर की सभी क्रियाओं का संचालक है । यह सन्मार्ग और कुमार्ग, धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य, सुख और दुःख, ज्ञान और अज्ञान का कारण है । अन्तःकरण की त्रुटि के कारण होने वाले रोगों को 'प्रज्ञापराध' कहा गया है । प्रायः तीन-चौथाई रोगों के मूल में 'प्रज्ञापराध' दोष है ।

**४. हृदय का स्वरूप**—हृदय कमल के समान अधोमुख होकर रहता है । जागृत अवस्था में हृदय की गति तीव्र होती है, अतः उसे विकसित (खिलना) मानते हैं और निद्रा की अवस्था में विश्राम मिलने के कारण उसकी गति मन्द हो जाती है, अतः उसमें निमीलन (संकुचित होना) मानते हैं ।[३१]

**हृदय का वर्णन**—हृदय वक्षःस्थल (Thorax) में कुछ बाईं ओर रहता है । इसके बाएँ और दाहिने ओर दो फुफ्फुस हैं । नीचे की ओर महाप्राचीरक (Diaphram, डाएफ्राम) है । ऊपर की ओर रक्तवाहिनियाँ हैं । इसमें चार कोष्ठ हैं । दो अशुद्ध रक्त लाने वाली महाशिराएँ हैं । दो अशुद्ध रक्त को ले जाने वाली धमनियाँ हैं । इनको 'फुफ्फुसीय धमनी' कहते हैं । ये चार शिराएँ (Veins) कहलाती हैं । ये शिराएँ होने पर भी शुद्ध रक्त लाती हैं । एक बड़ी धमनी (Artery) है, जो रक्त को समस्त शरीर में पहुँचाती है और दो कपाट हैं । इस प्रकार दो महाशिराएँ

अशुद्ध खून को ले जाने के लिए, चार शिराएँ शुद्ध खून को लाने के लिए और 'एक महाधमनी' शुद्ध खून शरीर को पहुँचाने वाली है ।

ऊर्ध्व महाशिरा ऊपर के भाग से और अधोमहाशिरा नीचे के शरीर से अशुद्ध रक्त लेकर दाहिने अलिंद (Right Auricle) में डालती हैं । वहाँ से रक्त दाहिने निलय (Ventricle) में कपाट के मार्ग से चला जाता है । वहाँ से फुफ्फुसीय धमनियों (Pulmonary Arteries) से फेफड़े (Lungs) में चला जाता है, वहाँ रक्त शुद्ध होता है । तत्पश्चात् फुफ्फुसीय शिरा (Pulmonary Veins) से बाएँ अलिन्द (Left Auricle) में जाता है । वहाँ से बाएँ निलय में जाता है । फिर महाधमनी (Aorta) से शुद्ध रक्त सब ओर शाखा-प्रशाखाओं के द्वारा फैलाया जाता है ।

**५. त्वचाओं की संख्या**—सुश्रुत ने त्वचाओं की संख्या सात मानी है । इनके अवभासिनी, श्वेता, ताम्रा आदि नाम दिए हैं । प्रथम त्वचा सब वर्णों (छाया) को प्रकट करती हैं । इसमें सिध्म आदि रोग होते हैं । दूसरी में तिलकालक, छाई आदि रोग होते हैं । तीसरी में मस्सा आदि रोग होते हैं । चौथी में कुष्ठ (Skin Disease) होता है । पाँचवी में विसर्प (Erysipelas), छठी में ग्रन्थि (Tumor), अपची, अर्बुद, श्लीपद और गलगंड विकार होते हैं और सातवीं में भगन्दर (Fistula in Ano), विद्रधि (Abscess) और अर्श (Piles) होते हैं ।[३२]

चरक के मतानुसार ६ त्वचायें हैं :—(१) उदकधरा—जल धारण करने वाली, (२) असृग्धरा—रक्त धारण करने वाली, (३) सिध्म (Leprosy) और किलास (Leucoderma) नामक कुष्ठ का उत्पत्तिस्थान, (४) दाद (Ring worm) और कुष्ठ (Skin disease) का उत्पत्तिस्थान, (५) अलजी और विद्रधि (Abscess) का उत्पत्तिस्थान, (६) काले और लाल रंग की असाध्य फुंसियों का उत्पत्तिस्थान । इसके फटने से चारों ओर अंधकार दिखाई देता है ।[३३]

आधुनिक मत से त्वचा दो प्रकार की है—(१) बाह्य त्वचा (Epidermis), (२) अन्तः त्वचा (Dermis) । इन दो त्वचाओं में बाह्य त्वचा में पाँच और अन्तः त्वचा में दो स्तर मिलते हैं । इस प्रकार ये भी सात स्तर होते हैं ।

**६. मर्मस्थल (Vital Parts)**—वेदों में मर्मस्थलों का उल्लेख है ।[३४] इन पर चोट लगने से शीघ्र मृत्यु हो जाती है । मरणकारी होने से मर्म नाम पड़ा है । अष्टांगहृदय में मर्मस्थलों की संख्या १०७ बताई है और इनका इस प्रकार विभाजन किया है[३५] :—

| | | |
|---|---|---|
| २ हाथ और २ पैर = ४, प्रत्येक में ११ | = | ४४ |
| कोष्ठ (गुदा, मूत्राशय, नाभि) | = | ३ |
| उरःस्थल (हृदय, स्तन आदि) | = | ६ |

| | | |
|---|---|---|
| पीठ (पसली, नितंब आदि) | = | १४ |
| शिर और ग्रीवा | = | ३७ |
| योग | | १०७ |

**७. मज्जा, मेद और वसा**—मज्जा (Bone-marrow) स्थूल हड्डियों में रहती है। मेद सूक्ष्म हड्डियों में रहता है। वसा (चर्बी) शुद्ध मांस का स्नेह (गाढ़ा भाग, मलाई जैसा अंश) है। यह इन तीनों में भेद है।[३६]

**८. शिरा, स्नायु और आशय**—मेद का स्नेह लेकर शिरा (Veins) स्नायु (Ligament) बनती है। शिरा और स्नायु इन दोनों में अन्तर यह है कि शिराओं का पाक मृदु होता है और स्नायुओं का पाक कुछ कठिन या खर होता है। स्नायुओं को कुछ विद्वान् Muscles (पुट्ठे) मानते हैं। इनसे उठाना, नीचे उतारना आदि कार्य होते हैं।

मांसपेशियों में वायु के निरन्तर रहने से हृदयाशयों की उत्पत्ति होती है।[३७] आशय आठ हैं—वाताशय, पित्ताशय, कफाशय, रक्ताशय आमाशय, पक्वाशय, मूत्राशय, गर्भाशय। गर्भाशय केवल स्त्रियों में रहता है। शेष सात स्त्री-पुरुष दोनों में।

**९. शुक्र**—सुश्रुत के मतानुसार शुक्र (Seminal Fluid) सारे शरीर में व्याप्त रहता है। जैसे दूध में घी और गन्ने में गुड़ है, उसी प्रकार पुरुषों के शरीर में शुक्र रहता है। मनुष्य के शरीर को देखने से उसके अन्दर के शुक्र का पता चलता है। जिस प्रकार दूध के मथने से घी निकलता है, उसी प्रकार अंडकोष (Testicles) में संचित हुआ शुक्र मैथुन से दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक मत शुक्र को सर्वशरीर व्यापी नहीं मानता है।

पुरुष में मूत्रमार्ग और शुक्रमार्ग एक ही होता है। बाहर निकलने के लिए भिन्न मार्ग नहीं है। वस्ति के दोनों ओर दो शुक्राशय (Seminal Vesicles) हैं, उनसे शुक्र मेढ्रस्रोत (Urethral Canal) में जाता है।[३८]

**१०. अन्तःस्थ अंग-प्रत्यंगों की संख्या**—सुश्रुत के अनुसार इनकी संख्या इस प्रकार है:—त्वचाएँ (Skins)-७, कलाएँ (Membrances)-७, आशय (Reservoir)-७, धातु (Tissues)-७, सिराएँ (Veins)-७००, पेशियाँ (Muscles)-५००, स्नायु (Ligaments)-९००, अस्थियाँ (Bones)-३००, सन्धियाँ (Joints)-२१०, मर्म (Vital Weak Spots)-१०७, धमनियाँ (Arteries)-२४ हैं।[३९]

**आन्त्रों (आंतों) की लम्बाई**—आधुनिक मतानुसार पुरुषों में छोटी आंतें

(Small Intestine) २२ फुट ६ इंच और स्त्रियों में २३ फुट ६ इंच की होती हैं। बड़ी आंतें (Large Intestine) ५ फुट होती हैं।[४०]

**११. अस्थियों की संख्या**—शरीर में अस्थियों की संख्या के विषय में पर्याप्त मतभेद है। चरक के मतानुसार ३६० अस्थियाँ हैं, सुश्रुत के अनुसार ३०० और आधुनिक विज्ञान के अनुसार २०६।[४१]

अस्थियों की गणना के लिए शरीर को तीन भागों में बाँटा गया है:—

(१) ऊर्ध्वांग—शिर और गर्दन की अस्थियाँ, (२) धड़—छाती, कंधा, पसली, कमर आदि की अस्थियाँ, (३) शाखा की अस्थियाँ—हाथ, पैर, जंघा, घुटना, अंगुलियाँ आदि की अस्थियाँ। इनका विभाजन इस प्रकार है—

| अंग | चरक | सुश्रुत | आधुनिक |
|---|---|---|---|
| (१) शिर और ग्रीवा | ९२ | ६३ | ३६ |
| (२) धड़ की अस्थियाँ | १४० | ११७ | ५० |
| (३) शाखा की अस्थियाँ | १२८ | १२० | १२० |
| योग | ३६० | ३०० | २०६ |

●

१. त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती। ऋग्० १.३४.६
त्रिधातु शरणं त्रिवरूथम्०। अथर्व० २०.८३.१
२. य एकमोजस् त्रेधा विचक्रमे। अ० १.३४.१
३. अग्ने पित्तम् अपामसि। अ० १८.३.५
४. अ० ६.८.२०।६.१०६.३। ६.४४.३
५. अ० १.१२.३।६.१४.१। ८.७.१०
६. यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो०। अ० १.१२.३
७. वायुम् अर्कम्.... रयिम्। अ० १८.४.२९
८. चरक, सूत्र० १.५७
९. सुश्रुत, सूत्र० २१.३
१०. अष्टांग० सूत्र० १. ६ और ७
११. अथर्व० १८.४.२९, चरक सूत्र० १२. ११ और १२, सुश्रुत सूत्र० २१.८
१२. सप्तमातरम्, अ० १८.४.२९
१३. रसासृक्-मांस-मेदोऽस्थि-मज्जा-शुक्राणि धातवः। सप्त दूष्याः। अष्टांग, सूत्र० १.१३
१४. अस्थि स्नाव मांसं मज्जाम्। अ० ११.८.११, रसम्, ऋग्० १.१०५.२। असृक्-पावानम्। अ० २.२५.३, मेदसा, अ० ४.२७.५, शुक्रम्, अ० ४.१.५। वीर्यम्, अ० १.७.५।
१५. रसाद् रक्तं ततो मांसं, मांसाद् मेदस्ततोऽस्थि च।
अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं, शुक्राद् गर्भः प्रजायते।। अष्टांग, शारीर० ३. ६२-६३

१६. शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् । अ० १.१७.३
शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत । अ० ७.३५.२
१७. हिरा लोहितवाससः । अ० १.१७.१
१८. तिष्ठावरे तिष्ठ परे उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिका च... धमनिर्मही । अ० १.१७.२
१९. सुश्रुत, शारीर० ७. ३ से ५ । पृष्ठ ५९
२०. सुश्रुत, शारीर० ७.१७ और १८ । पृष्ठ ६०-६१
२१. सुश्रुत, शारीर० ७.१९ । पृष्ठ ६१
२२. सुश्रुत, शारीर० ९.११ । पृष्ठ ७०-७१
२३. सुश्रुत, शारीर० ९. ३ से ६ । पृष्ठ ६९-७०
२४. सुश्रुत, शारीर० ९. ९-१० । पृष्ठ ७०-७१
२५. अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि । अ० २.३३. १ से ७ । २०.९६.१७ से २३
२६. अथर्व० १०.२.१ से १७ । ६.७. १ से २६ । ११.८.२६
२७. अ० ११.२. ५-६
२८. अ० १.३. ६-९
२९. प्रियाप्रियाणि० । अ० १०.२. ९-१०, १७ ।
३०. पाप्मानो नाम देवताः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् । अ० ११.८. १९ से २७
३१. पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम् ।
जाग्रतस्तद् विकसति, स्वपतश्च निमीलति ।। सुश्रुत, शारीर० ४. ३१ । भाग १ पृष्ट ३३
३२. सुश्रुत, शारीर० ४.४ । पृष्ठ २६.
३३. चरक, शारीर० ७-४
३४. मर्माणि ने वर्मणा छादयामि । अथर्व० ७.११८.१
३५. अष्टांग० शारीर० ४. १-२ । पृष्ठ १९६
३६. सुश्रुत, शारीर० ४. १२ और १३ । पृष्ठ ३०
३७. सुश्रुत, शारीर० ४. २९ । पृष्ठ ३२
३८. सुश्रुत, शारीर० ४. २१ और २२ । पृष्ठ ३१
३९. सुश्रुत, शारीर० ५.६ । पृष्ठ ४२
४०. सुश्रुत, शारीर० ५. ९ । पृष्ठ ४२
४१. सुश्रुत, शारीर० ५. १८ से २२ । पृष्ठ ४३ से ४५

●

अध्याय ३

# निदान - स्थान

१. निदान का अर्थ
२. सभी रोगों का सामान्य कारण
३. रोग के कारण
४. ज्वर (तक्मन्) के कारण
५. ज्वर का परिणाम एवं भेद
६. रोगकृमियों के नाम रूपादि
७. रोग-कृमि और रोग-विस्तार

अध्याय - ३

# निदान - स्थान

**१. निदान का अर्थ**—निदान शब्द के दो अर्थ हैं :—

(क) रोगों की उत्पत्ति का आदि या मूल कारण (Cause), 'निदानं त्वादि-कारणम्' । (ख) रोगों के निर्णय करने के उपायों या साधनों को निदान (Diagnosis) कहते हैं । 'निश्चित्य दीयते प्रतिपाद्यते व्याधिरनेन' इति निदानम् । निदान का मुख्य अर्थ 'कारण' है । रोग क्यों और कैसे हुआ या कैसे होता है, इसका विवेचन 'निदानस्थान' है ।[१]

रोग-विज्ञान में पाँच बातों का समावेश होता है:—(१) निदान—रोग के कारण का ज्ञान । (२) पूर्वरूप—रोग की उत्पत्ति से पूर्व के लक्षण । (३) रूप, लिंग या लक्षण—उत्पन्न हुए रोग के चिह्न । (४) उपशय—रोगनाशार्थ ओषधि, आहार-विहार का उपयोग । (५) संप्राप्ति—शरीर में कौन सा दोष या रोग कब और किस समय बढ़ता है या घटता है, इसका विचार करना ।[२]

**२. सभी रोगों का सामान्य कारण**—अष्टांगहृदय का कथन है कि सभी रोगों के कारण कुपित वात पित्त और कफ हैं । इनके कोप का कारण है—नाना प्रकार के अहित का सेवन ।[३] इससे ज्ञात होता है कि आहार-विहार में अनियमितता या अव्यवस्था सभी रोगों का कारण है । प्रज्ञापराध रोगों का मुख्य कारण माना गया है ।[४] प्रज्ञापराध का भाव है कि मनुष्य की बुद्धि में दोष आने के कारण सभी रोगों का जन्म होता है । खाना-पीना, रहन-सहन, आचार-विचार और आहार-व्यवहार में सर्वप्रथम बुद्धि में दोष आता है । उचित-अनुचित का ठीक ज्ञान न होने से विकृत बुद्धि विभिन्न रोगों को जन्म देती है ।

**३. रोग के कारण**—वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वेदों में रोग के कारण के विषय में तीन प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित थीं । ये हैं:—१. विष-सिद्धान्त, २. जीवाणुवाद, ३. त्रिदोष-सिद्धान्त । अथर्ववेद में अनेक मन्त्रों में इस बात का उल्लेख है कि विष ही समस्त रोगों का कारण है । वह हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर जीवनी शक्ति को नष्ट करता है और विविध रोगों को उत्पन्न करता है । विषैले बाण आदि के लगने से, बिच्छू सर्प आदि के काटने से विष शरीर में प्रविष्ट होता

है । उसके लिए मधु आदि ओषधियों का उल्लेख है ।[५] 'विषस्य विषमौषधम्' विष का प्रभाव विष के द्वारा ही नष्ट किया जा सकता है ।[६] भोजन आदि के द्वारा शरीर में विष संचित होता रहता है और वह समय पाकर विकार उत्पन्न करता है ।

वेदों में जीवाणु या कृमि को रोगों का कारण माना गया है । जीवाणु या कृमि शरीर में प्रविष्ट होकर विभिन्न रोगों को जन्म देते हैं ।[७] ये जीवाणु दृश्य और अदृश्य दोनों प्रकार के हैं ।[८] ये जीवाणु या कृमि सर्वत्र फैले हुए हैं । ये पर्वत, वन, ओषधियाँ, विभिन्न पशु या जीव और जल आदि में फैले हुए हैं । ये दृश्य और अदृश्य रूप में हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर रोगों को जन्म देते हैं ।[९] इस सिद्धान्त को जीवाणुवाद (Germs Theory) कहते हैं ।

अथर्ववेद में त्रिदोष-सिद्धान्त का भी उल्लेख मिलता है । वेद में वात, पित्त और कफ के लिए अभ्र, वात और शुष्म शब्द मिलते हैं । अभ्र (जल, कफ), वात (वात) और शुष्म (पित्त) है । अतः त्रिदोष के विकार से उत्पन्न होने वाले रोगों को अभ्रजा, वातजा और शुष्म कहा है ।[१०]

ऋग्वेद में 'त्रिधातु' शब्द का प्रयोग है और कहा गया है कि अश्विनीकुमार त्रिधातु-विषयक सुख दें । सायण ने इसकी व्याख्या में त्रिधातु का अर्थ वात, पित्त और श्लेष्म अर्थात् कफ रूपी तीन धातुएँ किया है ।[११] अथर्ववेद में कहा गया है कि सूर्य ने एक ओज को तीन प्रकार से फैलाया । सायण ने इसकी व्याख्या में 'त्रेधा' का अर्थ वात, पित्त और कफ रूपी दोषत्रय (तीन दोष) किया है ।[१२]

ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र में उल्लेख है कि तीन प्रकार की ओषधियाँ हैं और वे तीन प्रकार से लाभकारी हैं । तीन प्रकार की ओषधियाँ हैं—दिव्य, पार्थिव और जलीय ।[१३] तीन प्रकार से लाभ के दो अभिप्राय हो सकते हैं—(१) वात, पित्त और कफ । इन तीनों दोषों को नष्ट करने वाले । (२) आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार के दुःखों को दूर करने वाले ।

अथर्ववेद में पित्त शब्द का स्पष्ट उल्लेख है ।[१४] वात के लिए वात शब्द है । वातीकार, वातीकृत, वातीकृत-नाशिनी शब्दों से स्पष्ट है कि इन शब्दों में वात शब्द वातरोग के लिए है ।[१५] वेदों में कफ के लिए श्लेष्म शब्द का प्रयोग नहीं है । कफ के लिए अभ्र (जल या वर्षाजल) शब्द है और कफज रोगों के लिए अभ्रजा और बलास शब्द हैं ।[१६]

वेदों में रोगों के दो भेद माने गए हैं:—शारीरिक या कायिक और आगन्तुक । शारीरिक रोगों के लिए रोग और अमीव या अमीवा शब्द हैं तथा आगन्तुक रोगों के लिए रक्षस्, राक्षस और यातुधान शब्द हैं । ऋग्वेद में अमीवा और रक्षस् दोनों भेदों का उल्लेख है ।[१७]

अथर्ववेद में रोग के कारण बताए हैं:—अधिक विषयासक्ति और दुर्भावना या दुर्विचार ।[१८] इस मंत्र में काम का विषयासक्ति और अपकाम शब्द का दुर्भावना अर्थ है । हृदय में दुर्विचार प्रज्ञापराध के कारण हैं । दुर्विचार से बुद्धि विकृत होती है और शारीरिक शक्ति क्षीण होती है, अतः मनुष्य रोगी होता है ।

अथर्ववेद में चिन्ता या शोक को भी रोगों का कारण माना गया है । मंत्र का कथन है कि बीती बातों की चिन्ता न करो, क्योंकि इससे शक्ति क्षीण होती है और अवनति होती है ।[१६]

अथर्ववेद में प्राण को भी रोग का कारण कहा गया है । प्राण ही जीवन है, प्राण ही मृत्यु है और प्राण ही रोग एवं ज्वर है । अतएव विद्वान् प्राण की उपासना करते हैं ।[२०] इसका अभिप्राय यह है कि प्राणशक्ति ही जीवन है । प्राणायाम आदि के द्वारा प्राणशक्ति को पुष्ट करने से नीरोगता और सबलता प्राप्त होती है । प्राणशक्ति का क्षय होना ही रोग और मृत्यु है । इस मंत्र में एक और महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि सत्यवादी को रोग आदि नहीं होते और वह उत्तम स्थिति में रहता है । इसका अभिप्राय यह है कि सत्यनिष्ठा दुर्विचार और दुर्भावनाओं को नष्ट कर देती है, अतः रोग के जीवाणु दग्ध हो जाते हैं । यही है नीरोगता और मृत्यु पर विजय ।

अथर्ववेद में रोगनाशक ये उपाय बताए गए हैं:—(१) अग्नि अर्थात् जाठराग्नि को प्रदीप्त रखना । प्राणायाम आदि के द्वारा शरीर की अग्नि या उष्णता को बनाए रखना । मन्दाग्नि या कब्ज से ही रोग होते हैं । (२) सोम (ओषधियाँ, सात्त्विक विचार और मनःशुद्धि, सोम्यता) । (३) पूतदक्ष (मन और कर्म से पवित्रता तथा पूर्ण स्वच्छता) । (४) वेदिः, बर्हिः, समिधः (नियमित यज्ञ करना) ।[२१]

**४. ज्वर (तक्मन्) के कारण**—वेदों में ज्वर के लिए तक्मन् शब्द है । ज्वर शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है । चरक ने ज्वर को सारे रोगों में प्रधान माना है । यह सारे प्राणियों के प्राण हरता है तथा देह इन्द्रिय और मन को कष्ट देता है । यह शरीर को सन्तप्त करता है, अतः इसे ज्वर कहते हैं ।[२२] शरीर में वात, पित्त और कफ के दूषित होने से विभिन्न प्रकार के ज्वर होते हैं । अतएव एक मन्त्र में कहा गया है कि यह कम्पन पैदा करने वाला (कफप्रधान), तापकारी (पित्तप्रधान) और खांसी-युक्त (वातप्रधान) होता है ।[२३]

ऋतु-परिवर्तन के कारण ज्वर आदि होते हैं, अतः इसको शारद (शरद् ऋतु का), ग्रैष्म (ग्रीष्म ऋतु का), वार्षिक (वर्षा ऋतु का) कहा गया है ।[२४] ज्वर के भेद दिए गए हैं—प्रतिदिन आने वाला, दूसरे दिन, तीसरे दिन और चौथे दिन आने वाला ।[२५]

अथर्ववेद में ज्वर के कारण में आहार-विहार में अनियमितता, भूख से अधिक

खाना या पेटू होना और अस्वच्छता का निर्देश है । अस्वच्छता के कारण शूद्रों आदि में यह रोग अधिक होता है । 'प्रफर्वी' शब्द से संकेत है कि चर्बी का अधिक होना या मोटापन भी ज्वर आदि रोगों का कारण है ।[२६] ज्वर का कारण अजीर्ण या कब्ज है । अतः इसे नीचे हटाने का निर्देश है ।[२७] इसका अभिप्राय यह है कि पेट को साफ रखकर मल आदि को नीचे सरका दिया जाए, जिससे अजीर्ण न रहने पावे ।

ज्वर के स्थान बताए हैं:—मूंज या अधिक घास वाले स्थान जंगल आदि और अधिक वर्षा वाले स्थान ।[२८] जहाँ सूर्य की किरणें एवं शुद्ध वायु नहीं पहुँच पाती हैं, वहाँ ज्वर आदि अधिक होते हैं ।

**५. ज्वर का परिणाम एवं भेद आदि**—ज्वर से शरीर का ताप बढ़ जाता है, रोगी प्रलाप करता है, शरीर में पीलापन हो जाता है, शरीर की कान्ति क्षीण हो जाती है । ज्वर शरीर को तपा देता है, उसकी शक्ति क्षीण कर देता है, मुँह को लाल बना देता है और मुँह का स्वाद फीका कर देता है ।[२९]

ज्वर के भेदों का उल्लेख है कि यह दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन आने वाला होता है । यह लगातार रहने वाला और साल भर चलने वाला भी होता है । यह जाड़ा, गर्मी और बरसात में ऋतुपरिवर्तन के समय होता है ।[३०] कास (खांसी) और बलास (कफ का प्रकोप) ज्वर के मित्र हैं ।[३१] ज्वर को वरुण का पुत्र कहा गया है ।[३२] वरुण जल का स्वामी है । अतः ज्वर को जल से उत्पन्न होने वाला रोग समझना चाहिए । गन्दे जल से या रुके हुए पानी के प्रयोग से यह रोग उत्पन्न होता है ।

**६. रोगकृमियों के नाम रूपादि**—अथर्ववेद के एक मन्त्र में पाँच प्रकार के कृमियों का उल्लेख है:—(१) दृष्ट (दिखाई देने वाले), (२) अदृष्ट (न दीखने वाले), (३) कुरुरु (भूमि पर रेंगने वाले), (४) अल्गण्डु (विषैले कृमि, विस्तर आदि में रहने वाले), (५) शलुन (काटने वाले कृमि, वेग से चलने वाले) । इन सभी रोगकृमियों को नष्ट करने का विधान है ।[३३]

कृमियों को दो भागों में बाँटा गया है :—(१) दुर्णामन् (दुर्नाम, बदनाम, रोगोत्पादक), (२) सुनामन् (सुनाम, अच्छे, पोषक) । दुर्णाम रोगोत्पादक हैं । इससे अर्श (बवासीर) आदि रोगों का भी ग्रहण होता है । सुनाम पोषक कृमि हैं । इनमें से दुर्णाम कृमियों को नष्ट करना चाहिए और सुनाम को स्थान देना चाहिए ।[३४]

रोगकृमियों के स्वरूप आदि का भी उल्लेख मिलता है । यथा—कुछ छोटे होते हैं, कुछ आकार में बड़े होते हैं । कुछ शब्द करते हैं, कुछ नहीं ।[३५] कुछ की चार आँखें होती हैं, कुछ विचित्र रंग वाले (चितकबरे या धब्बे वाले) और कुछ श्वेत

वर्ण के होते हैं ।[३६] मंत्र में अर्जुन शब्द श्वेत (सफेद) का बोधक है । कृमियों के रंग भी अनेक होते हैं—सरूप (समान रूप वाले), विरूप (विविध रूप वाले), कृष्ण (काले), रोहित (लाल), बभ्रु (भूरे), बभ्रुकर्ण (भूरे कान वाले), शितिकक्ष (सफेद बगल वाले), शितिबाहु (सफेद बाहुवाले), विश्वरूप (नाना रूप वाले या अपना रंग बदलने वाले) ।[३७] कुछ कृमियों के बाल या रोंगटे होते हैं ।[३८] कुछ कृमियों के दो मुँह, चार आँख और पाँच पैर होते हैं । इनके पैरों में अंगुलियाँ नहीं होती हैं ।[३६] कुछ कृमियों के पैर पीछे की ओर होते हैं । एड़ी और मुँह आगे की ओर होते हैं ।[४०]

कुछ कृमि खल (खलिहान) में उत्पन्न होते हैं, कुछ गोबर से और गोबर के धुएँ से ।[४१] कृमियों के निवास-स्थान और उत्पत्ति-स्थान बताए गए हैं :—पर्वत, वन, ओषधि, वनस्पति, पशु और जल ।[४२] रोग-कृमि इन स्थानों पर छिपे रहते हैं:—आँख, नाक, दाँत, आंत, सिर के अन्दर और पसलियों में ।[४३]

कुछ रोगकृमियों के नाम ये हैं :—येवाष, कष्कष, एजत्क, शिपवित्नुक, नदनिमा । दुर्णाम, अलिंश, वत्सप, पलाल, अनुपलाल, शर्कु, कोक, मलिम्लुच, पलीजक, आश्रेष, वव्रिवासस्, अक्षग्रीव, प्रमीलिन् ।[४४]

**७. रोगकृमि और रोग-विस्तार**—रोग के कृमियों से रोग का किस प्रकार विस्तार होता है, इस विषय पर भी अथर्ववेद में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । कुछ रोग के कृमि बाहर से आकर हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं ।[४५] गण्डमाला रोग के विषय में कहा गया है कि इस रोग के कृमि पक्षी के तुल्य उड़कर दूसरे व्यक्ति को लग जाते हैं और वह रोगी हो जाता है ।[४६] रोग छूत से कैसे हो जाते हैं, इसका उल्लेख किया गया है कि जूठा जल पीने से या दूसरे के बिस्तर पर सोने से दूसरे का रोग लग जाता है ।[४७] भोज्य वस्तुओं में भी रोग के कृमि रहते हैं । उनको असावधानी से खाने या पीने से रोग-कृमि शरीर के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं और रोगों को उत्पन्न करते हैं । रोग के कृमि दूध, मट्ठा आदि भोज्य वस्तुओं में और विविध धान्यों या अन्नों में रहते हैं ।[४८] रोग-कृमि कच्चे, अधिक पके और सड़े हुए फलों आदि में होते हैं । इनको खाने से ये रोगकृमि शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं ।[४६]

स्त्री को प्रसूति आदि रोग करने वाले कृमि काले, रोंगटे वाले और मुख वाले होते हैं । ये स्त्री की योनि और कटिप्रदेश में अपना स्थान बनाकर रहते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं ।[५०] रोग के कृमि शरीर में प्रवेश करके ये काम करते हैं:—व्यक्ति को शक्तिहीन करते हैं, उसका खून पी जाते हैं, क्षीणता या शक्तिक्षय करते हैं । वीर्य के जीवाणुओं को नष्ट करते हैं और गर्भ को नष्ट करते हैं ।[५१] स्त्री के प्रसूतिरोग

को करने वाले कृमियों को नष्ट करने के लिए बज (सफेद सरसों) और पिंग (पीली सरसों) का उल्लेख है ।[५२]

रोगकृमियों में मच्छर आदि का भी उल्लेख है, जो घर के आसपास रहते हैं । इनको नष्ट करने का विधान है ।[५३] मच्छर मारने की दवा 'मशकजम्भनी' (शब्द १८०) का भी उल्लेख है ।[५४]



---

१. चरक संहिता, निदान स्थान १.३
२. वही, १. ७ से १२
३. सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः । अष्टांग, निदान० १.१२
४. अष्टांग, सूत्र० १२.३५
५. यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् । अ० ६.८.१०
मधुः... विषम् इयं वीरुद् अनीनशत् । अ० ७.५६. १ और २
६. विषेण हन्मि ते विषम् । अ० ५.१३.४
७. ये क्रिमयः... अस्माकं तन्वम् आविविशुः । अ० २.३१.५
८. ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेषु-ओषधीषु० । अ० २.३१.५
९. दृष्टान् ...अदृष्टान्... प्रमृणन् क्रिमीन् । अ० ५.२३.६
१०. यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मः० । अ० १.१२.३
११. त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती । ऋग्० १.३४.६
वातपित्तश्लेष्म-धातुत्रयविषयं सुखम्० । सायण
१२. य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे । अ० १.१२.१
१३. त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा० । ऋग्० १.३४.६
१४. अग्ने पित्तम् अपामसि । अ० १८.३.५
१५. अ० ६.८.२० ।६.१०६.३। ६.४४.३
१६. अ० १.१२.३ ।बलासम्, अ० ६.१४.१। बलासनाशनीः, अ० ८.७.१०
१७. अपामीवा भवतु रक्षसा सह । ऋग्० ६.८५.१
१८. यदि कामाद् अपकामाद् हृदयात् जायते परि । अ० ६.८.८
१९. मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् । अ० ८.१.८
२०. प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा० ।
प्राणो ह सत्यवादिनम् उत्तमे लोक आ दधत् । अ० ११.४.११'
२१. अग्निः, सोमः, पूतदक्षाः, वेदिः, बर्हिः । अ० ५.२२.१
२२. ज्वरस्तु देहेन्द्रियमनस्तापकरः ।
ज्वरयति शरीराणीति ज्वरः । चरक निदान० १. १६ और ३५
२३. शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः । अ० ५.२२.१०
२४. शारदम्, ग्रैष्मम्, वार्षिकम् । अ० ५.२२.१३
२५. यो अन्येद्युः, उभयद्युः, तृतीयकाय० । अ० १.२५.४
२६. शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यम् । अ० ५.२२.७

२७. न्यङ् अधराङ् वा परेहि । अ० ५.२२.२
२८. ओको अस्य मूजवन्तः । अ० ५.२२.५
२६. अ० ५.२२.२ । ६.२०. १ से ३
३०. अ० ५.२२.१३ । ७.११६.२
३१. अ० ५.२२. ११ और १२
३२. राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः । अ० १.२५.३
३३. दृष्टम्, अदृष्टम्, कुरुरुम्, अल्गण्डून्, शलुनान् । अ० २.३१.२
३४. दुर्णामा च सुनामा च० । अ० ८.६.४
३५. ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः । अ० १६.३६.३
३६. विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिम्० । अ० २.३२.२
३७. सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ० । अ० ५.२३. ४ और ५
३८. केशवाः । अ० ८.६.२३
३६. द्व्यास्यात् चतुरक्षात्० । अ० ८.६.२२
४०. पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः० । अ० ८.६.१५
४१. खलजाः शकधूमजाः० । अ० ८.६.१५
४२. ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेषु० । अ० २.३१.५
४३. अ० २.३१.४ । अ० ५.२३.३
४४. अ० ५.२३. ७ और ८ । अ० ८.६. १ और २
४५. ये क्रिमयः.... अस्माकं तन्वम् आविविशुः । अ० २.३१.५
४६. पक्षी जायान्यः पतति स आविशति पूरुषम् । अ० ७.७६.४
४७. अपां मा पाने... शयने शयानम् । अ० ५.२६.८
४८. क्षीरे मा मन्थे.... अशने धान्ये यः । अ० ५.२६.७
४६. आमे सुपक्वे शबले विपक्वे० । अ० ५.२६.६
५०. यः कृष्णः केशी-असुरः... तुण्डिकः । अ० ८.६.५
५१. अरायम् असृक्पावानं... गर्भादं कण्वं नाशय । अ० २.२५.३
५२. बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् । अ० ८.६.२४
५३. मककान् नाशयामसि । अ० ८.६.१२
५४. मशकजम्भनी । अ० ७.५६.२

●

अध्याय ४

# चिकित्सा - स्थान

## (क) ज्वर आदि रोग

१. ज्वर
२. विषम ज्वर या संनिपात ज्वर
३. राजयक्ष्मा या क्षय रोग
४. अज्ञात यक्ष्मा (कैन्सर ?)
५. आनुवंशिक रोग
६. संक्रामक रोग या छूत रोग
७. हरिमा, कामला या पाण्डुरोग
८. जायान्य, जायेन्य रोग
९. विशर रोग
१०. विषूचिका रोग

## (ख) वातज रोग

११. वातरोग
१२. श्वास रोग
१३. सन्धिवात
१४. कटिवात

## (ग) पित्तज रोग

१५. अतिसार (दस्त)
१६. आमातिसार (आंव पड़ना)
१७. विशरीक (पेचिश)
१८. रक्तातिसार (खूनी पेचिश)
१९. रक्तपित्त एवं रक्तवमन

### (घ) कफज रोग

२०. कास (खांसी)
२१. बलास (कफरोग)

### (ङ) चर्मरोग

२२. चर्मरोग
२३. कुष्ठ, किलास, श्वित्र (सफेद कुष्ठ)
२४. अर्श (बबासीर)
२५. पामा (खाज)
२६. दद्रु (दाद)
२७. विसर्प (फैलने वाली फुंसियां)
२८. रक्त-विकार

### (च) घाव, चोट आदि

२९. शोथ (सूजन)
३०. सद्योव्रण (ताजा घाव, चोट)
३१. क्षत, व्रण (घाव, चोट)
३२. आस्रव, रुधिर-स्राव, शल्यव्रण आदि
३३. विद्रधि (फोड़ा, अल्सर)
३४. शूल (दर्द)
३५. दाह (जलन)
३६. आशरीक, अंगशूल (देह मे दर्द)
३७. अस्थिभंग-चिकित्सा

### (छ) सिर, आँख, नाक, कान के रोग

३८. शीर्षक्ति, शिरोरोग
३९. केशरोग, केशवर्धनी
४०. बाल काला करना
४१. नेत्ररोग-चिकित्सा
४२. विलोहित (नकसीर)
४३. दन्तरोग, दन्तशूल
४४. कर्णशूल (कान दर्द)
४५. मुखरोग
४६. अपचित्, गंडमाला

## (ज) हृदय, नाभि, उदर रोग

४७. हृदय रोग
४८. पृष्ट्यामय (पसली का दर्द)
४९. उदरशूल (पेट दर्द)
५०. जलोदर, अप्वा रोग
५१. रेचक (कब्ज हटाना)
५२. क्षुधामार (भूख न लगना)
५३. भस्मक रोग (भूख अधिक लगना)
५४. तृष्णा रोग (प्यास अधिक लगना)
५५. जम्भ रोग
५६. मूत्ररोध, मूत्रकृच्छ्र रोग
५७. अश्मरी (पथरी)
५८. वमन (कै)

## (झ) हाथ, पैर के रोग

५९. हाथ-पैर फटना
६०. कुनख रोग
६१. पाद रोग

## (ञ) मानस रोग

६२. मानस रोग
६३. क्रोध
६४. मोह, शोक
६५. ईर्ष्या
६६. दुःस्वप्न, स्वप्नदोष
६७. उन्माद रोग
६८. क्षिप्तरोग, धनुर्वात
६९. अपस्मार (मृगी) रोग
७०. मूर्च्छा रोग

## (ट) बालरोग

७१. बच्चों के दांत निकलना
७२. जम्भ रोग

## (ठ) विविध शूल एवं प्रमेह आदि

७३. पृष्ट्यामय (पसली का दर्द)
७४. प्लीहा शूल (तिल्ली में दर्द)
७५. प्लीहा-यकृत्-वृद्धि
७६. अस्थियों और पर्वों के रोग
७७. प्रमेह एवं मधुमेह

## (ड) स्त्रीरोग

७८. स्त्रीरोग
७६. योनिरोग
८०. योनिकृमि एवं गर्भनाशक कृमि
८१. गर्भदोष
८२. गर्भस्थापक
८३. गर्भदृंहण
८४. गर्भपात रोकना
८५. गर्भपात कराना
८६. ऋतुस्राव रुकना
८७. रक्त-प्रदर
८८. सुखप्रसव
८६. मूढगर्भ
६०. अनपत्यता, बन्ध्यात्वरोग (पुत्रलाभ)
६१. स्तन का दूध बढ़ाना
६२. स्त्री-सौन्दर्य की वृद्धि

## (ढ) गुप्तरोग

६३. अर्शरोग (बवासीर)
६४. स्वप्नदोष
६५. नपुंसकता, अक्षपराजय
६६. धातुरोग, धातुक्षय
६७. सूजाक
६८. भगन्दर
६६. उपदंश (सिफिलिस, फिरंग)

अध्याय - ४

# चिकित्सा-स्थान

## (रोग-चिकित्सा)

## (क) ज्वर आदि रोग

१. **ज्वर**—ज्वर एवं अन्य रोगों की उत्पत्ति के कारणों पर निदानस्थान में विवेचन किया गया है । अथर्ववेद में ज्वर के लिए तक्मन् शब्द का प्रयोग है । ज्वर शब्द नहीं आया है । चरक ने ज्वर को सारे रोगों में मुख्य माना है । यह ही सारे प्राणियों के प्राण हरता है । यह सारे रोगों का राजा है । यह शरीर को सन्तप्त करता है, अतः इसे ज्वर कहते हैं । यह देह, इन्द्रिय और मन को संतप्त करता है । यह अन्य रोगों की अपेक्षा बहुत दुश्चिकित्स्य है अर्थात् इसका इलाज बहुत कठिन है । चरक का मत है कि सारे प्राणी ज्वर के साथ ही उत्पन होते हैं और ज्वर के साथ ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं ।[१]

ज्वर का सम्बन्ध शरीर के किसी भाग-विशेष से न होकर सारे शरीर से है । यह सारे शरीर पर अपना प्रभाव दिखाता है और रोगी को व्याकुल कर देता है । चरक का कथन है कि यह देह, इन्द्रियां और मन में संताप उत्पन्न करता है, सभी रोगों में प्रमुख है, अति बलवान् है और रोगों में अग्रगण्य है ।[२] आयुर्वेद में ज्वर के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है । ये सभी शब्द रोग के पर्यायवाची हैं । ये शब्द हैं—ज्वर, विकार, रोग व्याधि और आतंक ।[३] साथ ही रोग के कारण बताए गए हैं—शारीरिक और मानसिक । शारीरिक दोष वात, पित्त और कफ हैं तथा मानसिक दोष रजस् और तमस् हैं । चरक का कथन है कि शारीरिक और मानसिक दोषों से रहित व्यक्तियों को ज्वर नहीं होता है ।[४]

वैदिक साहित्य में ज्वर के लिए तक्मन् (तक्मा) शब्द आया है । वेद में ज्वर के लिए अन्य शब्द अर्चिः, तपुः, शोचिः, शोकः अभिशोकः, ह्रूडुः, वरुणस्य पुत्रः आदि आए हैं ।[५] आमाशयस्थ जाठराग्नि के विकार से ज्वर आदि रोगों का प्रकोप होता है । वेदों में ज्वर की चिकित्सा के लिए अनेक ओषधियों का उल्लेख है । इनके प्रयोग से ज्वर दूर होता है । साथ ही ज्वर की चिकित्सा के लिए यज्ञ, जल-चिकित्सा, सूर्य-चिकित्सा, वायु-चिकित्सा आदि उपाय बताए गये हैं ।

अथर्ववेद के मन्त्रों में कुष्ठ (कूठ) ओषधि का बहुत महत्त्व वर्णित है ।[६] इसे ज्वर, खांसी, शिर के रोग, आँखों के रोग, शरीर की अन्य बीमारियों का नाशक बताया गया है ।[७] इसको हिमालय की ऊँची चोटियों पर होने वाला कहा गया है । साथ ही इसको सोमलता के समीप ही उत्पन्न होने वाला भी कहा गया है ।[८] यह सिन्धु नदी के किनारे, कश्मीर, चिनाव और झेलम नदी के उद्‌गम स्थल आदि पर होता है । इसका एक भेद पुष्कर मूल या पोहकर-मूल है । यह कश्मीर, चम्बा, जम्मू आदि पहाड़ी स्थानों की बर्फ वाली ऊँची चोटियों पर होता है । भावप्रकाश निघण्टु में इसको वात, कफ, खांसी आदि रोगों का नाशक कहा है ।[९] इंग्लिश् में कूठ को Sassuria lappa (सासुरिया लैपा) और पुष्कर मूल को Oris Root (ओरिस रूट) कहते हैं । अथर्ववेद में कूठ को विश्वभेषज अर्थात् सभी रोगों की दवा कहा है ।[१०] इसे सिर के रोग, प्रतिदिन आने वाले ज्वर, तीसरे दिन आने वाले और सालभर रहने वाले ज्वरों को नष्ट करने वाला बताया गया है ।[११]

अथर्ववेद में जंगिड का उल्लेख है । इसके मणिधारण का विधान है । इसे विश्वभेषज अर्थात् सर्वरोग-चिकित्सा कहा गया है ।[१२] यह साल भर रहने वाले ज्वर को नष्ट करता है ।[१३] सायण ने इसे वाराणसी में प्रसिद्ध वृक्ष बताया है । दारिल ने जंगिड से अर्जुन वृक्ष लिया है । प्रो० कैलण्ड भी इसे अर्जुन वृक्ष मानते हैं ।

अथर्ववेद में गूगल के लिए गुल्गुलु शब्द है । इसे ज्वरनाशक बताया गया है । गूगल के विषय में कहा गया है कि गूगल की सुगन्ध जिस व्यक्ति के पास पहुँच जाती है, उसे किसी प्रकार का ज्वर आदि रोग नहीं हो सकता है ।[१४] भावप्रकाश निघंटु में गूगल को सारे दोषों का नाशक कहा है । यह बलवर्धक, वात कफ का नाशक, प्रमेह, पथरी, कुष्ठ, बवासीर, गंडमाला तथा कृमिरोगों का नाशक है ।[१५] योगराज गुग्गुल, जिसमें गूगल प्रधान वस्तु है, वात, शोथ, गंडमाला, गठिया आदि में सेवित होता है । गूगल कुष्ठ, वात, फिरंग रोग और आनुवंशिक रोगों में भी लाभप्रद है । यह वातव्याधि, गलगंड, गंडमाला और चर्मरोगों में प्रयुक्त होता है । पुराने क्षतों (चोटों) में बहुत ही हितकर है ।

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में अञ्जन का उल्लेख है। वेदों में अञ्जन और आञ्जन दोनों शब्द मिलते हैं ।[१६] यह त्रिककुद् पर्वत और यमुना-प्रदेश में होता है, अतः इसे त्रैककुद या त्रैककुभ और यामुन कहते हैं ।[१७] अथर्ववेद में इसे पीलिया, धातुरोग, ज्वर, कफरोग, हृदयरोग, अंगभेद और छूतरोगों में लाभप्रद बताया है ।[१८] पैप्पलाद संहिता में इसे नेत्र-ज्योतिवर्धक, रक्षोनशक, दुःस्वप्न-नाशक और क्षेत्रिय रोग-नाशक कहा गया है ।[१९] अञ्जन को ज्वर, कफरोग और सर्पविषनाशन की

प्रमुख ओषधि माना गया है ।[२०] अञ्जन की विशेषता यह है कि यह शरीर के प्रत्येक अंग में पहुँच कर रोग को दूर करता है ।[२१]

अथर्ववेद में शंख का रोगनिवारण में प्रयोग बताया गया है । शंख को समुद्र से उत्पन्न होने वाला और सुवर्ण का पुत्र कहा गया है । इसके लिए कृशनः (मोती) शब्द भी दिया गया है ।[२२] इसे विश्वभेषज अर्थात् सर्वरोगनाशक कहा गया है ।[२३] शंख की मणि के धारण का भी विधान है । कृशनः (मोती) शब्द से ज्ञात होता है कि शंख-भस्म आदि में सुवर्ण-भस्म और मोती-भस्म आदि के गुण होते हैं । शंखमणि को दीर्घायु, तेजस्विता, रोगनाशन और शारीरिक बलवृद्धि के लिए बांधने का विधान है ।[२४]

अथर्ववेद में पिप्पली (पीपर) को समस्त वातव्याधियों में खिलाने का विधान है । यह मेधावर्धक है । यह रसायन है ।[२५] भावप्रकाशनिघंटु में इसे ज्वर, खांसी, श्वास, बवासीर, आमवात का नाशक बताया है । आधुनिक अनुसंधानों के अनुसार यह वातनाशक, रेचक और रसायन है । इसका खांसी, ग्रहणी, जीर्ण कफरोग, प्लीहा और यकृत् की वृद्धि, आमवात, कटिवात आदि में प्रयोग होता है ।[२६]

अथर्ववेद में ज्वरनाशक उपायों में अग्नि, सोम और हवन को मुख्य रूप से बताया गया है ।[२७] अग्नि का अभिप्राय जाठराग्नि या वैश्वानर अग्नि है । पेट की अग्नि निर्बल होने पर मन्दाग्नि या कब्ज दोष होता है, उससे ही ज्वर आदि रोगों की उत्पत्ति होती है । अतः प्राणायाम आदि के द्वारा जठराग्नि को प्रदीप्त करके मन्दाग्नि को दूर हटाना चाहिए । सोम ओषधि को पीस कर पीने से ज्वर नष्ट होता है । मंत्र में वरुण शब्द दिया गया है । उसका अभिप्राय जल या जल-चिकित्सा से है । जल का प्रचुर सेवन शरीर से सभी दोषों को बाहर निकालता हैं । अतः पेट की शुद्धि होने से ज्वर आदि स्वयं नष्ट हो जाते हैं । मंत्र में यज्ञ और समिधा आदि को ज्वरनाशक बताया है । इसका अभिप्राय यह है कि यज्ञ की सुगन्धि रोग के कीटाणुओं को नष्ट करती है और वायु को शुद्ध करती है । साथ ही यज्ञ की शुद्ध वायु फेफड़े में पहुँच कर रोगाणुओं को नष्ट करती है । इस प्रकार यज्ञ ज्वर ही नहीं, अपितु प्रायः सभी रोगों को नष्ट करने का सरल और उत्तम उपाय है ।

अथर्ववेद में निर्देश है कि ज्वर को नीचे की ओर हटाना चाहिए ।[२८] इसका अभिप्राय यह है कि ज्वर का मुख्य कारण अजीर्ण या कब्ज है । पेट को साफ रखने और अजीर्ण को नष्ट करने से यह ज्वर नष्ट होता है । पेट की स्वच्छता से मल नीचे की ओर जाकर मल-मूत्र के रूप में बाहर निकल जाता है और पेट की स्वच्छता के कारण ज्वर भी नष्ट हो जाता है ।

अथर्ववेद में दासी और शूद्रा ओषधियों को भी ज्वरनाशक बताया गया है ।[२९]

भावप्रकाश निघण्टु में काकजंघा का नाम दासी दिया है । यह कफ-पित्त ज्वर, रुधिर विकार, खुजली, विष और कृमि को नष्ट करती है । इसका लैटिन नाम Leea Hirta लीया हिरटा है ।[३०] वैद्यक शब्दसिन्धु में प्रियंगु, फूलप्रियंगु को शूद्रा या शूद्रार्ता नाम दिया गया है । भावप्रकाश निघण्टु में इसे ज्वर, दाह, रक्तातिसार (खूनी पेचिश), गुल्म (गठिया), तृषा, विष और प्रमेह का नाशक बताया गया है । इसका लैटिन नाम Prunus Mahaleb (प्रुनस महालेब) है । इसके विषय में यह कहा गया है कि जो गुण प्रियंगु में हैं, वे ही फूल प्रियंगु में भी हैं । पाश्चात्त्य सिद्धान्त के अनुसार प्रियंगु का प्रयोग ज्वर, अतिसार (दस्त) और यकृत् (जिगर) के रोगों में होता है ।[३१]

अथर्ववेद में पुनर्नवा ओषधि का उल्लेख है । इसे पुनर्णवा भी कहते हैं ।[३२] यह गर्मी में सूख जाती है और वर्षा में पानी पड़ते ही पुनः हरी हो जाती है, अतः इसे पुनर्नवा कहते हैं । यह सफेद और लाल दो प्रकार की होती है । भावप्रकाश निघण्टु में इसे अग्निदीपक, पांडुरोग, उदररोग, कफ, सूजन, कफपित्त और रुधिर विकार का नाशक बताया है । यह पाचक, मूत्रकारक और कफनिःसारक है । इसका श्वासरोग, कामला, शोथ, प्लीहा एवं यकृत् रोग, सूजाक और मूत्रकृच्छ्र में प्रयोग होता है । विषधर कीड़ों के काटने में और विशेषरूप से बिच्छू के काटने में इसका लेप महौषधि है ।[३३]

अथर्ववेद में वरण को ज्वरनाशक कहा है ।[३४] इसको वरुण भी कहते हैं । इसको हिन्दी में वरना या वरुण कहते हैं । इसकी मणि भी धारण की जाती है और इसे विश्वभेषज अर्थात् सर्वरोगनाशक कहा गया है ।[३५] अथर्ववेद में इस सूक्त के २५ मंत्रों में इसका गुणगान किया गया है । इसे सब प्रकार की मृत्यु से बचाने वाला कहा गया है । भावप्रकाश निघण्टु में इसे अग्निदीपक, कफ, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, वातगुल्म, रक्तविकार और क्रिमिनाशक बताया है । पाश्चात्त्य मतानुसार यह पाचक, शक्तिवर्धक और अश्मरी (पथरी) का नाशक है । पथरी रोग के लिए यह अत्युत्तम ओषधि है । यह राजयक्ष्मा (T. B.) को ठीक करता है । तपेदिक दूर करने के लिए इसकी मणि (माला) गले में बांधने का विधान है । यह विष का प्रभाव नष्ट करता है । पैर के तलवे में सूजन होने पर इसके पत्ते का लेप किया जाता है ।[३६]

अथर्ववेद में वैश्वानर अग्नि को यक्ष्म (ज्वर, तपेदिक, राजयक्ष्मा) रोग का नाशक बताय गया है ।[३७] इसका अभिप्राय यह ज्ञात होता है कि मन्दाग्नि या कब्ज से ज्वर आदि रोग होते हैं । अतः वैश्वानर अग्नि अर्थात् जाठराग्नि को प्रदीप्त करने से भूख बढ़ती है, अन्न-पाचन ठीक होता है और शक्तिवृद्धि होती है । मन्दाग्नि दोष के निराकरण से ज्वर आदि भी नहीं होते ।

अथर्ववेद के एक सूक्त के ७ मंत्रों में काश्यय विद्या के द्वारा सभी प्रकार के ज्वर एवं प्रत्येक अंग के विभिन्न रोगों को नष्ट करने का उल्लेख है ।[३८] काश्यप विद्या क्या है ? इसका स्पष्टीकरण नहीं मिलता है । मंत्र में 'वीबर्ह' शब्द का उल्लेख है । इसका अर्थ है—मार्जन, Purification । इससे ज्ञात होता है कि काश्यय विद्या का अर्थ है शरीरशुद्धि, शरीर के अंग-प्रत्यंग का मार्जन । इसके लिए यौगिक क्रिया में शंख-प्रक्षालन, नेति, धौति-क्रिया आदि हैं । उपवास भी इस प्रकार का एक साधन है । वर्तमान पद्धतियों में एनीमा लेना भी एक मार्जन का प्रकार है । ये क्रियाएं सम्पूर्ण शरीर-शुद्धि के लिए उपयोगी हैं ।

**२. विषमज्वर या संनिपात ज्वर**—अष्टांगहृदय में संनिपात ज्वर के कुछ कारण ये गिनाए गए हैं—तीनों दोषों (वात, पित्त, कफ) के प्रकोपक कारणों के मिलने से संनिपात होता है । यह संनिपात संकीर्ण भोजन (पथ्य-अपथ्य का एक साथ सेवन), अजीर्ण में भोजन, अध्यशन (भोजन के ऊपर दूसरा भोजन), दूषित पानी, दूषित मांस-भक्षण, दूषित अन्न-सेवन, पापाचरण आदि से होता है ।[३६]

संनिपात ज्वर के कुछ खास लक्षण ये हैं—संनिपातजन्य ज्वर (वात-पित्त-कफ तीनों के मिश्रण से जन्य ज्वर) में सब दोषों के लक्षण रहते हैं । इसमें बार-बार दाह होता है, बार-बार ठंड लगती है, दिन में घोर निद्रा, आँखों में आँसू, शरीर के विभिन्न अंगों में दर्द, चक्कर आना, जीभ जली हुई सी काली, अंगों के जोड़ों में शिथिलता, थूक में रक्त-पित्त और कफ आना, सिर में दर्द, हृदय में पीड़ा, मल का अवरोध, गले से कराहना आदि ।[४०]

अष्टांगहृदय में विषम ज्वर में प्रयोज्य कुछ ओषधि आदि ये बताए हैं । त्रिफला या हरड़ या गिलोय और पिप्पली (पीपर) को पृथक्-पृथक् सेवन करें । ज्वर आने के दिन ज्वर से पूर्व लंघन करें । प्रातःकाल सरसों के तेल के साथ लहसुन खावें । भोजन से पहले या प्रातः पुराना घी पीवें। दही, दूध, मट्ठा या पंचगव्य घृत प्रातः या भोजन से पहले पीवें । गूगल, नीम के पत्ते, वच, कूठ, हरड़, सरसों, जौ और घी का धुआं देवें । गूगल, वच, राल, नीम और आक के पत्ते, अगर और देवदारु से सब प्रकार के ज्वरों में धूम देवें । यह अपराजित धूम है ।[४१] जप, होम आदि दैवव्यपाश्रय चिकित्सा सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करती है । यह चिकित्सा विषम ज्वर को विशेषरूप से नष्ट करती है ।[४२] अष्टांगहृदय का कथन है कि विषम ज्वर शान्त न हो तो दोष के अनुसार सिरा-वेधन करें । तृतीयक (तीसरे दिन आने वाले ज्वर) में अंसों (कन्धों) के मध्य में और चतुर्थक ( चौथे दिन आने वाले ज्वर) में स्कन्ध (कन्धे) के नीचे सिरावेधन करें ।[४३] इससे ज्ञात होता है कि अष्टांगहृदय के

रचयिता वाग्भट के समय में सिरावेधन (Acupuncture, एक्यूपंचर) का प्रयोग प्रचलित था ।

अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ) ओषधि को तक्म (ज्वर) का नाशक बताया गया है । इसको सर्वरोगनाशक भी कहा गया है । यह सब प्रकार के यक्ष्मा रोग को नष्ट करती है ।[४४] अथर्वपरिशिष्ट में विषम ज्वर आदि में इसके धूम (धुआं) का भी प्रयोग लाभप्रद बताया गया है ।[४५] अथर्ववेद में गुग्गुलु (गूगल) की सुगन्ध को सभी प्रकार के ज्वरों का नाशक बताया गया है ।[४६] अष्टांगहृदय ने भी गूगल आदि के धूम को अपराजित अर्थात् अमोघ धूम कहा है ।

अथर्ववेद में खदिर (खैर) की मणि का बहुत माहात्म्य वर्णित है ।[४७] बृहस्पति ने खादिर मणि धारण की और वह सर्वरोग-मुक्त होकर तेजस्वी हुआ । उसने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की । पाश्चात्त्य विद्वानों का मत है कि खैर बलप्रद और रसायन है । यह विषम ज्वर (फ्लू), स्नायुदुर्बलता, आमातिसार (आंव आना) और रक्तातिसार (खूनी पेचिश) में सेव्य है ।[४८]

अथर्ववेद में अंजन मणि, जंगिड मणि और शतवार मणि को भी विषम ज्वर का नाशक बताया गया है ।[४९]

**३. राज्यक्ष्मा या क्षय रोग**—अष्टांगहृदय में राजयक्ष्मा के चार कारण बताए गए हैं—१. साहस—शक्ति से अधिक परिश्रम या पुरुषार्थ, २. वेगसंरोध—मल मूत्र आदि का वेग रोकना, ३. वीर्य और ओज का क्षय, ४. खान-पान में अनियमितता ।[५०]

अष्टांगहदय में राजयक्ष्मा के रोगी को शरीरशुद्धि के लिए वमन (कै कराना) और विरेचन (उदर शुद्धि) कराना चाहिए । उसे हलका और पथ्य भोजन अर्थात् पुराना चावल, गेहूँ, जौ, मूंग, बकरी का दूध-घी आदि दें । ताजा मक्खन पीपर और शहद के साथ लेना चाहिए । यह खांसी श्वास और ज्वर का नाशक है ।[५१] राजयक्ष्मा के लिए कुछ शास्त्रीय प्रयोग ये हैं—च्यवनप्राश, प्रवालभस्म, मृतसंजीवनी सुरा, सितोपलादि चूर्ण, बृहद् वासावलेह, काञ्चनाभ्ररस, यक्ष्मारिलौह । अरुचि दूर करने के लिए भोजन से पूर्व नमक लगाकर अदरक, लवणभास्कर या सैन्धवादि चूर्ण ।

अष्टांगहृदय का कथन है कि दैव-व्यपाश्रय चिकित्सा में अथर्ववेदोक्त यज्ञ आदि कर्म करें ।[५२]

ऋग्वेद और यजुर्वेद में राजयक्ष्मा रोग का उल्लेख है । इसकी चिकित्सा के रूप में यज्ञ (हवन) का निर्देश किया गया है ।[५३] यजुर्वेद की तैत्तिरीयसंहिता, काठक

संहिता और मैत्रायणीसंहिता में भी राजयक्ष्मा का प्रसंग आया है ।[५४] तैत्तिरीय संहिता में इसके तीन भेदों का भी वर्णन है । ये भेद हैं—राजयक्ष्मा, पापयक्ष्मा और जायान्य (या जायेन्य) । इस रोग की उत्पत्ति के विषय में कथी दी है कि प्रजापति ने राजा चन्द्रमा को अपनी ३३ पुत्रियां दीं, परन्तु चन्द्रमा ने केवल रोहिणी नक्षत्र से अपना संपर्क अधिक बनाए रखा, अतः अतिविषयासक्ति के कारण उसे राजयक्ष्मा रोग लग गया । यह रोगों में मुख्य है और रोगों का राजा है, अतः इसे राजयक्ष्मा कहते हैं । इन संहिताओं में इस रोग के कारण और निदान का भी उल्लेख है । रोग की उत्पत्ति के तीन कारण बताए हैं—अति विषयासक्ति, पापभावनाएं या पापकृत्य, अधिक स्त्रियों से संभोग ।[५५]

राजयक्ष्मा का भाव है कि यह रोगों का राजा है । यह रोग राजाओं, धनिकों, सम्पन्न वर्ग के लोगों को अधिक होता है, क्योंकि विलासी जीवन के कारण उनमें रोग-रोधकता की मात्रा कम हो जाती है । संपन्नता के कारण जीवन में विलासिता और कामुकता अधिक होती है । पापयक्ष्मा से अभिप्राय है कि मनुष्य पाप-भावनाएं, पापकृत्य और अपने पापों के फलस्वरूप इस रोग से आक्रान्त होता है । जायान्य और जायेन्य दोनों शब्द मिलते हैं । इसके लिए कहा गया है कि—जायाभ्यः अविन्दत् या जायाभ्याम् अविन्दत् । दो स्त्रियों या अनेक स्त्रियों से संभोग के कारण यह रोग लगता है । इसका अभिप्राय यह है कि बहुविवाह भी इस रोग का एक कारण है ।

तैत्तिरीय संहिता में इस रोग के निवारण के लिए सूर्यकिरणों के सेवन का उपदेश है ।[५६] वेद में अनेक स्थानों पर प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के सेवन से हृदय रोग एवं अन्य रोगों के ठीक होने का विधान है । दूसरा उपाय बताया गया है—पापों से, पापभावनाओं से एवं पापकर्मों से बचना । तीसरा उपाय है—एक से अधिक विवाह न करना और अधिक स्त्री-संभोग से बचना । 'जायाभ्याम्' और 'जायाभ्यः' से संकेत है कि दो स्त्रियों या अनेक स्त्रियों से संभोग के कारण यह रोग उत्पन्न होता है ।[५७]

तैत्तिरीय संहिता का कथन है कि प्रातः और सायं यज्ञ करने से तथा अमावास्या एवं पूर्णिमा को यज्ञ करने से राजयक्ष्मा नहीं होता ।[५८] मैत्रायणी संहिता का कथन है कि राजयक्ष्मा रोग हो जाने पर चन्द्रमा प्रजापति के पास गया तो उन्होंने इसके निवारण के लिए उपाय बताया—'सत्य बोलो' ।[५९] असत्य के कारण ही यक्ष्म (रोग, राजयक्ष्मा) रोग लगता है । मनुष्य में वीर्य ही ओज है, यही प्राणरक्षक तत्त्व है । इसके संरक्षण से ही जीवनी शक्ति आती है और रोगों से मुक्ति होती है ।[६०]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजयक्ष्मा की चिकित्सा यज्ञ (हवन) बताया गया है ।[६१] यज्ञ वायु को सुगन्धित करता है । यह सुगन्ध श्वास के द्वारा अन्दर जाकर

फेफड़ों को शुद्ध करता है और उनमें व्याप्त दोषों को बाहर निकाल देता है । इसी सूक्त में कहा गया है कि भले ही वह मृत्यु के पास पहुँच गया हो, जीवन की आशा क्षीण हो चुकी हो, फिर भी यज्ञ की महिमा अपार है, वह अनन्त शक्ति वाला है, वह प्राणः और अपान शक्ति को पुष्ट करता है तथा सत्य के हाथों से मृत्यु से बचा लाता है ।[६२] इससे ज्ञात होता है कि सत्य मनुष्य का रक्षक है और असत्य उसका नाशक । अतएव मैत्रायणी संहिता में प्रजापति का उपदेश सार्थक है कि राजयक्ष्मा से बचने के लिए सत्य बोलें ।

अथर्ववेद में राजयक्ष्मा के उपचार के रूप में दो बातें और बताई गई हैं । वे हैं—सोमपान और पुरुषार्थ ।[६३] इसका अभिप्राय यह है कि सोमरस या अन्य पौष्टिक रसों का पान यक्ष्मा रोग को दूर करता है । साथ ही पुरुषार्थ या मनोबल को क्षीण न होने देना भी रोगनिवृत्ति के लिए उपयोगी है। ये रोग मनोविकार और इच्छाशक्ति के ह्रास से उत्पन्न होकर बढ़ते हैं । यदि इच्छाशक्ति को प्रबल रखा जाए तो इनका प्रकोप कम होता है और शनैः शनैः रोग का उपशम होता है ।

इस प्रसंग में वेद ने एक महत्त्वपूर्ण संकेत यह दिया है कि यह जायान्य (क्षयरोग) छूत की बीमारी है । वेद का कथन है कि यह पक्षी की तरह उड़कर लगता है । रोगी और अरोगी दोनों प्रकार के व्यक्तियों को इससे सावधान रहना चाहिए ।[६४] इसकी चिकित्सा के रूप कहा गया है कि जिस घर में यज्ञ होता है, वहाँ इसके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं ।[६५]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजयक्ष्मा के साथ ही एक अन्य रोग का भी उल्लेख है । वह है—अज्ञातयक्ष्मा या अज्ञात रोग । यह अज्ञात रोगा क्या है ? यह विचारणीय है । मेरे विचार से यह अज्ञात रोग कैन्सर (Cancer) है। उस समय संभवतः इस रोग के निदान आदि का पूर्ण निश्चय नहीं हो सका था, अतः इसको अज्ञात यक्ष्मा कह कर छोड़ दिया गया था । जो राजयक्ष्मा की चिकित्सा बताई गई है, वही चिकित्सा इस कैन्सर रोग की भी है । शरीर में दूषित कीटाणुओं के प्रवेश से इन रोगों की उत्पत्ति होती है ।

राजयक्ष्मा के विषय में चरक, सुश्रुत और अष्टांगहृदय में विस्तृत विवेचन मिलता है । वहाँ इसके कारण, चिकित्सा, पथ्य आदि का विस्तृत विवेचन है ।[६६] इसकी कुछ अत्यन्त उपयोगी बातें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं । विस्तृत जानकारी के लिए मूलग्रन्थों का अनुशीलन करें ।

चरक का कथन है कि राजयक्ष्मा के चार कारण हैं—१. अयथाबल आरम्भ अर्थात् अपनी शारीरिक शक्ति से अधिक कार्य करना, २. मल-मूत्र आदि के आगत वेगों को रोकना, ३. धातुओं का क्षय होना, ४. विषम भोजन करना ।

ईर्ष्या, द्वेष, भय, क्रोध, शोक, अतिमैथुन आदि के कारण शरीर में शुक्र और ओज की हानि (क्षय) हो जाती है। शुक्र और ओज ही शरीर के स्नेहांश हैं। उस स्नेह के क्षय हो जाने से वायु बढ़ जाती है और पित्त एवं कफ उभर कर सारे शरीर में फैलकर खांसी, ज्वर, सिरदर्द, अरुचि, अंगपीडा आदि उत्पन्न करते हैं। खान-पान में असंयम से वात पित्त और कफदोष रक्तवाहिनी आदि स्रोतों को रोक कर यक्ष्मा रोग उत्पन्न करते हैं। स्रोतों के बन्द होने से धातुओं की पुष्टि आहार रस से नहीं होने पाती। अतः खांसी, कफ आना, ज्वर, मुँह से खून आना आदि विकार होते हैं।

इस रोग की उपस्थिति में (१) निरन्तर ज्वर बने रहने से ज्वर की उष्णता से रसादिकों का शोषण होता रहता है। (२) अग्नि के मन्द हो जाने से पाचन पूर्णरूप से न होकर रस नहीं बनता है, जिससे आगे की रक्त आदि धातुएँ, पूर्व रस धातु के ठीक ढंग से न बनने से, संशोषित होती जाती हैं। (३) यक्ष्मा रोगी के शरीर में पाचन पूर्ण रूप से न होने पर अन्न से आमांश अधिक बनता है तथा उस अन्न के आमरस का भी पूर्ण पाचन न होने से कफ अधिक बनता है और वह कफ स्रोतों में जाकर उनके मार्गों को अवरुद्ध कर देता है, जिससे अन्य धातुओं का रस से पूरा पोषण न होने से वे संशोषित होती जाती हैं।

शरीर के अन्दर अनेक क्रियाएं होती हैं—श्वासप्रश्वास क्रिया, रक्त-परिभ्रमण क्रिया, पाचन क्रिया आदि। राजयक्ष्मा रोग के उत्पन्न होने पर शरीर की ये सब क्रियाएं धीरे-धीरे क्षीण होती जाती हैं, अतः इसे क्षय कहते हैं। इसके अतिरिक्त रक्त-मांसादि का क्षय तथा शुक्र और ओज का भी क्षय होने से इसका क्षय नाम पड़ा है। फेफड़े में प्रधान रूप से विकृति होने के कारण इसे Pulmonary Tuberculosis (T. B.) टी० बी० कहते हैं। अधिक संभोग के कारण शुक्र नष्ट होकर फेफड़ों के विकृत होने से उत्पन्न रोग राजयक्ष्मा (Phthisis थाइसिस) है। आयुर्वेद के अनुसार राजयक्ष्मा त्रिदोषज है, अतः इसे संनिपातात्मक मानते हैं।

यक्ष्मा के रोगी के लिए पथ्य अन्न का विधान है। मूली और कुल्थी का जूस लें। जौ, गेहूँ और चावल अपनी रुचि के अनुसार लें। पीपर, जौ, कुल्थी, खट्टे अनारदाने का रस और आंवला ये यक्ष्मा के उपद्रवों को शान्त करते हैं। इसमें लहसुन, पीपर (पिप्पली) और शिलाजीत का उपयोग लाभप्रद है। सितोपलादि चूर्ण शहद और घी में मिलाकर चाटना लाभप्रद है। इसके सेवन से रोगियों का कफ नष्ट होता है।

चरक, सुश्रुत और अष्टांगहृदय ने राजयक्ष्मा के रोगी के लिए कुछ मनोरंजन, धार्मिक कृत्य और मांगलिक कार्यों के करने का आदेश दिया है। उनमें विशेष

उल्लेखनीय हैं—संगीत का सुनना, प्रसन्नचित्त रहना, वृद्धजनों की सेवा-शुश्रूषा, ब्रह्मचर्यपालन, दान, तप, सत्यभाषण करना । चरक और वाग्भट का कथन है कि प्राचीन काल में अथर्ववेद में वर्णित यज्ञ-क्रिया के द्वारा ही राजयक्ष्मा रोग पर विजय प्राप्त की गयी थी ।[६७]

**४. अज्ञातयक्ष्मा (कैन्सर ?)**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजयक्ष्मा के साथ अज्ञात यक्ष्मा का उल्लेख है ।[६८] अज्ञातयक्ष्मा संभवतः कैन्सर के लिए है । इसके ठीक लक्षण आदि ज्ञात न हो सकने के कारण इसे अज्ञातयक्ष्मा नाम दिया गया प्रतीत होता है । इसकी भी चिकित्सा हवन बताई गयी है। चीपुद्रु (चीड़) को भी अज्ञात यक्ष्मा के लिए लाभप्रद बताया गया है ।[६९] जिस प्रकार क्षय के रोगियों के लिए चीड़ के वृक्षों की वायु आदि लाभप्रद है, उसी प्रकार अज्ञात यक्ष्मा के रोगियों के लिए भी यह लाभप्रद है । अन्य ओषधियाँ राजयक्ष्मा के तुल्य समझें ।

**५. आनुवंशिक रोग, क्षेत्रिय रोग**—आयुर्वेद में ये रोग कष्टसाध्य या असाध्य पाए जाते हैं, परन्तु वेद में इनकी चिकित्सा का वर्णन है । जो रोग माता-पिता से सन्तान में आते हैं, उन्हें आनुवंशिक या क्षेत्रियरोग कहा जाता है ।[७०] अपामार्ग अर्थात् चिर चिटा या लटजीरा को क्षेत्रिय रोगों का नाशक बताया गया है ।[७१] यजुर्वेद की मैत्रायणी आदि शाखाओं में अपामार्ग का चूर्ण बनाकर हवन करने का विधान है ।[७२] अथर्ववेद के तीन सूक्तों (अ० ४. १७ से १९) में अपामार्ग का बहुत महत्त्व वर्णित है । अपामार्ग की व्याख्या की गई है कि यह सब दोषों को दूर करता है, अतः अपामार्ग कहा जाता है । 'अपामार्गः अप मार्ष्टु' अर्थात् सब रोगों को दूर करे । भावप्रकाश निघण्टु में अपामार्ग को वातरोग, हृदयरोग एवं चर्मरोगों का नाशक बताया गया है ।[७३]

मृग के सींग के लाभ बताए गए हैं कि वह सभी आनुवंशिक रोगों को दूर करता है ।[७४] मृग के सींग आनुवंशिक हृदय के रोगों को और शरीर की अन्य बीमारियों को भी नष्ट करते हैं ।[७५] भैषज्य-रत्नावली में मृग के सींग को हृदय के रोगों का नाशक कहा है ।[७६] इसकी विधि दी गयी है कि मृग के सींग को जलाकर भस्म बनाकर गाय के घी के साथ चाटने से हृदयशूल आदि रोग नष्ट होते हैं । अथर्ववेद के अनुसार इसकी विधि है—मृग के सींग को जल में घिस कर या उसकी भस्म बनाकर जल के साथ रात्रि में तारे निकलने पर एवं सूर्योदय से पूर्व सेवन करना चाहिए । वैद्यक शब्दसिन्धु में भी मृग के सींग को भस्मक रोग, हृदय रोग और त्रिकशूल आदि में लाभप्रद कहा गया है ।

अथर्ववेद में विचृत नामक दो तारों को क्षेत्रिय रोगों का नाशक कहा गया है ।[७७] मूल नक्षत्र के दो तारों को विचृत कहते हैं । विचृत का अर्थ है बन्धन को

काटने वाला । सम्भवतः यहाँ यह अभिप्राय है कि मूल नक्षत्र के उदय के समय इस सूक्त में वर्णित अर्जुन वृक्ष की छाल, जौ की मंजरी, तिल की मंजरी आदि का सेवन आनुवंशिक रोगों को दूर करता है । विचृत शब्द द्विवचन है, इस द्विवचन से सूर्य और चन्द्रमा का भाव लिया जा सकता है । सूर्य और चन्द्रमा की किरणें क्षेत्रिय रोगों अर्थात् क्षय, कुष्ठ, अपस्मार (मृगी) आदि को नष्ट करती हैं । श्री सातवलेकर ने भगवती शब्द से वैष्णवी, लघु शतावरी, तुलसी, अपराजिता, विष्णुक्रान्ता नामक ओषधि ली है और तारका शब्द से देवताडवृक्ष या इन्द्रवारुणी ओषधि अर्थ माना है । इन्हें क्षेत्रिय अर्थात् रोगों को नष्ट करने वाला बताया है ।

इस सूक्त में क्षेत्रिय रोगों को नष्ट करने वाली ओषधियों में इन ओषधियों का उल्लेख है—अर्जुनवृक्ष की छाल, जौ की मंजरी और तिल की मंजरी ।[७८] इसका अभिप्राय यह ज्ञात होता है कि अर्जुन वृक्ष की छाल का चूर्ण सेवन करना चाहिए । भोजन में जौ और जौ की मंजरी का उपयोग अधिक करना चाहिए । तिल की मंजरी का साग खाना चाहिए और तिल के बीजों का उबटन या तिल का तेल लगाना चाहिए और तिल का भोजन में उपयोग अधिक करना चाहिए । अर्जुन वृक्ष की मणि (माला) भी इसमें उपयोगी हो सकती है ।

इस सूक्त में हल, जूआ और क्षेत्र के द्वारा कृषि को भी क्षेत्रिय रोगों को दूर करने का साधन बताया गया है ।[७९] कृषि से शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है । धूप में शरीर के रहने से रोग के कृमि नष्ट होते हैं, शुद्ध वायु मिलती है और रोगनाशक जीवनी शक्ति मिलती है, अतः कृषि आनुवंशिक रोगों को दूर करने में समर्थ है ।

इस सूक्त में चार मंत्रों में क्षेत्रियनाशनी वीरुत् का उल्लेख है ।[८०] इससे ज्ञात होता है कि कृषिजन्य किसी ओषधि का यहाँ उल्लेख है । परन्तु ओषधि का नाम स्पष्ट रूप से नहीं दिया है । यह अन्वेषणीय है ।

अथर्ववेद में जल को सर्वरोगनाशक ओषधि कहा गया है । साथ ही यह भी कहा गया है कि जल क्षेत्रिय रोगों को भी दूर करे ।[८१] इसका अभिप्राय यह है कि शुद्ध जल प्रचुर मात्रा में पीने से शरीर के अन्दर के सारे दूषित रोगाणु मूत्र या पसीने के द्वारा बाहर आ जाते हैं और रोगी क्षेत्रिय रोगों से मुक्त हो जाता है । मेरे विचार से जल में तुलसी के पत्ते डालकर, उसे उबालकर, छानकर नियमित रूप से पिया जाए तो अधिक गुणकारी होगा ।

विषाणा या विषाणका ओषधि को वातरोग और आनुवंशिक रोगों का नाशक कहा गया है । सहस्रचक्षु इसका विशेषण है । इसका लैटिन नाम Gymnema Sylvestre है ।

पैप्पलाद संहिता में अंजन को नेत्रज्योतिवर्धक और क्षेत्रिय रोगनाशक कहा

गया है ।[८२] अंजन को आंजन भी कहते हैं । यह वृक्ष और खनिज दोनों है । त्रिककुद् पर्वत से प्राप्त अंजन को त्रैककुद कहते हैं । यह सर्वश्रेष्ठ माना गया है । (देखो आञ्जन शब्द ३०) ।

**६. संक्रामक रोग या छूत रोग**—अथर्ववेद में बताया गया है कि गन्दे व्यक्तियों के साथ रहने, उठने-बैठने और खाने-पीने से, अनेक प्रकार के संक्रामक रोग लग जाते हैं । इस प्रकार के रोगों की चिकित्सा अपामार्ग या चिरचिटा बताया गया है ।[८३] इससे यह भी शिक्षा मिलती है कि गन्दे लोगों के साथ उठना-बैठना और खाना-पीना नहीं करना चाहिए । भावप्रकाश निघण्टु में अपामार्ग को दाद, खाज, चर्मरोग, बवासीर आदि का नाशक बताया गया है ।[८४]

**७. हरिमा, कामला या पाण्डुरोग**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में पाण्डु या पीलिया रोग के लिए हरिमन् शब्द आया है ।[८५] पाण्डु रोग को कामला रोग भी कहते हैं । इसमें रोगी का शरीर, नेत्र, मूत्र, नख, मुख आदि कामला से पीले हो जाते हैं । वेद में इसकी तीन प्रकार की चिकित्सा बताई गई है—१. सूर्यकिरण-चिकित्सा, २. गो-दुग्ध-चिकित्सा, ३. ओषधि-चिकित्सा ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसके लिए सूर्य-किरण-चिकित्सा मुख्य रूप से बताई है । इसकी विधि यह है कि रोगी को प्रातःकाल सूर्योदय के समय पूर्वाभिमुख वस्त्र उतार कर बैठावे । जिससे सूर्य की किरणें ठीक उसकी छाती और शरीर पर पड़ें । प्रतिदिन १५ मिनट ऐसा करे । सूर्योदय के समय सूर्य की किरणें का सेवन पीलिया रोग तथा हृदय के सभी रोगों के लिए अत्यन्त लाभप्रद है । वेद में 'उद्यन्नद्य०' और 'गो रोहितस्य०' के द्वारा सूर्य की लाल या अवरक्त किरणों का उल्लेख है ।

अथर्ववेद में 'गो रोहितस्य' में गो शब्द के दो अर्थ हैं— सूर्य की किरणें और गाय । लाल गाय का दूध हरिमा या पीलिया रोग में बहुत लाभप्रद है । यह शरीर के हरित या पीले रंग को दूर करके रक्त वर्ण को उत्पन्न करता है ।[८६]

अथर्ववेद में इसकी ओषधि-चिकित्सा भी वर्णित है । इसके लिए आञ्जन मणि और जंगिडमणि का धारण करना उपयोगी बताया गया है ।[८७] (देखो शब्द ३० और ६२)

इसके अतिरिक्त इन ओषधियों को भी अथर्ववेद में कामला में लाभप्रद बताया गया है । पुनर्नवा (शब्द १४५) । यह भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार पाण्डुरोग, सूजन, सूजाक और मूत्रकृच्छ्र में विशेष लाभप्रद है ।[८८] रोपणाका वनस्पति (शब्द १६३) को पाण्डुरोग का नाशक कहा गया है ।[८९] पिप्पली (पीपर शब्द १४०, २०३) को वातीकृतभषेजी भी कहते हैं । यह वातव्याधियों की चिकित्सा है । भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार गुड़ के साथ पीपर खाने से खांसी, अजीर्ण, श्वासरोग,

हृदय रोग, पाण्डुरोग और कृमिरोग नष्ट होते हैं ।[९०] पीपर के साथ गुड़ के सेवन में गुड़ पीपर से दुगुनी मात्रा में होना चाहिए । ऋग्वेद और अथर्ववेद में हारिद्रव या हरिद्रु (शब्द २८३) को हृदय रोग और कामला रोग की चिकित्सा बताया है ।[९१] सायण ने इसे हरिताल (हरताल) वृक्ष माना है और मैकडानल एवं कीथ ने इसे देवदारु (देवदार) माना है ।

**८. जायान्य, जायेन्य रोग**—यह धातुरोग है । अधिक विषयासक्ति या स्त्री-सम्पर्क से यह रोग होता है । अनेक पत्नियों से संभोग के कारण इस रोग की उत्पत्ति मानी गयी है । राजयक्ष्मा के प्रसंग में इसका उल्लेख है । यह उड़कर लगने वाली बीमारी है ।[९२] रोगनाशक ओषधियों के द्वारा यज्ञ करना इसकी चिकित्सा बतायी गयी है ।[९३] कौशिक सूक्त में वीरण ओषधि की मणि (माला) बांधना भी इसमें उपयोगी माना गया है । (देखो शब्द २१६)

**९. विशर रोग**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[९४] इसमें शरीर के अंगों में दर्द और टूटने का अनुभव होता है । अथर्ववेद में इसकी चिकित्सा जंगिड मणि बतायी गयी है । यह मणि अपने प्रभाव से रोग को नष्ट करती है । (देखो शब्द ९२)

**१०. विषूचिका रोग**—यह हैजा या कालरा (Cholera) है । यजुर्वेद में इसका उल्लेख है ।[९५] अथर्ववेद में इसके लिए विषूची शब्द है । इसमें सोम और रुद्र देवों को इसका नाशक बताया गया है ।[९६] सोमरस स्वयं रसायन है और दिव्य ओषधि है । रुद्र से अभिप्राय प्राण-चिकित्सा से है । यौगिक क्रियाओं में उड्यान बन्ध दस्त, पेचिश आदि रोगों की अमोघ ओषधि है ।

वेदों में इन ओषधियों का भी उल्लेख है, जो विषूचिका या हैजा को रोकती हैं। मैत्रायणी आदि संहिताओं में उपवाक या उपवाका ओषधि का उल्लेख है ।[९७] यह इन्द्रयव (इन्द्र जौ) है । इसको ही कुटज या कुटज बीज कहते हैं । भावप्रकाश के अनुसार यह अतिसार, ज्वर एवं कुष्ठ-विकारों को नष्ट करता है । पाश्चात्त्य विद्वानों के अनुसार हैजा में कै रोकने के लिए सफेद कुटज की छाल और बीज दोनों का प्रयोग होता है ।[९८] यह रक्तातिसार (खूनी पेचिश) की अत्युत्तम ओषधि है (देखो शब्द ४७)

हैजा में कुष्ठ (कूठ) ओषधि भी उपयोगी है। अथर्ववेद में इसे विश्वभेषज अर्थात् सर्वरोग-चिकित्सा कहा गया है ।[९९] भावप्रकाश के अनुसार यह खांसी, वात, कफ और कुष्ठ को हरने वाला है । डॉ० खोरी ने इसे विषूचिका, अजीर्ण, कफ एवं श्वासरोगों में उपयोगी बताया है ।[१००] (देखो कुष्ठ शब्द ६६)

दूर्वा (शब्द ११७) को भी पाश्चात्त्य विद्वान् कै रोकने के लिए विशेष उपयोगी मानते हैं ।[१०१] भङ्ग या भङ्गा यह भांग है । इसका अथर्ववेद में उल्लेख है ।[१०२]

यह हैजा में विशेष लाभप्रद है ।[१०३] इसका सूजाक, ग्रहणी (पेचिश) में भी उपयोग होता है ।

## (ख) वातजरोग

**११. वातरोग**—अथर्ववेद में पिप्पली (पीपर) को वातरोगों की अमोघ ओषधि बताया गया है ।[१] अथर्ववेद का कथन है कि पीपर का सेवन करने वाला कभी रोगग्रस्त नहीं होता है ।[२] इसी सूक्त में कहा गया है कि पीपर यह अकेली ओषधि जीवनदान के लिए पर्याप्त है । पीपर इन रोगों की चिकित्सा है—उन्माद रोग, वातरोग और पक्षाघात ।[३] भावप्रकाश निघण्टु में पीपर के ये गुण बताए गए हैं—यह श्वास, खांसी, उदर, ज्वर, कोढ़, प्रमेह, गुल्म, बवासीर, प्लीहा शूल और आमवात को नष्ट करती है ।[४] (देखो पिप्पली शब्द १४०)

अथर्ववेद में पिप्पली (पीपर) के लिए अतिविद्धभेषजी शब्द आया है ।[५] इसी सूक्त में इसे क्षिप्तभेषजी और वातीकृतभेषजी भी कहा गया है । सायण ने इसे धनुर्वात, आक्षेपक आदि समस्त वातव्याधियों में खिलाने का विधान किया है । आधुनिक विज्ञान के अनुसार खांसी, ग्रहणी, जीर्ण कफरोग, आमवात, कटिवात, प्लीहा-यकृत्-वृद्धि आदि रोगों में पीपर लाभप्रद है ।

अथर्ववेद में विषाणका या विषाणा ओषधि को वातरोगों का नाशक बताया गया है ।[६] इसको मेषशृंगी मेढ़ासिंगी और अजशृंगी भी कहते हैं । भावप्रकाश में इसे कफ, खांसी, कृमि, प्रमेह, कुष्ठ और विष का नाशक बताया गया है ।[७] (देखो विषाणा २१२)

अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ) ओषधि को विश्वभषेजं अर्थात् सर्वरोग-चिकित्सा कहा गया है ।[८] यह सोमलता के समीप होता है । यह वातविकार, ज्वर, यक्ष्मा, कासश्वास, नेत्ररोग, शिरोरोग और आम (आँव) में विशेषरूप से प्रयुक्त होता है । भावप्रकाश के अनुसार यह वातरक्त, विसर्प, खांसी, कुष्ठ, वात और कफ को हरने वाला कहा गया है ।[९]

शांखायन गृह्यसूत्र में मधूक का उल्लेख है ।[१०] यह महुआ है । भावप्रकाश में इसे वात और पित्त का नाशक कहा गया है । पाश्चात्त्य मत है कि महुए के फूल का रस रसायन है । यह गंडमाला और वातरोगों में विशेष लाभप्रद है ।[११] (देखो मधूक १७८)

**१२. श्वास रोग**—ऋग्, यजुः और अथर्व तीनों वेदों में सोम ओषधि का उल्लेख है । सोम लता को ओषधियों का स्वामी कहा गया है ।[१२] कुछ विद्वान् Ephedra (एफेड्रा) ओषधि को सोम लता मानते हैं । इसका मूल और लकड़ी का

क्वाथ आमवात, फिरंग, उपदंश और पूयमेह को नष्ट करता है । इसके फल का रस लेने से श्वास-प्रणाली के रोगों (श्वास, कास, हिक्का) का नाश होता है । इसका अर्क जलोदर, श्वासरोग, हृदय रोग, रोहिणी रोग और निमोनिया आदि में बहुत लाभ देता है । यह दिन में २ बार २-२ माशा लेना चाहिए ।[१३]

अथर्ववेद में पिप्पली (पीपर) का उल्लेख है ।[१४] भावप्रकाश में इसे श्वासरोग, खांसी, आमवात आदि का नाशक बताया गया है । नवीन अनुसंधानों के अनुसार यह वातनाशक और रसायन है । यह खांसी, ग्रहणी, जीर्ण कफरोग, आमवात, कटिवात आदि रोगों में लाभप्रद है ।[१५]

अथर्ववेद में तलाशा या तलाश वृक्ष का उल्लेख है ।[१६] यह तालीश वृक्ष है। इसे तालीसपत्र भी कहते हैं । प्रो० खोरी के अनुसार यह दमा, रक्तपित्त, मृगी और अन्य आक्षेपमूलक पीड़ाओं में लाभप्रद है ।[१७]

अथर्वपरिशिष्ट में वचा का उल्लेख है ।[१८] इसे वच भी कहते हैं । भावप्रकाश में इसे खांसी और श्वास रोगों में विशेष लाभप्रद बताया है । यह कब्ज, अफारा, शूल, अपस्मार (मृगी), कफ, उन्माद और वात को नष्ट करने वाली है ।[१९] (देखो वचा शब्द १६८) । मैत्रायणी संहिता और अथर्ववेद में शमी का उल्लेख है ।[२०] इसको हिन्दी में छोकर, जण्ड या सफेद कीकर कहते हैं । यह कफ, खांसी, श्वास, कोढ़, बवासीर और कृमि का नाशक है ।[२१] तैत्तिरीय एवं मैत्रायणी आदि संहिताओं में खर्जूर का उल्लेख है ।[२२] यह वीर्यवर्धक, वात-पित्त-नाशक, कफ, ज्वर, अतिसार, खांसी, श्वासरोग, दमा और मूर्च्छा के लिए लाभप्रद है ।[२३]

**१३. सन्धिवात**—यह गठिया है । अथर्ववेद में दशवृक्ष अर्थात् दशमूल को गठिया की ओषधि कहा है ।[२४] अपस्मार अर्थात् मृगी रोग की भी चिकित्सा दशमूल है ।[२५] भैषज्यरत्नावली में दशमूल के काढ़े को वातरोग-नाशक कहा है । चरक में दशमूल को अपस्मार (मृगी) रोग का नाशक बताया है ।[२६] लघुपंचमूल और बृहत् पंचमूल इन दोनों को मिलाकर दशमूल कहते हैं ।[२७] बृहत् पंचमूल हैं—बिल्व (बेल), गम्भारी (कुम्भेर, काश्मरी, काश्मीरी), पाटला (पाढ़ल), अग्निमन्थ (अरनी, अरणी), श्योनाक (सोनापाठा, अरलु) । लघु पंचमूल हैं—शालपर्णी (सरिवन), पृश्निपर्णी (पिठवन), वार्ताकी (बड़ी कटेरी), कण्टकारी (भटकटैया, छोटी कटेरी), गोक्षुर (गोखरू) ।

काठक संहिता एवं अथर्ववेद में पीतुदारु और पूतुद्रु का उल्लेख है ।[२८] वेदों में इसके अन्य नाम आए हैं—पीतदारु, पूतद्रु, पूतुदारु । यह देवदारु (देवदार) है । अथर्ववेद में इसे 'अमीवचातनः' रोगनाशक भेषज कहा है । देवदारु का काढ़ा गोनोरिया, फिरंग (सिफिलिस), गठिया और आमवात में बहुत लाभप्रद है ।[२९]

**१४. कटिवात**—यह कमर का दर्द है । अथर्ववेद में पिप्पली (पीपर) को वातरोगों की प्रमुख ओषधि बताया गया है ।[३०] भावप्रकाश में इसे श्वासरोग, बवासीर, प्लीहाशूल, गुल्म आदि का नाशक बताया गया है । नवीन अनुसंधानों के अनुसार यह वातनाशक है और कटिवात, आमवात, खांसी, ग्रहणी एवं जीर्ण कफरोगों पर विशेष लाभप्रद है ।[३१]

## (ग) पित्तजरोग

**१५. अतिसार, अतीसार (दस्त)**—मैत्रायणी आदि संहिताओं में उपवाक या उपवाका का भेषज के रूप में वर्णन है ।[३२] इसका अर्थ इन्द्रयव (इन्द्र जौ) लिया गया है । इसके ही कुटज, कुटजबीज आदि नाम हैं । भावप्रकाश में इसे त्रिदोषनाशक, ज्वर, अतिसार तथा कुष्ठ विकारों का नाशक कहा गया है । पाश्चात्त्य विद्वानों के अनुसार सफेद कुटज की छाल रक्तातिसार (खूनी पेचिश) की अत्युत्तम ओषधि है । यह ज्वर, ग्रहणी (पेचिश), रक्तपित्त, पेट के कीड़े, दमा, गुर्दों में दर्द में हितकर है ।[३३]

ऋग्वेद आदि में विभीदक (बहेड़ा) का उल्लेख है ।[३४] यह त्रिफला में प्रयुक्त तीन द्रव्यों में से एक है । यह अतीसार, शोथ, अर्श, कुष्ठ और प्लीहावृद्धि में सेवन करने योग्य है ।[३५]

अथर्ववेद आदि में बिल्व (बेल) का उल्लेख है ।[३६] पका बेल रसायन और रेचक है । यह कब्ज की उत्तम दवा है । अधपके बेल का क्वाथ (काढ़ा) अतिसार (दस्त) रक्तातिसार (खूनी पेचिश) और आम (आंव) में उपयोगी है । बेल का मुरब्बा दस्त और पेचिश की घरेलू दवा है ।[३७]

शांखायन गृह्यसूत्र में मधूक (महुआ) का उल्लेख है ।[३८] महुए के फूल का रस रसायन है । यह अतीसार (दस्त) और ग्रहणी (पेचिश) में लाभप्रद है। इसके फूल के क्वाथ (काढ़ा) को शर्करा के साथ पान करने से प्यास, अतिसार और कास दूर होते हैं ।[३९]

यजुर्वेद में बदर (बेर) का उल्लेख है ।[४०] इसके सत्तू का भी उपयोग होता है । पाश्चात्त्य मत है कि बेर की छाल प्रदर और अतिसार में ताल बीज के साथ दी जाती है ।[४१] ऋग्वेद आदि में पर्ण शब्द पलाश (ढाक) वृक्ष के लिए आया है ।[४२] पलाशपत्र रसायन है । यह अतिसार, रक्तप्रदर और कृमिशूल रोगों के प्रयुक्त होता है ।[४३]

**१६. आमातिसार (आंव पड़ना)**—ऋग्वेद आदि में खदिर (खैर) वृक्ष का उल्लेख है ।[४४] अथर्ववेद में इसका सारभाग मणि के तुल्य तेजस्विता के लिए बांधने

का निर्देश है । भावप्रकाश के अनुसार यह आम (आंव), पित्त, रुधिर विकार को नष्ट करता है । पाश्चात्त्य विद्वानों के अनुसार खैर बलप्रद और रसायन है । बच्चों के आमातिसार (आंव आना), रक्तातिसार (खूनी पेचिश), विषम ज्वर (फ्लू) और स्नायु-दुर्बलता में सेव्य है ।[४५]

अथर्ववेद में न्यग्रोध (वट, बड़) का उल्लेख है ।[४६] यह आमरक्तातिसार (खूनी पेचिश, आंव), सूजाक और शुक्रक्षीणता में प्रयुक्त होता है ।[४७]

अथर्ववेद में बिल्व (बेल) का उल्लेख है ।[४८] पका बेल रसायन और रेचक है । अधपके बेल का क्वाथ (काढ़ा) अतिसार, आमातिसार (आंव पड़ना) और रक्तातिसार (खूनी पेचिश) में उपयोगी है ।[४६]

**१७. विशरीक (पेचिश)**—अथर्ववेद में विशरीक (पेचिश) और आशरीक (अंगों में पीड़ा) रोगों का उल्लेख है । इनकी चिकित्सा जंगिड मणि बतायी गयी है ।[५०] दारिल और प्रो० कैलण्ड ने जंगिड का अर्थ अर्जुन वृक्ष लिया है। इसकी मणि (माला) धारण करने का विधान है । यह बलास (कफ रोग), पृष्ट्यामय (पसली का दर्द) और साल भर रहने वाले ज्वर की चिकित्सा है ।

**१८. रक्तातिसार (खूनी पेचिश)**—अथर्ववेद में रक्तातिसार की ये ओषधियां बतायी गयी हैं । मैत्रायणी आदि संहिताओं में उपवाक या उपवाका ओषधि का उल्लेख है ।[५१] इसका अर्थ इन्द्रयव (इन्द्र जौ) लिया गया है । इसको कुटज, कुटजबीत भी कहते हैं । भावप्रकाश में इसे ज्वर, अतिसार और कुष्ठविकारों का नाशक कहा गया है । पाश्चात्त्य मतानुसार सफेद कुटज की छाल रक्तातिसार की अत्युत्तम ओषधि है ।[५२]

अथर्ववेद आदि में खदिर (खैर) का उल्लेख है ।[५३] भावप्रकाश के अनुसार यह आम (आंव), पित्त, कुष्ठ, कफ को नष्ट करता है । पाश्चात्त्य विद्वानों का मत है कि खैर बच्चों के आमातिसार (आंव आना), रक्तातिसार (खूनी पेचिश), विषम ज्वर (फ्लू) और स्नायुदुर्बलता में सेव्य है ।[५४]

अथर्ववेद आदि में बिल्व (बेल) का उल्लेख है ।[५५] अधपके बेल का क्वाथ (काढ़ा) अतिसार, आम (आंव) और रक्तातिसार में लाभप्रद है । बेल का मुरब्बा दस्त और खूनी पेचिश की घरेलू ओषधि है ।[५६]

अथर्ववेद में मण्डूकी (मण्डूकपर्णी) ओषधि का उल्लेख है ।[५७] यह ब्राह्मी ओषधि के तुल्य ही ओषधि है । यह रसायन है । मण्डूकपर्णी का मूल मुलहठी के साथ ज्वर और रक्तातिसार में प्रयुक्त होता है ।[५८]

ऋग्वेद आदि में शल्मलि और शाल्मलि (सेमर) वृक्ष का उल्लेख है ।[५६] यह

पित्त, वात और रुधिर-विकार का नाशक है । पाश्चात्त्य मतानुसार कच्चा सेमर का मूल संकोचक और रसायन है । यह अतिसार, रक्तातिसार एवं रजःस्राव में दिया जाता है ।[६०]

**१६. रक्तपित्त एवं रक्तवमन**—इसमें खून की कै होती है । इसके लिए ये ओषधियां लाभप्रद हैं । अथर्ववेद में उदुम्बर (गूलर) का उल्लेख मिलता है ।[६१] भावप्रकाश में इसे व्रणशोधक और पित्त कफ तथा रक्तविकार का नाशक बताया है । पाश्चात्त्य विद्वानों का मत है कि यह रक्तप्रदर, रक्तपित्त और रक्तवमन आदि में हितकर है ।[६२]

अथर्ववेद में वट (बड़) का उल्लेख है ।[६३] यह व्रण, विसर्प, दाह और योनिदोष को नष्ट करता है । पाश्चात्त्य मत है कि यह सोमरोग, आमरक्तातिसार, सूजाक और शुक्रक्षीणता में प्रयुक्त होता है ।[६४] निघण्टु ग्रन्थों में इसे रक्तपित्त, मधुमेह, सूजाक, योनिरोग, पेचिश, गठिया आदि में उपयोगी बताया गया है ।[६५]

यजुर्वेद में शल्मलि (सेमर) का उल्लेख है ।[६६] सेमर रसायन है । यह पित्त, वात, रुधिरविकार और रक्तपित्त को नष्ट करता है ।[६७]

## (घ) कफज रोग

**२०. कास (खांसी)**—अथर्ववेद में कास या खांसी के लिए कई शब्दों का प्रयोग मिलता है । यथा—कास, कासा, कासिका आदि ।[१] इसमें एक सूक्त के तीन मंत्रों में खांसी के निवारण का प्रकार बताया गया है ।[२] इन मंत्रों में तीन प्रकार बताये गए हैं—मानस-चिकित्सा, पार्थिव-चिकित्सा और समुद्री-चिकित्सा । मानस-चिकित्सा में मनोबल से कफ निकलता है । पार्थिव-चिकित्सा में रेह या मिट्टी के क्षार से चिकित्सा का वर्णन है । समुद्री-चिकित्सा में समुद्रफेन से खांसी का निवारण होता है ।[३]

स्वामी ब्रह्ममुनि ने मानस-चिकित्सा का प्रकार यह बताया है । सूखी खांसी में कफ जम जाता है, सूख जाता है, इससे खांसते समय बहुत कष्ट होता है । जहाँ कफ जमा हुआ और सूखा प्रतीत हो, वहाँ मन को एकाग्र करें । जब मन एकाग्र हो जाए, तब मन में उस जमे कफ के ढीला करने और उसे वहाँ से ढकेलने का संकल्प करना चाहिए । मन अन्दर की विद्युत् शक्ति है । वह उस जमे कफ को पिघला और ढीला कर देती है । इसको उन्होंने परीक्षित उपाय बताया है ।[४]

दूसरे मंत्र में पृथ्वी के संवत (रेह, क्षार) का वर्णन है । रेह या रेही मिट्टी जमे कफ को ढीला करके बाहर निकाल देती है । तीसरे मंत्र में समुद्र के विक्षर अर्थात्

समुद्रफेन को खांसी का इलाज बताया गया है । भावप्रकाश में समुद्रफेन को कफहृत् अर्थात् कफनाशक कहा गया है ।[५]

अथर्ववेद में गीली खांसी के रोगियों को हरे-भरे ऊँचे पहाड़ों पर रहने का उपदेश दिया है ।[६] गीली खांसी पर्वतों पर रहने से दूर हो जाती है ।

अथर्ववेद में कुछ अन्य ओषधियों का उल्लेख है, जो खांसी के लिए लाभप्रद हैं । अथर्ववेद में पिप्पली (पीपर) का उल्लेख है । इसे अतिविद्धभेषजी और क्षिप्तभेषजी भी कहते है ।[७] भावप्रकाश निघण्टु में इसे श्वास, खांसी, उदर, ज्वर, कोढ़, प्रमेह आदि को नष्ट करने वाला बताया गया है । नव्य मतानुसार यह कास, ग्रहणी, जीर्ण कफरोग आदि में उपयोगी है ।[८] (देखो पिप्पली शब्द १४०)

ऋग्वेद अथर्ववेद आदि में विभीदक (बहेड़ा) का उल्लेख है ।[९] इसे बिभीतक, विभीतक, बिभीदक भी कहते हैं । आयुर्वेद में इसे बिभीतक भी लिखते हैं । यह त्रिफला में प्रयुक्त तीन द्रव्यों में से एक है । अन्य दो द्रव्य हैं—आमलकी (आंवला) और हरीतकी (हरड़) । भावप्रकाश में इसे खांसी और कफपित्त का नाशक बताया गया है । यह नेत्रों के लिए हितकर और दस्तावर है ।[१०]

अथर्ववेद में मदुघ का उल्लेख है ।[११] यह ज्येष्ठी मधूक, जेठीमध या मुलहठी है । इसकी जड़ मीठी होती है । यह कफनिःसारक और कुछ रेचक है । यह खांसी, मूत्रनली के दोष और स्वरतन्त्री के दोषों में लाभप्रद है ।[१२]

यजुर्वेद और अथर्ववेद में माष (उड़द) का उल्लेख है ।[१३] यह बलवर्धक और दुग्धवर्धक है । यह बवासीर और श्वास रोग का नाशक है ।[१४]

काठक संहिता में यवाष (जवासा) का उल्लेख है ।[१५] इसमें बहुत तीक्ष्ण कांटे होते हैं । यह खांसी, वातरक्त, वमन, रुधिरविकार और ज्वर को नष्ट करता है ।[१६]

ऋग्वेद आदि में वंश (बांस) का उल्लेख है ।[१७] यह दस्त, कफ, पित्त, कोढ़ और रुधिरविकार को नष्ट करता है । बांस से वंशलोचन निकलता है । वंशलोचन वाले बांस मोटे, बड़े और पीली जाति के होते हैं । ये पर्वतों में पाए जाते हैं । इनके रसों का संगठन ही वंशलोचन है । यह क्षय, खांसी, श्वास एवं ज्वर में प्रयुक्त होता है ।[१८]

कठ और काठक संहिता में वृष का उल्लेख है ।[१९] यह वासा या अडूसा है । वृष और यवास (जवासा) गर्मी में होते हैं और वर्षा में सूख जाते हैं । यह कफ, पित्त, रक्तविकार, श्वास, खांसी, कुष्ठ और क्षय को नष्ट करता है । इंडिका फार्माकोपिया के लेखक का कथन है कि मैंने वासा को पुरानी खांसी के लिए बहुत हितकर पाया है । वासा के फूल में भी खांसी नष्ट करने की शक्ति है ।[२०]

अष्टांगहृदय में कासनाशक (खांसी-नाशक) कुछ सरल नुस्खे ये दिए हैं—(१) पीपर और सेंधा नमक को पीस कर गुनगुने जल से पियें । (२) सोंठ और मिश्री को कूटकर मस्तु (दही का छना हुआ पानी) से पियें । (३) पीपर के बारीक चूर्ण को दही से पियें । (४) बेर की गुठली को कूटकर दही और मस्तु से पियें । (५) पीपर को पानी में गाढ़ा पीसकर, घी में भूनकर, सेंधा नमक के साथ चाटें ।[२१]

**२१. बलास (कफ रोग, कैन्सर)**—यह शारीरिक शक्ति को नष्ट करने वाला (बल+आस) रोग है । इसे कफरोग माना जाता है । ह्विटनी (Whitney) ने इसे क्षयरोग माना है । कुछ विद्वान् इसे कैन्सर रोग मानते हैं । अथर्ववेद में इसके ये निवास-स्थान बताए गए हैं— १. हृदय, २. पर्व, ३. अस्थि, ४. कक्षद्वय (दोनों कांख), ५. मुष्कौ (दोनों अण्डकोश) ।[२२]

अथर्ववेद में चीपुद्रु (चीड़ का वृक्ष) का बहुत गुणगान है ।[२३] इसे बलास, हृदय रोग, विसल्पक (चर्मरोग) आदि का नाशक बताया गया है । अथर्ववेद में जंगिड वृक्ष का उल्लेख है ।[२४] दारिल और प्रो० कैलण्ड आदि इसे अर्जुन वृक्ष मानते हैं । इसे विश्वभेषज कहा गया है । इसकी मणि धारण करने का विधान है । यह आशरीक, विशरीक (पेचिश), बलास, पृष्ट्यामय (पसली का दर्द) और सालभर रहने वाले ज्वर की चिकित्सा है ।[२५]

अथर्ववेद में आञ्जन (अञ्जन) का उल्लेख है ।[२६] इसके दो भेद हैं—त्रैककुद (त्रिककुद् पर्वत पर प्राप्त अंजन) और यामुन (यमुना प्रदेश में प्राप्त) । यह खनिज और वृक्ष दोनों है । इसकी मणि का भी विधान है । इसको बलास, ज्वर और सर्पविष की अमोघ चिकित्सा बताया गया है ।[२७]

अथर्ववेद में बलासनाशनी या बलासभेषज का उल्लेख है ।[२८] यह बलासनाशक ओषधि कही गयी है । ओषधि का स्पष्ट नाम नहीं दिया गया है ।

पिप्पली (पीपर) का अथर्ववेद में उल्लेख है ।[२६] नवीन अनुसंधानों के अनुसार पीपर कास (खांसी), ग्रहणी, पुराना कफरोग, आमवात और कटिवात आदि रोगों में लाभप्रद है ।[३०]

अथर्ववेद में तेजन (बांस) एवं वंश (बांस) का उल्लेख है ।[३१] बांस से वंशलोचन निकलता है । यह कफरोग, क्षय, खांसी, श्वासरोग और ज्वर में विशेष लाभप्रद है ।[३२]

## (ङ) चर्म रोग

**२२. चर्मरोग**—अथर्ववेद आदि में चर्मरोगों के लिए उपयोगी कतिपय ओषधियों का उल्लेख है । इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :—

काठक संहिता आदि में पीतुदारु (देवदारु, देवदार) का उल्लेख है ।[३३] वेदों में इसके अन्य नाम आए हैं— पीतदारु, पूतुद्रु, पूतद्रु, पूतुदारु । अथर्ववेद में इसे 'अमीवचातनः' (रोगनाशक भेषज) कहा है ।[३४] देवदार का क्वाथ गोनोरिया, सिफिलिस और गठिया में सेव्य है । इसका तेल रसायन है । यह पुराने चर्मरोगों और कुष्ठ में सेवन किया जाता है । चोट, घाव आदि पर भी इसका तेल लगाया जाता है ।[३५]

अथर्ववेद में गुल्गुलु (गूगल) का बहुत गुणगान है ।[३६] प्रो० वाट के अनुसार यह चर्मरोग, वातव्याधि, गलगण्ड, कुष्ठ, वात और फिरंग रोग में लाभप्रद है । पुराने घावों में बहुत ही हितकर है ।[३७]

अथर्ववेद और यजुर्वेद में तिल का उल्लेख है ।[३८] यह बालों के लिए, त्वचा एवं व्रणरोगों के लिए हितकर है । तिल का तेल प्रयोग में लाया जाता है । काला तिल सर्वोत्तम है ।[३९]

अथर्ववेद आदि में दूर्वा (दूब) का उल्लेख है ।[४०] हरी दूब त्वचा के रोगों को नष्ट करती है । यह कै रोकने के लिए दी जाती है । नाक से खून बहने में भी यह लाभदायक है ।[४१]

शांखायन गृह्यसूत्र में मधूक (महुआ) का उल्लेख है ।[४२] इसका तेल सिरदर्द, चोट और चर्मरोगों में लाभकर है ।[४३]

अथर्ववेद आदि में यव (जौ) का उल्लेख है और इसे ओषधि बताया है ।[४४] जौ कण्ठरोग, त्वचारोग, श्वास, खांसी और रुधिरविकार को नष्ट करना है ।[४५]

अथर्ववेद में शतवार (शतावर) का बहुत गुणगान किया गया है ।[४६] इसकी मणि बांधने का भी विधान है । इसको 'दुर्णामचातन' अर्थात् अर्श (बवासीर), कुष्ठ, खुजली आदि का नाशक कहा गया है ।

अथर्ववेद में मण्डूकी (मण्डूकपर्णी), का उल्लेख है ।[४७] यह ब्राह्मी ओषधि का ही भेद है । मण्डूकपर्णी का मूल उष्ण और रसायन होने से खसरा आदि चर्मरोग, खुजली, कुष्ठ, गंडमाला आदि रोगों में प्रयुक्त होता है । इसकी पुलटिस (घोल) का प्रलेप सिफिलिस एवं अन्य क्षतों में उपयोगी है ।[४८]

अथर्ववेद में साल (साल या साखू) वृक्ष का उल्लेख है ।[४९] इसकी मणि भी धारण की जाती है । इसके सार को गोंद या राल कहते हैं । इसमें ओषधि के गुण हैं । यह चर्मरोगों में प्रयुक्त होता है । यह विष, व्रण, कोढ़, कर्णरोग आदि का नाशक है ।[५०]

**२३. कुष्ठ, किलास, श्वित्र (सफेद कुष्ठ)**—अथर्ववेद में कुष्ठ रोग की

चिकित्सा पर कई सूक्त दिए गये हैं ।[५१] इनमें कुष्ठ चिकित्सा की अनेक ओषधियों का उल्लेख है । श्वेत कुष्ठ के लिए किलास और पलित शब्द मिलते हैं ।[५२] ये दोनों श्वेत कुष्ठ के ही भेद हैं । इन दोनों में त्वचा पर दाग हो जाते हैं, परन्तु स्राव नहीं होता । किलास के चिह्न कुछ लाल और रूखे होते हैं । पलित के चिह्न सफेद होते हैं ।

किलास के तीन नाम माधवनिदान में दिए हैं— दारुण, अरुण और श्वित्र । रक्त में दोष होने से लाल रंग, मेद मे दोष होने से श्वेत वर्ण और मांस में दोष होने से ताम्र वर्ण होता है ।[५३]

अष्टांगहृदय में कुष्ठ से संबद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण उपयोगी बातें दी गयी हैं । संक्षेप में उनका उल्लेख किया जा रहा है । कुष्ठ की उत्पत्ति के कुछ विशेष कारण ये हैं—मिथ्या (अनियमित) आहार-व्यवहार, सज्जन आदि का वध, पराई संपत्ति का हरण, पूर्वजन्मकृत-कर्मफल के कारण वातादि दोष ।[५४]

कुष्ठ शरीर को कुत्सित बना देता है, अतः इसे कुष्ठ कहते हैं । शरीरं कुष्णाति कुत्सितं करोति, इति कुष्ठम् । उपेक्षा करने से यह शनैः-शनैः सारे शरीर को कुत्सित बना देता है । यह रस आदि धातुओं में पहुँच कर अन्दर फैलकर धातुओं को क्लिन्न करके सड़ने से दुर्गन्धित दारुण कृमियों को उत्पन्न करता है । ये कृमि क्रमशः बाल, त्वचा, स्नायु, धमनी और अस्थियों को खाते हैं, अतः इसे कुष्ठ कहते हैं । श्वित्र और कुष्ठ में अन्तर है—श्वित्र बाह्य त्वचा में ही होता है, कुष्ठ अन्तः धातु में रहता है ।[५५] कुष्ठ के सात भेद हैं— वात आदि दोषों से तीन, संसर्गदोषों से तीन और संनिपात से एक ।[५६] त्वचा में कुष्ठ होने से विवर्णता और रूक्षता होती है, रक्त में कुष्ठ होने पर पसीना और सूजन, मांस में कुष्ठ होने पर हाथ-पैर में छाले और जोड़ों पर पसीना, मेद में कुष्ठ होने पर हाथ-पैर में टेढ़ापन गतिनाश और अंगों का कटना, अस्थि और मज्जा में कुष्ठ होने पर नेत्रों में लाली, स्वरक्षय और क्षत में कृमियों का होना । श्वित्र अपरिस्रावी (न बहने वाला) होता है और कुष्ठ बहता है । रक्ताश्रित श्वित्र से मांसाश्रित श्वित्र अधिक कष्टसाध्य है और कफजन्य मेदःश्रित श्वित्र सबसे अधिक कष्टसाध्य है ।[५७]

अष्टांगहृदय में कुष्ठ की कुछ सरल चिकित्साएं भी वर्णित हैं । सभी कुष्ठ रोगियों की शरीर-पुष्टि के लिए स्नेहपान (घी, तेल का उपयोग) से चिकित्सा करें । सभी कुष्ठरोगों में भिलावे (भल्लातक) का तेल, तुवरक (तुवरी) का तेल या सरसों का तेल पिये । अथवा वायविडंग, हरड़ और भिलावे से सिद्ध घी या तेल पिये ।[५८]

अष्टांगहृदय में कुष्ठ में शिरावेधन का भी उल्लेख किया है । कुष्ठ के रोगी के ललाट, हाथ या पैर में बल के लिए शिरावेधन करें ।[५९] कुष्ठरोगी के लिए व्रत,

उपवास, जप आदि के अतिरिक सूर्यकिरण-चिकित्सा को बहुत उपयोगी बताया गया है ।[६०] वह सूर्याभिमुख होकर प्रातःकाल आधा या एक घंटा अवश्य बैठे । 'आरोग्यं भास्कराद् इच्छेत्' सूर्य-किरण-सेवन से नीरोगता की प्राप्ति होती है ।

कुष्ठरोगी के लिए पथ्य और अपथ्य का भी निर्देश है । पथ्य ये हैं—शालिधान्य, जौ, गेहूँ, कोदो, प्रियंगु, मूंग, मसूर, अरहर, त्रिफला, पटोल, नीम, भिलावा । अपथ्य ये हैं—खट्टा, लवण और मिर्च वाला भोजन । दही, दूध, घृत, तिल और उड़द, इनका विशेषरूप से त्याग करे ।[६१]

अथर्ववेद मे किलास (श्वेतकुष्ठ) और पलित का कारण 'दूषिः' अर्थात् दोषसमूह कहा है ।[६२] इन दोषों में मिथ्या (अनियमित) आहार, विहार, कुकर्म, अवैध संपर्क और रोगग्रस्त के साथ भोजनादि सभी संगृहीत हैं । इसी मंत्र में मांस, मेद, अस्थि आदि धातुओं के दूषित होने से किलास और पलित रोग की उत्पत्ति बतायी है ।[६३]

आधुनिक आयुर्विज्ञान के अनुसार किलास को ल्यूकोडर्मा (Leucoderma) या विटिलाइगो (Vitiligo) कहते हैं । शरीर की त्वचा को रंग देने वाले पदार्थ को मेलानिन (Melanin) कहते हैं । यह पदार्थ काला या भूरे रंग का होता है । इस रंजक पदार्थ के कारण ही बाल, आंख की पुतली आदि में कालापन रहता है । इसकी न्यूनता से त्वचा में सफेद दाग या धब्बे होते हैं । मेलानोब्लास्ट (Melanoblast) नामक अणुकोष मेलानिन नामक पदार्थ को उत्पन्न करते हैं ।

चरक संहिता में भगवान् आत्रेय ने अग्निवेश के प्रश्नों के उत्तर में बताया है कि शरीर में त्वचा के ६ भाग हैं और प्रत्येक त्वचा का पृथक्-पृथक् कार्य है । इन ६ भागों में से—१. बाहरी त्वचा, जल को धारण करती है, २. रक्त को धारण करती है, ३. सिध्म और किलास नामक कुष्ठ की उत्पत्ति का स्थान है, ४. दाद और सभी कुष्ठों की उत्पत्ति का स्थान है, ५. अलजी और विद्रधि की उत्पत्ति का स्थान है, ६. जिसके कटने से मनुष्य अन्धवत् हो जाता है और गांठों पर काली-लाल फुंसियां हो जाती हैं । ये बहुत कठिनता से ठीक होती हैं ।[६४]

वर्तमान चिकित्साविज्ञान भी त्वचा की परतों का ऐसा ही वर्णन करता है । उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि किलास या ल्यूकोडर्मा की उत्पत्ति का स्थान त्वचा की तीसरी परत है ।

अथर्ववेद में श्वेतकुष्ठ, किलास और पलित की ये ओषधियां निर्दिष्ट हैं—नक्तम्, रामा, कृष्णा, असिक्नी, रजनी, ब्रह्मन्, आसुरी और श्यामा ।[६५]

अथर्ववेद में 'नक्तम्' ओषधि का नाम दिया है । इस नाम से तीन ओषधियां प्रचलित हैं—

१. कलिहारी या नक्तेन्दुपुष्पिका । इसको कलियारी और करियारी भी कहते हैं । यह कोढ़, सूजन, बवासीर, कृमि, शूल आदि को नष्ट करता है ।[६६]

२. गुग्गुलु (गूगल) । इसका नक्तम् नाम भी है । यह कुष्ठ, पथरी, आमवात, सूजन, बवासीर, गंडमाला आदि को नष्ट करता है ।[६७] गूगल वृक्ष का गोंद ही गूगल नाम से प्रसिद्ध है ।

३. करंज, कंज या घियाकरंज । इसका संस्कृत नाम नक्तमाल भी है । यह कोढ़, कृमि, बवासीर और प्रमेह को नष्ट करता है । इसका तेल शरीर पर लगाने से चमड़े पर कोई दाग नहीं रहता है । नीबू का रस और इसका तेल बराबर लेकर लगाना चर्मरोगों की महौषधि है । नक्तमाल के पत्ते भी रसायन हैं । ये कुष्ठ, अतीसार, मृगी और पेट फूलना तथा यकृत् में लाभकर हैं ।[६८]

अथर्ववेद में रामा ओषधि का उल्लेख है ।[६९] इसे श्वेत कुष्ठ या किलास का नाशक बताया है । सायण ने इसका अर्थ भृंगराज लिया है । अन्य ओषधियों के साथ इसका श्वेतकुष्ठ और पलित (बाल सफेद होना) में प्रयोग होता है । इसके प्रयोग की विधि बतायी गयी है कि सूखे उपले से श्वित्र प्रदेश को रगड़े और जब रक्त आने लगे तब भृंगराज, हरिद्रा, इन्द्रवारुणी और नीलिका (नील) को पीस कर लेप करे ।

घृतकुमारी, घीकुँवार, ग्वारपाठा को भी रामा कहते हैं । इसे कन्या, कुमारी आदि भी कहते हैं । यह रुधिर-विकार, त्वचारोग, चर्मविकार, कुष्ठ आदि का नाशक है । इसके रस को जमाकर मुसब्बर ओषधि बनती है । घृतकुमारी का प्रलेप चर्मविकार-नाशक है ।[७०]

अथर्ववेद में रामा के साथ कृष्णा ओषधि का भी उल्लेख है ।[७१] सायण ने इसका अर्थ इन्द्रवारुणी किया है । कौशिकसूत्र में कृष्णा से नीली का ग्रहण है । इसको श्वित्र और पलित की ओषधि बताया गया है । इन्द्रवारुणी को हिन्दी में इन्द्रायण, छोटी इन्द्रायण, इनारुन आदि कहते हैं । इसे Colocynthis (क़ोलोसिन्थिस) कहते हैं । यह कोढ़, कास, श्वास, प्रमेह, गंडमाला और विष रोगों का नाशक है ।[७२] कृष्णा शब्द से काली तुलसी, नीलपुनर्नवा, दाक्षा और पिप्पली का भी ग्रहण होता है । काली तुलसी कुष्ठ, रक्तविकार, कफ और वात को नष्ट करती है ।[७३] नील पुनर्नवा या पुनर्नवा रक्तविकार-नाशक है ।[७४] यह पांडुरोग, सूजन, उदररोग आदि को नष्ट करती है ।[७५] पिप्पली (पीपर) कोढ़, प्रमेह, बवासीर, आमवात आदि को नष्ट करती है ।[७५]

अथर्ववेद में श्वेत कुष्ठ की चिकित्सा के लिए असिक्नी ओषधि का उल्लेख है ।[७६] असिक्नी का अर्थ काला है । सायण ने इसका अर्थ नीली ओषधि लिया

है। यह नील है। यह उदररोग, रुधिरविकार आदि में प्रयुक्त होता है। निघण्टु-रत्नाकर में नील को कुष्ठनाशक कहा है। सुश्रुत में कुष्ठनाशन के लिए घी में नील डाल कर लगाने का वर्णन है।[७७] योगरत्नाकर में भी नील के पत्तों का लेप कुष्ठ पर उपयोगी बताया गया है।[७८]

अथर्ववेद में श्यामा को श्वित्र (सफेद कुष्ठ) और पलित (बालों की सफेदी एवं कुष्ठ) की उत्तम ओषधि बताया है।[७९] यह सफेद दाग दूर करके त्वचा को समान बना देती है, अतः इसे 'सरूपंकरणी' कहा गया है। राजनिघंटु में श्यामा नील का नाम दिया है। यहाँ पर नील या भृंगराज अर्थ लेना उचित है।

अथर्ववेद में रजनी को श्वेत कुष्ठ और पलित की चिकित्सा बताया है।[८०] यह रंगने के लिए है। भावप्रकाश निघण्टु में नील या नीली को रंजनी कहा है।[८१] यहाँ नील अर्थ उचित है। दारिल ने इसे मेथिका (मेथी) माना है और केशव ने हरिद्रा (हल्दी)। हल्दी रुधिर-विकार, सूजन, पांडुरोग और प्रमेह की चिकित्सा है। पिसी हल्दी को तिल के तेल के साथ मिलाकर मालिश करने से चर्म रोग आदि नहीं होते।[८२]

अथर्ववेद में आसुरी ओषधि को श्वेत कुष्ठ की चिकित्सा बताया है।[८३] अथर्वपरिशिष्ट के आसुरीकल्प (३५) में इसे राजिका (राई) माना है। भावप्रकाश में राजिका का पर्याय आसुरी है। यह कुष्ठ और खुजली की नाशक है।[८४] वैद्यक शब्दसिन्धु में सफेद सरसों को आसुरी बताया है। यहाँ सफेद सरसों अर्थ लेना उपयुक्त है।

अथर्ववेद में श्वेतकुष्ठ के लिए ब्रह्मन् ओषधि का उल्लेख है।[८५] भारंगी या फंजी को ब्रह्मसुवर्चला और ब्रह्मयष्टि भी कहते हैं। ब्रह्मन् शब्द से भारंगी अर्थ लेना उचित है। यह रुधिरविकार, कास, श्वास, पीनस, फुफ्फुस के कफजन्य रोग, गंडमाला और आमवात में लाभप्रद है।[८६] सुश्रुत का कथन है कि खैर और विजयसार सभी प्रकार के कुष्ठों को नष्ट करते हैं।[८७]

अथर्ववेद आदि में अन्य कतिपय ओषधियों का उल्लेख है, जो कुष्ठ में लाभप्रद हैं। ये हैं—तिल्वक (शब्द १०४, तिनिश), मण्डूकी (७१, मंडूकपर्णी), माषपर्णी एवं पृश्निपर्णी (१८४, लक्ष्मणा), वीरिण या वीरण (२१६), शतवार (२३१, शतावर), पुष्पा (१४८), बज (१५६, सफेद सरसों), बभ्रु (१६१, शंखपुष्पी, श्वेतपुष्पी), विभीदक या बिभीतक (१६५, बहेरा, बहेड़ा), शमी (२३४, शमी, जंड, सफेद कीकर), हारिद्रव, हरिद्रु (२८३, हरिताल, हरताल)।

**२४. अर्श (बवासीर, बादी और खूनी बवासीर)**—चरक और अष्टांग-

हृदय में गुदामार्ग को अवरुद्ध करने वाले मांस के अंकुरों को अर्श कहा गया है । इसके दो भेद हैं—शुष्क और स्रावी । शुष्क में स्राव नहीं होता और स्रावी में रक्त का प्रवाह होता है । शुष्क (बादी बवासीर) वायु और कफ के दोष से होता है और स्रावी या आर्द्र (खूनी बवासीर) रक्त और पित्त के दोष से होता है ।

अर्श के कारण बताए हैं कि दोषों से अग्नि के मन्द होने से, मल के अतिसंचित हो जाने से, अति मैथुन से, मूत्र और मल के वेग को रोकने से, अतिसार, ग्रहणी आदि से अर्श होता है ।[८८]

अर्श के छेदन का विधान हैं । एक-एक अर्श की सात-सात दिन बाद चिकित्सा करे । सबको एक साथ न काटे और शस्त्र से काटकर भी अग्नि या क्षार से जलावे । अर्शों में धूपन का भी विधान है । अश्वगन्धा, तुलसी, बड़ी कटेरी, पिप्पली और घी से धुंआ देना लाभप्रद हैं ।[८९]

बवासीर में तक्र-पान का बहुत महत्त्व बताया गया है । आवश्यकतानुसार सात, दस, पन्द्रह या एक मास तक तक्र (मट्ठा) का पान करे । कभी स्नेह (चिकनाई) के साथ और कभी बिना स्नेह वाला मट्ठा ले । तक्र से नष्ट किये हुए अर्श फिर दुबारा उत्पन्न नहीं होते । मट्ठा अर्श को जला देता है। सूखे अर्श में भिलावा श्रेष्ठ है और खूनी में कुड़े की छाल उत्तम है । तक्र सदा उत्तम हैं ।[९०]

यजुर्वेद में बवासीर के लिए अर्शस् नाम आया है ।[९१] अथर्ववेद में अर्शरोग के लिए दुर्णामा, दुर्णाम्नी और दुर्वाच नाम आये हैं ।[९२] यह गुप्त रोग है, इसका नाम लेना अनुचित है, इसलिए 'बुरा नाम' वाचक शब्द 'दुर्णाम' और 'दुर्णाम्नी' रखे गये हैं । आयुर्वेद में गुदा में होने वाले बवासीर को दुर्णाम कहते हैं । मुख, नाक आदि पर होने वाले मस्सों के लिए 'दुर्वाच' शब्द है ।

अथर्ववेद में अर्श की दो प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख है— ओषधिचिकित्सा और शल्यचिकित्सा । ओषधिचिकित्सा में पृश्निपर्णी (माषपर्णी, चित्रपर्णी, पिठवन) और अपामार्ग का उल्लेख है । पृश्निपर्णी को बवासीर की चिकित्सा बताया गया है ।[९३] निघण्टु में इसे बवासीर का नाशक नहीं बताया है, परन्तु चरक में अर्श चिकित्सा में अवाक्पुष्पी, बला, दार्वी और त्रिकण्टक के साथ पृश्निपर्णी का नाम दिया गया है ।[९४]

अथर्ववेद के तीन सूक्तों (४,१७ से१९) में अपामार्ग (चिरचिटा) का गुणगान है । इसमें अपामार्ग को अर्श रोग की चिकित्सा बताया गया है ।[९५] अष्टांगहृदय में भी वाग्भट ने लिखा है कि चिरचिटे को पत्थर पर पीस कर चावल के धोवन से पीवे । इससे खूनी बवासीर नष्ट होती है ।[९६] चिरचिटा हरा न मिले तो सूखे का चूर्ण पीसकर पीवे । सिद्धभैषज्यमंजूषा में भी चिरचिटे का उपयोग दिया गया है ।

डॉ० रमानाथ द्विवेदी ने लिखा है कि अपामार्ग के मूल को मरिच (कालीमिर्च), मिश्री और चावल के पानी (धोवन) के साथ पीने से अर्शरोग में लाभ होता है ।

अथर्ववेद के एक मंत्र में बवासीर की शल्यचिकित्सा का भी निर्देश मिलता है । वेद का कथन है कि बवासीर के शिर (मस्सों) को इसी प्रकार काटता हूँ, जैसे किसी पक्षी के सिर को ।[९७]

चरक और सुश्रुत संहिता में अर्श-चिकित्सा पर बहुत विस्तृत वर्णन मिलता है । चरक का कथन है कि अर्श में ओषधि-चिकित्सा के अतिरिक्त अर्श का शस्त्र से काटना, क्षार से दाह और अग्नि से दाह करने का वर्णन है । परन्तु यह कार्य अत्यन्त निपुण वैद्य को ही करना चाहिए, अन्यथा अधिक अनिष्ट की आशंका है ।[९८]

सुश्रुत का कथन है कि अर्शों की चिकित्सा के लिए चार प्रकार हैं—१. ओषधि, २. क्षार, ३. अग्नि, ४. शस्त्र । प्रारम्भिक अवस्था में अर्श ओषधि से साध्य होते हैं । न दीखने वाले अर्श की भी चिकित्सा ओषधि के की जाती है । गहराई में स्थित और उभरे हुए अर्श क्षार से साध्य होते हैं । खुरदरे, मोटे और बड़े अर्श अग्निदाह से ठीक होते हैं । पतली जड़ वाले, ऊपर उभरे हुए और चिपचिपे अर्श शस्त्रसाध्य होते हैं । गुदा में क्षार, अग्नि और शस्त्रों का प्रयोग बड़ी सावधानी के करना चाहिए, क्योंकि इसमें त्रुटि होने से नपुंसकता, शोथ, दाह, पेट फूलना, अतिसार या मृत्यु भी हो सकती है । सुश्रुत में क्षार, अग्नि और शस्त्र इन तीनों विधियों का विस्तार से वर्णन है ।[९९]

सुश्रुत का कथन है कि सभी प्रकार के अर्श को कुटज (कुड़ा कोरैया, इन्द्रजौ) और भिलावा (भल्लातक) नष्ट करते हैं ।[१००] अर्श (बवासीर) के रोगी को ये परहेज करने चाहिएँ:—मल-मूत्र का वेग न रोके, घोड़े आदि की पीठ पर न बैठे, तीक्ष्ण द्रव्यों का पान न करे, उकडूं न बैठे और रोग बढ़ाने वाले अन्न का त्याग करे ।[१०१]

अथर्ववेद आदि में इन ओषधियों का उल्लेख है । ये ओषधियां अर्श में लाभप्रद हैं । अर्क (आक, शब्द १७), उपवाक, उपवाका (इन्द्रजौ, कुटज बीज, शब्द ४७), करीर (करील, शब्द ५७), पिप्पली (पीपर, १४०), विभीदक, बिभीतक (बहेरा, १६५), माष (उड़द, १८३), मुंज (मूंज, १८५), वेतस (बेंत २२१), शमी (शमी, छोकर, सफेद कीकर, २३४), सहदेवी (सहदेई, सहदेइया, २६१)

नीली ओषधि को रंजनी या नील कहते हैं । खूनी बवासीर में नील की शाखा और पत्तों को पीसकर देते हैं । इससे खून आना बन्द हो जाता है ।[१०२] शतवार को अथर्ववेद में 'दुर्णामचातन' अर्थात् अर्श रोग का नाशक कहा गया है । यह शतावर है । यह कुष्ठ, खुजली आदि को नष्ट करती है ।[१०३] यह संग्रहणी और नेत्ररोगों को नष्ट करती है । रसायन है । शुक्रक्षय और मूत्र की कमी में भी इसे

दिया जाता है ।[१०४] (शब्द, २३१) । अथर्ववेद में मदुघ और मधूलक का उल्लेख है ।[१०५] इसको यष्टीमधु, मधूलिका भी कहते हैं । यह मुलहठी है । यह सनाय के साथ देने से रक्तार्श (खूनी बवासीर) में लाभ करता है ।[१०६] (शब्द १७३, १७६)

**२५. पामा, पामन् (खाज)**—तैत्तिरीय संहिता और काठक संहिता में पामन् शब्द का उल्लेख है ।[१०७] यह खाज-खुजली के लिए है । आयुर्वेद में यह कुष्ठ के भेद में परिगणित है और कुष्ठ की कुछ ओषधियां इस पर प्रयुक्त होती हैं ।

अथर्ववेद में अर्क (आक, मदार) का उल्लेख है ।[१०८] इसके पत्ते, फूल और दूध का प्रयोग होता है । भावप्रकाश के अनुसार आक कोढ़, खुजली, विषव्रण, बवासीर और मलकृमि को नष्ट करता है ।[१०६]

अथर्ववेद में आसुरी ओषधि को कुष्ठनाशक बताया गया है ।[११०] यह राजिका (राई) है । भावप्रकाश में इसे खाज-खुजली, कुष्ठ और पेट के कीड़ों का नाशक कहा गया है ।[१११]

अथर्ववेद में मण्डूकी (मण्डूकपर्णी) का उल्लेख है ।[११२] यह ब्राह्मी ओषधि का ही एक भेद है । मण्डूकपर्णी का मूल उष्ण और रसायन होने से खसरा आदि चर्मरोग, खुजली, कुष्ठ, गंडमाला आदि रोगों को दूर करता है ।[११३]

मैत्रायणी और काठक संहिता में स्रेकपर्ण का उल्लेख है ।[११४] यह करवीर या कनेर है । यह कोढ़, खुजली, व्रण और कृमि को नष्ट करता है । इसके मूलत्वक् (जड़ की छाल) का लेप शिश्नक्षत, फिरंग-व्रण और दाद के लिए हितकर है ।[११५]

अथर्ववेद में हारिद्रव, हरिद्रु का उल्लेख है ।[११६] सायण ने इसका अर्थ हरिताल (हरताल) लिया है । यह खनिज और कृत्रिम दोनों प्रकार का है । खनिज में यह भूगर्भ से प्राप्त होता है । कृत्रिम हरताल में २ भाग संखिया और ३ भाग गंधक होता है । शुद्ध हरताल गरम है । यह खुजली, कोढ़, मुखरोग, रुधिरविकार और व्रणों को नष्ट करता है ।[११७]

**२६. दद्रु (दाद)**—मैत्रायणी और काठक संहिता में स्रेकपर्ण (करवीर या कनेर) का उल्लेख है ।[११८] इसके जड़ की छाल दाद, शिश्नक्षत और फिरंग रोग में उपयोगी है ।[११६]

**२७. विसल्प, विसर्प, विसल्य, विसल्यक (फैलने वाली फुंसियां)**—चेप-युक्त लाल रंग की छोटी फुंसियां जो झुंड के रूप में चारों ओर फैल जाती हैं, उन्हें विसर्प कहते हैं । इसके लिए अथर्ववेद में विसल्प, विसल्पक, विसल्य, विसल्यक नाम आए हैं ।[१२०] अथर्ववेद में इसके लिए चीपुद्रु (चीड़) ओषधि लिखी है ।[१२१] चीड़ का गोंद (लीसा) फोड़े, फुंसी के लिए बहुत लाभप्रद है । अथर्ववेद में अंजन

एवं अंजन की मणि को विसर्प रोग का नाशक बताया गया है ।[१२२] (देखो आञ्जन शब्द, ३०)

**२८. रक्तविकार**—अथर्ववेद आदि में इन ओषधियों का उल्लेख हैं । ये ओषधियां रक्तविकार को दूर करती हैं । उदुम्बर (गूलर, शब्द ४५) । इसकी मणि को बांधने का भी विधान है । औदुम्बर मणि को धन-धान्य, श्री एवं तेज की वृद्धि का साधन बताया गया है ।[१२३] यजुर्वेद में कर्कन्धु (बेर) का उल्लेख है ।[१२४] यह रुधिर-विकार, क्षय, तृषा आदि को नष्ट करता है ।[१२५]

मैत्रायणी संहिता में तिल्वक (तिनिश वृक्ष) का उल्लेख है ।[१२६] यह रुधिर-विकार, कोढ़, प्रमेह, पाण्डुरोग और कृमि का नाशक है ।[१२७] काठक और कठसंहिता में वृष (वासा) और यवाष (जवासा) का उल्लेख है ।[१२८] ये गर्मी में होते हैं और वर्षा में खूख जाते हैं । वासा को अडूसा या विसौटा भी कहते हैं । यह रक्तविकार, श्वास, खांसी, प्रमेह, कोढ़, वमन, क्षय और पित्त को नष्ट करता है ।[१२९]

अथर्ववेद आदि में दूर्वा (दूब) का उल्लेख है ।[१३०] हरी दूब रुधिर-विकार, विसर्प , तृषा, दाह और त्वचा के रोगों को नष्ट करती है ।[१३१] ऋग्वेद और अथर्ववेद में पुण्डरीक (सफेद कमल) का उल्लेख है ।[१३२] यह रुधिरविकार, फोड़ा, फुंसी, विसर्प, विष, कफ और पित्त का नाशक है ।[१३३]

यजुर्वेद और अथर्ववेद में प्लक्ष (पिलखन, पाकर या पाखर) का उल्लेख है ।[१३४] इससे लाक्षा (गोंद) निकलती है । यह रक्तविकार, सूजन, रक्तपित्त, योनिदाह और व्रण का नाशक है ।[१३५] मैत्रायणी और काठक संहिताओं में भूर्ज वृक्ष का उल्लेख हैं ।[१३६] इसकी छाल को भूर्जपत्र (भोजपत्र) कहते हैं । यह रक्तविकार, कर्णरोग और विष का नाशक है ।[१३७]

## (च) घाव, चोट आदि

**२९. शोथ (सूजन)**—अथर्ववेद आदि में अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष का उल्लेख है ।[१] पीपल का दूध अतिशीघ्र रक्तरोधक, वेदना-शामक और सूजन को दूर करने वाला है ।[२] ऋग्वेद आदि में पर्ण (पलाश, ढाक) वृक्ष का उल्लेख है ।[३] ढाक के पत्तों का उष्ण प्रलेप घाव के सूजन को दूर करता है ।[४]

अथर्ववेद आदि में पुष्कर (कमल) का उल्लेख है ।[५] पुष्करमूल (कमल की जड़) सूजन, अरुचि और पसली के दर्द को दूर करता है ।[६] ऋग्वेद में शिग्रु (सहजन, सहिंजना, सहिजन) वृक्ष का उल्लेख है ।[७] इसके पत्तों की पुलटिस सूजन पर हितकर है । इसकी छाल के प्रलेप से फोड़ा पक जाता है ।[८]

अथर्ववेद में प्लक्ष (पाकर, पाखर, पिलखन) का उल्लेख है ।[९] यह न्यग्रोध

(बड़) आदि वानस्पत्य-चतुष्टय में से एक है । इससे लाक्षा (गोंद) निकलती है। यह व्रण, रक्तविकार, सूजन, रक्तपित्त और योनिदाह का नाशक है ।[१०]

अथर्ववेद आदि में वंश (बांस) का उल्लेख है ।[११] यह व्रण, रुधिरविकार और सूजन को नष्ट करता है । इसके पत्तों का रस रक्तरोधक है ।[१२] अथर्ववेद में अनेक मन्त्रों में वरण (वरुण या वरना) वृक्ष का उल्लेख है ।[१३] यह रक्तविकार, वातगुल्म (गठिया) और मूत्रकृच्छ्र (कष्ट से मूत्र आना) रोगों को ठीक करता है। पैर के तलवे में सूजन होने पर इसके पत्तों का लेप किया जाता है । यह तपेदिक (T. B.) को भी ठीक करता है ।

**३०. सद्योव्रण (ताजा घाव, चोट)**—तुरन्त लगी हुई चोट या घाव को सद्योव्रण या आशुघात कहते हैं । अथर्ववेद में इसकी चिकित्सा जल बताया गया है ।[१४] अस्त्र से विद्ध या शस्त्र से क्षत स्थान पर शीतल जल की धारा से सेचन करना चाहिए और उस अंग को जल में भिगोकर रखना चाहिए । शीतल जल से क्षत स्थल को गीला करके उसपर मोटे कपड़े की पट्टी बांधनी चाहिए । इससे बहुत लाभ होता है। यह चिकित्सा आजकल भी लोक में प्रचलित है । यह प्रक्रिया वैज्ञानिक सिद्ध हुई है ।

अथर्ववेद में लाक्षा (लाख, लाही, गोंद) का बहुत गुणगान है ।[१५] यह सद्योव्रण, अस्त्रों के घाव, शस्त्रक्षत आदि की उत्तम चिकित्सा है । यह प्लक्ष (पिलखन), न्यग्रोध (बड़), भद्र (चीड़), अश्वत्थ (पीपल), खदिर (खैर) आदि से प्राप्त होती है ।[१६] केशवपद्धति (२८.४) में भी शस्त्राघात, रक्तस्राव और हड्डी टूटने में लाक्षा के जल से सेचन का विधान है ।[१७]

बाण या विस्फोटक से एक साथ सैकड़ों घाव हो जाने पर अथर्ववेद में जल को तात्कालिक चिकित्सा बताया गया है । मंत्र का कथन है कि जल रुद्र के द्वारा बतायी गयी चिकित्सा है । यह बाण के घाव को तथा तुरन्त के सैकड़ों घावों को ठीक करता है ।[१८]

अथर्ववेद में शाण्डदूर्वा (बड़ी दूब) का उल्लेख है ।[१९] खून बन्द करने के लिए इसका उपयोग होता है । नाक से खून आना या शस्त्र आदि के चोट से रक्तस्राव में यह लाभकारी है ।[२०] अथर्ववेद में शिलाची या सिलाची का उल्लेख है ।[२१] यह लाक्षा (लाख, गोंद) का पर्याय है । घाव ठीक करने के कारण इसे अरुन्धती, निष्कृति भी कहते हैं । यह टूटी हड्डी को जोड़ती है और घाव, चोट आदि को ठीक करती है ।

**३१. क्षत, व्रण (घाव, चोट आदि)**—अथर्ववेद में रोहणी ओषधि का बहुत गुणगान है ।[२२] इसे टूटी हड्डी को जोड़ने वाला, गंडासा या तलवार के लगने से हुए

घाव को तथा पत्थर आदि लगने से हुए घाव को ठीक करने वाला बताया गया है ।[२३] मन्त्र में रोहणी के लिए अरुन्धती शब्द आया है । लाक्षा (लाख) को अरुन्धती कहते हैं । लाक्षा लाल होती है, अतः उसे रोहित, रोहिण या लोहित कहते हैं । सायण ने रोहित का अर्थ लाक्षा लिया है। इसकी विधि कौशिक सूत्र (४.४) आदि में बतायी गयी है कि शस्त्र के प्रहार से निकलते हुए खून के प्रवाह को रोकने के लिए लाक्षा को काढ़े के रूप में उबालें और उसको घाव पर डालकर घाव की सफाई करें और उसकी पट्टी बांधें । साथ ही आहत व्यक्ति को घी और दूध पिलावें । लाक्षा के काढ़े से खून रुकेगा और घी-दूध से व्यक्ति को शक्ति प्राप्त होगी ।

श्री ब्रह्ममुनि ने इस सूक्त में रोहणी से मांसरोहिणी और भद्रा से सारिवा या अनन्तमूल ओषधि ली है । उनका कथन है कि मांसरोहिणी को घाव भरने वाला कहा गया है । सारिवा दो प्रकार की है—सफेद और काली । काली सारिवा को भद्रा भी कहते हैं । काली सारिवा को खून रोकने वाला तथा चोट घाव आदि को ठीक करने वाला बताया गया है ।[२४]

अथर्ववेद मे पाटा ओषधि का उल्लेख है ।[२५] यह पाठा या पाढ़ ओषधि है । इसके ही उत्तानपर्णा, सुभगा, सहमाना, सहीयसी आदि नाम हैं । यह वृक्ष के आधार पर चढ़ने वाली लता है । कहीं कहीं किसी लता के आश्रय से ऊपर उठती है । यह सूत की तरह पतली और दृढ़ होती है । अतिस्थूल होने पर भी कनिष्ठा अंगुली से अधिक मोटी नहीं होती। भावप्रकाश निघण्टु में इसे दाह, खुजली, विषैला व्रण आदि की ओषधि कहा गया है ।[२६] राजनिघंटु मे इसे 'भग्नसंधानकरी' टूटे अंगों को ज़ोड़ने वाला कहा गया है ।[२७] यह ज्वर, शूल, कोढ़, अतिसार (दस्त) और हृदय के रोगों को भी नष्ट करती है । अथर्ववेद का कथन है कि असुरों से रक्षा के लिए इन्द्र ने पाठा को खाया और अपने हाथ पर भी इसे बांधा ।[२८] इससे ज्ञात होता है कि पाठा को मणि के तुल्य हाथ आदि पर बांधा जाता है । यह बड़े घावों और विषैले शस्त्राघातों की भी ओषधि है ।

अथर्ववेद में गुल्गुलु (गूगल) का उल्लेख है ।[२९] यह टूटी हुई हड्डियों को जोड़ता है । यह सूजन, फोड़ा, बवासीर, गंडमाला और कृमिरोगों को नष्ट करता है । पाश्चात्त्य मतानुसार यह चर्मरोगों में व्यवहृत होता है । पुराने घावों में यह बहुत अधिक हितकर है ।[३०]

**३२. आस्राव, रुधिरस्राव, शल्यव्रण आदि**—शस्त्र आदि के आघात से शरीर से रक्त की धारा प्रवाहित होती है ।[३१] यह कभी-कभी विशेष वेग से निकलती है । इसे आस्राव या रुधिरस्राव आदि कहते हैं । अथर्ववेद में इसकी ओषधि-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, मृत्-चिकित्सा आदि का वर्णन है । रुधिर रोकने के लिए

धमनी-बन्धन भी उत्तम प्रकार है । अथर्ववेद में अधिक रक्त-स्राव होने की अवस्था में धमनी-बन्धन का आदेश है । कौशिकसूत्र के व्याख्याकार श्री केशवदेव शास्त्री का कथन है कि बन्धन आदि क्रिया में घाव के अनुसार एक से लेकर पांच तक गांठ लगानी चाहिए । यह बन्धन किसी कोमल वस्त्र आदि से करना चाहिए ।

अथर्ववेद में रुधिरस्राव रोकने के लिए मृत्-चिकित्सा का भी उल्लेख मिलता है । दीमक समुद्र से मिट्टी निकालकर वमी बनाती हैं । यह दीमक की निकाली हुई मिट्टी खून रोकने की उत्तम दवा है । यह रुधिरस्राव को बन्द कर देती है ।[३२]

अथर्ववेद में 'सिकतावती' का धनुष की रगड़ से हुए रक्तस्राव में उल्लेख है ।[३३] श्री सातवलेकर ने सिकता शब्द से शर्करा (चीनी) अर्थ लेते हुए भाव दिया है कि मिश्री या चीनी बहुत बारीक पीस कर रक्तस्राव वाले स्थान पर लगावे । इससे खून निकलना बन्द हो जायेगा ।[३४]

अथर्ववेद में रक्तस्राव रोकने के लिए जल-चिकित्सा का भी मुख्य रूप से उल्लेख किया गया है । मन्त्र का कथन है कि पर्वत से नीचे की ओर आता हुआ ठंडा जल रक्तस्राव की ओषधि है ।[३५] इसका अभिप्राय यह है कि बहुत ठंडा जल रक्तस्राव वाले स्थान पर डालने से खून बहना बन्द हो जाता है । रक्तस्राव वाले स्थान पर ठंडे जल में भीगी पट्टी भी खून रोकने के लिए बांधी जाती है ।

अथर्ववेद में 'आस्रावभेषज' को खून रोकने की उत्तम ओषधि बताया गया है ।[३६] यह दर्भ या कुश का वाचक है । पैप्पलाद संहिता में कुश को आस्रावभेषज कहा है और इसे खून रोकने वाला बताया है ।[३७]

व्रणस्राव की चिकित्सा को 'अरुस्राण' कहते हैं । अथर्ववेद के दो मन्त्रों में वल्मीक (वमी) की मिट्टी को खून रोकने की ओषधि कहा गया है । दीमक इस मिट्टी को पृथिवी से निकालती हैं । इसे 'अरुस्राण' नाम दिया गया है ।[३८] वल्मीक-मृत्तिका और कृष्णमृत्तिका (काली मिट्टी) के प्रयोग से रक्तस्राव बन्द हो जाता है ।

पाटा या पाठा ओषधि को शल्यव्रण अर्थात् बाण आदि के कारण हुए घाव को ठीक करने वाला बताया गया है ।[३९] इसका विवरण पहले दिया जा चुका है ।

भावप्रकाश निघण्टु में विशल्या या कलिहारी ओषधि का उल्लेख है । इसे हलिनी, लांगली, शुक्लपुष्पी और अग्निशिखा भी कहते हैं । इसे हिन्दी में कलिहारी या कलियारी कहते हैं । इसकी विशेषता यह है कि शरीर के भीतर कोई शल्य (कांटा, लोहे का तीर, कील आदि) घुस गया हो तो ऊपर इसका लेप कर देने से लौह या धातुनिर्मित कांटे आदि स्वयं ऊपर आ जाते हैं, अतः इसे विशल्या कहते

हैं। यह अपरा आदि दुःखदायक शल्यों को भी तलवे पर लेप करने से निकाल देती है। इसका लेटिन नाम Gloriosa Superba (ग्लोरिओसा सुपर्बा) है।[४०]

अथर्ववेद में आस्राव, रक्तस्राव या खून रोकने के लिए विषाणका ओषधि का उल्लेख है।[४१] भावप्रकाश निघण्टु में मेषशृंगी (मेढ़ासिंगी) को विषाणी कहा है। इसे कफ, खांसी, कृमि, व्रण (घाव) और विष का नाशक बताया गया है।[४२]

अथर्ववेद में चीपुद्रु (चीड़) का बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है।[४३] इसको खांसी, फोड़ा, फुंसी, रक्तस्राव, चर्मरोग आदि का नाशक बताया गया है। यह कांख की गिल्टियों, जाँघ की गिल्टियों, कान के रोग और हृदय के रोगों को भी दूर करता है।[४४] भावप्रकाश में इसे व्रणों के लिए हितकारी तथा कान, नेत्र, गले आदि के रोगों पर लाभकारी बताया है।[४५] चीड़ से निर्यास (गोंद, लीसा) निकलता है। इसे बिरोजा या पिरोजा कहते हैं। इसका मलहम बनाया जाता है। यह सभी चर्मरोगों और क्षतों के लिए लाभप्रद है।

अथर्ववेद और मैत्रायणी संहिता आदि में आञ्जन या अंजन के लाभ आदि का विस्तार से वर्णन मिलता है।[४६] इसको विसर्प (एक्जिमा या छाजन) की चिकित्सा बताया गया है। अंगभेद (जोड़ों में दर्द), ज्वर, कफरोग, पीलिया आदि को यह नष्ट करता है।[४७] इसका प्रभाव शरीर के प्रत्येक अंग पर पड़ता है और प्रत्येक पर्व (जोड़ों) पर अपना प्रभाव दिखाकर रोगों को जड़ से नष्ट करता है।[४८] अंजन वृक्ष और खनिज दोनों है। यह त्रिककुद् पर्वत पर होता है, अतः इसे त्रैककुद कहते हैं।[४९] त्रिककुद् को अंजन का उत्पत्तिस्थान या पिता कहा गया है।[५०] यह अंजन आजकल सुलेमानी सुरमा और सौवीरांजन कहा जाता है। यह यमुनाप्रदेश में होने वाला वृक्ष भी है। अतः इसे यामुन कहते हैं।[५१] भावप्रकाश मे अंजन या सौवीर अंजन के गुण बताए हैं—यह नेत्रों के लिए हितकर है। यह कफ, पित्त, वमन, विसर्प या छाजन, क्षय, रक्तविकार, कुष्ठ आदि को नष्ट करता है।[५२]

अथर्ववेद में अरुस्राण को आस्रावभेषज कहा गया है।[५३] आस्राव का अर्थ है—रक्तस्राव, अतिसार, अतिमूत्र तथा नाड़ीव्रण आदि। अरुस्राण का अर्थ है—अरुषो व्रणस्य पाचनम्, अरु (व्रण को) स्राण (पकाने वाली)। यह व्रण को पकाकर उससे पीब बाहर निकालने वाली ओषधि है। इसके लिए कहा गया है कि यह जड़ खोदकर भूमि से निकाली जाती है।[५४] आस्रावभेषज का अर्थ दर्भ (कुश) है। अरुस्राण का अर्थ भी कुश या दर्भ है। कुछ विद्वान् इसे मुंज (मूंज) मानते हैं।

वेदों में इन ओषधियों को भी आस्राव या रुधिरस्राव की ओषधि बताया गया है। दर्भ (कुश, शब्द ११३), मुञ्ज (मूंज, शब्द १८५), अश्वत्थ (पीपल, शब्द २४),

अर्जुन (शब्द १८), अरुन्धती (लाक्षा, शब्द १५), तेजन (बांस, शब्द १०८), लाक्षा (लाख, शब्द १६६) वंश (बांस, शब्द १६६) ।

**३३. विद्रध, विद्रधि (फोड़ा, Ulcer)**—अथर्ववेद में विद्रध शब्द है, किन्तु आयुर्वेद में इसे विद्रधि कहते हैं । अष्टांगहृदय का कथन है कि बासी, रूखा, शुष्क, दाहक भोजन के अतिसेवन से, कुटिल चेष्टाओं से, रक्तदोष को करने वाले कारणों से त्वचा, मांस, मेद (चरबी), अस्थि, स्नायु आदि में अत्यन्त पीडा करने वाला, गोल या लंबा जो शोफ (सूजन) होता है, उसे विद्रधि कहते हैं । यह दो प्रकार का होता है —१. शरीर के भिन्न अंगों में बाहर कठोर गांठ के समान ऊपर उठा हुआ, २. शरीर के अन्दर छिपा हुआ, गुल्म (गाँठ) के समान । अन्दर का विद्रधि नाभि, वस्ति, यकृत्, प्लीहा, क्लोम, हृदय, कुक्षि, वृक्क और गुदा में होता है । यह स्त्रियों के गर्भाशय में होता है ।[५५]

अष्टांगहृदय के अनुसार सब प्रकार के विद्रधि में गुग्गुलु (गूगल) को सभी अवस्थाओं में कषायों के साथ देना चाहिए । इसी प्रकार दोषों के अनुसार शिलाजतु (शिलाजीत) कषायों के साथ देना चाहिए ।[५६] अन्दर के विद्रधि में मीठा सहजन बहुत उपयोगी है। मीठे सहजन का क्वाथ दोष के अनुसार प्रक्षेप मिलाकर पीने, खाने और लेप करने से न पका हुआ विद्रधि नष्ट हो जाता है। दुष्ट अन्तर्विद्रधि के शमन के लिए भी मीठे सहजन को पिलावे और इसका यवागू (लपसी, पतला हलुआ) बनाकर खिलावे ।[५७]

अष्टांगहृदय की शिक्षा है कि विद्रधि को पकने से बचाना चाहिए , क्योंकि पकने पर यह असाध्य हो जाता है ।[५८] इस प्रकार ज्ञात होता है कि विद्रधि में गूगल, शिलाजीत और मधुशिग्रु (मीठा सहजन) का प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद है ।

ऋग्वेद में शिग्रु का और अथर्ववेद में गुल्गुलु (गूगल) का उल्लेख है ।[५६] ये दोनों विद्रधि के लिए बहुत उपयोगी हैं । (देखो शब्द गुल्गुलु ८५ और शिग्रु २४२) ।

अथर्ववेद के तीन मन्त्रों में विद्रध (विद्रधि, फोड़ा) , बलास और विसर्प रोगों की चिकित्सा चीपुद्रु (चीड़) बताया गया है । चीड़ को आँख, कान और हृदय के रोगों के लिए बहुत लाभकारी कहा गया है ।[६०]

यजुर्वेद में बदर (बेर) का ओषधि के रूप में उल्लेख है ।[६१] पाश्चात्त्य मतानुसार सिल पर पिसे बेर के पत्ते के प्रलेप के कच्चा फोड़ा पक जाता है ।[६२] अथर्ववेद में साल या शाल (शाखू) वृक्ष का उल्लेख है ।[६३] इसके सार को गोंद या राल कहते हैं । इसमें ओषधि के गुण हैं । यह विद्रधि (Ulcer), कर्णरोग, योनिरोग, कोढ़, विष और व्रण का नाशक है । यह चर्मरोगों में भी प्रयुक्त होता है ।[६४]

**३४. शूल (दर्द)**—अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ) ओषधि का बहुत महत्त्व वर्णित है। यह हिमालय पर्वत पर सोम ओषधि के समीप ही होता है। इसे सिरदर्द, आँखों की पीडा और शरीर के सभी प्रकार के दर्द को नष्ट करने वाला बताया गया है।[६५] पैप्पलाद संहिता में कूठ को शूलहर और विषघ्न कहा गया है।[६६] केशवपद्धति में कहा गया है कि कूठ के चूर्ण को मक्खन में मिलाकर लेप करने से सर्वांगवेदना अर्थात् सारे शरीर में दर्द, सिर के रोग, राजयक्ष्मा और कुष्ठ रोग में विशेष लाभ होता है।[६७] डॉ० खोरी ने पाश्चात्त्य डॉक्टरों का मत प्रस्तुत किया है कि गुलाब जल में मिलाया हुआ कूठ का लेप (मलहम) हाथ, पैर और पेट के सूजन में तथा शिरोरोग में प्रयुक्त होता है। इसको पीस कर जल में लोशन बनाकर लगाने से अंगों में शीतलता आ जाती है। कूठ का मलहम घाव, क्षत आदि के लिए हितकर है। पुराने चर्मरोगों में भी इसका प्रयोग होता है।[६८]

अथर्ववेद आदि संहिताओं में पीतुदारु या पूतुद्रु (देवदारु) का उल्लेख है।[६९] इसे पीतदारु, पूतद्रु आदि भी कहते हैं। देवदार को शोथ (सूजन), अश्मरी (पथरी) आदि मूत्रपथ-संबन्धी पीडाओं में सेव्य बताया गया है। देवदार का क्वाथ गोनोरिया, सिफिलिस और गठिया के सेव्य है। इसका तेल रसायन है। यह चोट, घाव, पुराने चर्मरोगों में प्रयुक्त होता है।[७०]

**३५. दाह (जलन)**—अथर्ववेद में पूतुद्रु (देवदार) और चीपुद्रु (चीड़) का उल्लेख है।[७१] देवदार का तेल सूजन, जलन और चर्मरोगों में लाभप्रद है। चीड़ का गोंद (लीसा) मलहम का काम देता है। यह सूजन, जलन, चर्मरोगों में प्रयुक्त होता है। चीड़ का काढ़ा जलनयुक्त सूजन मे दिया जाता है।[७२]

अथर्ववेद आदि में शर (सरकंडा) और शाण्डदूर्वा (बड़ी दूब) का उल्लेख है।[७३] इनका लेप जलन को शान्त करता है। ये दोनों मूत्रकारक हैं, अतः मूत्रकृच्छ्र (पेशाब रुकना) से होने वाली जलन को भी शान्त करते हैं। (देखो शब्द २३५, २३६)

**३६. आशरीक, अंगशूल (देह में दर्द)**—अथर्ववेद में आशरीक (अंगशूल) और विशरीक (पेचिश) रोगों का उल्लेख है। इन दोनों रोगों की चिकित्सा जंगिड मणि बतायी गयी है।[७४] दारिल और प्रो० कैलण्ड जंगिड का अर्थ अर्जुन वृक्ष लेते हैं। अंगशूल, रक्तस्राव और अस्थिभंग में अर्जुन की छाल पीसकर लगाते हैं।

अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ) ओषधि का उल्लेख है।[७५] केशवपद्धति में उल्लेख है कि कूठ के चूर्ण को मक्खन में मिलाकर लेप करने से सारे शरीर की वेदना शान्त होती है। साथ ही शिरोरोग, राजयक्ष्मा और कुष्ठ में भी इससे लाभ होता है।[७६]

**३७. अस्थिभंग-चिकित्सा**—अस्थियों के टूट जाने पर उसकी चिकित्सा का उल्लेख वेदों में मिलता है। इसका वर्णन शल्य-चिकित्सा प्रकरण में किया गया

है । अथर्ववेद में टूटी हुई हड्डी को यथास्थान बैठाने और उसे स्थिर करने का उल्लेख मिलता है । रोहणी ओषधि टूटी हुई हड्डी को जोड़ती है । वह जोड़ से जोड़ को, मज्जा से मज्जा को ठीक मिला देती है । इस प्रकार वह अंग पूर्णतया ठीक हो जाता है ।[७७]

अथर्ववेद में अरुन्धती का उल्लेख है ।[७८] यह अरु (व्रण, घाव) को ठीक करती है, अतः इसे अरुन्धती कहते हैं । यह लाक्षा (राल, गोंद) अर्थ में है । यह टूटे हुए अंगों को जोड़कर सुदृढ़ करती है । यह पलाश आदि वृक्षों से निकलने वाली लाक्षा (गोंद) है ।[७९] इसको ही लाक्षा, सिलाची, स्परणी, निष्कृति कहते हैं ।[८०] केशवपद्धति में शस्त्राघात, रक्तस्राव और हड्डी टूटने में लाक्षा के जल से सेचन का विधान है ।[८१] (देखो शब्द अरुन्धती १५, लाक्षा १६६, सिलाची २४३)

यजुर्वेद की काठकसंहिता और अथर्ववेद में अर्जुन वृक्ष का उल्लेख है ।[८२] अस्थिभंग और रक्तस्राव में अर्जुन की छाल को पीसकर उसका लेप करना चाहिए ।[८३]

प्रियंगु (कंगुनी, कंगनी) धान्य का यजुर्वेद में उल्लेख है ।[८४] यह काली, लाल सफेद और पीली चार प्रकार की होती है । इनमें पीली कंगुनी श्रेष्ठ है । यह भग्नसंधानकारक अर्थात् टूटे हुए अंग को जोड़ने वाली है । यह घोड़ों के लिए बहुत हितकारी है ।[८५]

## (छ) सिर, आँख, नाक, कान आदि के रोग

**३८. शीर्षक्ति, शिरोरोग (सिरदर्द आदि)**—अथर्ववेद में सिर के रोगों के लिए शीर्षक्ति, शीर्षामय और शीर्षण्य शब्द हैं ।[१] उदय होते हुए सूर्य की किरणों को छाती पर लेना और धूप का सेवन करना सिर की सभी बीमारियों के लिए उत्कृष्ट ओषधि बताया गया है । इससे सिर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ।[२]

एक अन्य मंत्र में शिरोरोग, कास (खांसी) आदि को दूर करने के लिए तीन उपाय बताए गए हैं:—सूर्यकिरण-चिकित्सा, ओषधि-चिकित्सा और पर्वत पर रहना । नंगे शरीर पर सूर्य की किरणों को लेना, सूर्य की किरणों से शरीर को तपाना एवं धूप-सेवन (Sun-bath) से खांसी, दमा, क्षयरोग और चर्मरोग होते ही नहीं है । उदय होते हुए सूर्य की किरणों का सेवन सर्वोत्तम ओषधि है । यह शरीर के सभी रोगों को नष्ट करता है । ओषधि-सेवन और वृक्षों के नीचे रहना सिरदर्द आदि के लिए लाभप्रद है । पर्वतों पर शुद्ध वायु में रहना और शुद्ध वायु का सेवन करना भी शिरोरोग आदि के लिए विशेष लाभप्रद है ।[३]

अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ) ओषधि का बहुत महत्व वर्णित है ।[४] इसको विश्वभषेज

अर्थात् सर्वरोग-चिकित्सा कहा गया है। यह सिर, आँख और शरीर के अन्य रोगों को नष्ट करता है।[५]

अथर्ववेद और पैप्पलाद संहिता में क्षेत्रियनाशनी वीरुत् (लता) का उल्लेख है।[६] यह आनुवंशिक रोगों के अतिरिक्त सिर के रोग, पीलिया और हृदय के रोगों के लिए लाभप्रद है।[७]

शांखायन गृह्यसूत्र में मधूक (महुआ) का उल्लेख है।[८] महुए का तेल सिरदर्द, चोट और चर्मरोगों में लाभकारी है।[९]

**३६. केशरोग, केशवर्धनी, केशदृंहण**—अथर्ववेद के दो सूक्तों में नितत्नी (मकोय) ओषधि का वर्णन है।[१०] इसे केशरोगों की चिकित्सा बताया है। यह बालों को बढ़ाती है और उनकी जड़ मजबूत करती है। जहाँ बाल नहीं हैं, वहाँ नए बाल उगाती है।[११] देवी और चुपुणीका इसके अन्य नाम हैं। यह भूमि के नीचे फैलने वाली ओषधि है। सायण ने इसका अर्थ किया है—न्यक्प्रसरणशीला ओषधिः, काकमाचीप्रमृति ओषधिः। काकमाची मकोय को कहते हैं। इसका लैटिन नाम सोलेनम निग्रम (Solanum Nigrum) है। कौशिकसूत्र का कथन है कि बालों का झड़ना रोकने के लिए मकोय को भृंगराज के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाता है।[१२] भावप्रकाश के अनुसार भृंगराज (भांगरा) बालों के लिए लाभप्रद है। सफेद बालों को काला करने से लिए भृंगराज तेल का प्रयोग होता है।[१३]

भावप्रकाश में मकोय को रसायन बताया गया है। यह हृदयरोगों को, सूजन, प्रमेह, हिचकी और वमन रोगों को नष्ट करती है।[१४] अथर्ववेद का कथन है कि नितत्नी के प्रयोग से बाल झड़ने बन्द हो जाते हैं, गंजापन समाप्त हो जाता है, बाल बहुत शीघ्र बढ़ते हैं और खूब लम्बे हो जाते हैं, बालों की जड़ मजबूत हो जाती है, सफेद बाल काले हो जाते हैं और केशरोग दूर हो जाते हैं।[१५]

अथर्ववेद में केशवर्धनी और केशदृंहणी ओषधियों का उल्लेख है।[१६] ये दोनों पर्यायवाची हैं। केशववर्धनी का अर्थ है बालों को बढ़ाने वाली और केशदृंहणी का अर्थ है बालों को मजबूत करने वाली। यह नितत्नी ओषधि ही है। पैप्पलादसंहिता में केशवर्धनी को बाल बढ़ाने के अतिरिक्त पलित (बालों का सफेद होना), शीर्षरोग, खालित्य (गंजापन), जायान्य (छूतरोग) और उदर रोगों में भी उपयोगी बताया है।[१७]

अथर्ववेद के एक मंत्र में उत्तम भूमि की त्वचा (मिट्टी) को बालों के लिए भेषज बताया गया है।[१८] धन्वन्तरि निघण्टु में सौराष्ट्र मृत्तिका (सोरठ की मिट्टी) या गोपीचन्दन को बालों के लिए हितकर कहा गया है। यह बाल झड़ने को रोकता है। संभवतः वेदमन्त्र का गोपीचन्दन से अभिप्राय है।

अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ) ओषधि को सिर के सभी रोगों के लिए उपयोगी बताया गया है। यह आँख को रोगों और चर्मरोगों के लिएं भी लाभप्रद है।[१६]

अथर्ववेद में शमी वृक्ष का उल्लेख है और उसे बालों के लिए हितकर बताया गया है।[२०] सामान्यतया शमी वृक्ष का अर्थ सफेद कीकर या छोकर वृक्ष अर्थ लिया जाता है। परन्तु शमी की विशेषता बतायी गयी है कि यह बालों को नष्ट करता है। इसके क्षार को हरताल के साथ लगाने से बाल झड़ जाते हैं, अतः इसे केशहन्त्री कहते हैं।[२१] ऐसा प्रतीत होता है कि अथर्ववेद में वर्णित शमी वृक्ष कोई अन्य वृक्ष है, जो बालों के लिए विशेष हितकर होता है। इसके पत्ते बड़े होते हैं और यह वर्षा ऋतु में बढ़ता है। इसको ऋतावरी भी कहा हैं।[२२]

पैप्पलादसंहिता में क्षेत्रियनाशनी वीरुत् (लता) को आनुवंशिक रोगों को दूर करने के अतिरिक्त केशवर्धक, हृदयशूलहर, शीर्षरोगनाशक और हरिमा (पीलिया) रोग में लाभप्रद बताया गया है।[२३]

अथर्ववेद में जीवन्ती ओषधि का उल्लेख है।[२४] यह पाटा या पाठा (पाढ़) ओषधि है। केशवपद्धति में उल्लेख है कि इसके फल का मणि बांधने से केशवृद्धि होती है।[२५]

अथर्ववेद में तिल का उल्लेख है।[२६] केशवपद्धति का कथन है कि बाल बढ़ाने के लिए, बाल मजबूत करने के लिए और गंजापन दूर करने के लिए काले अन्न, जैसे काला तिल, काली उड़द आदि, का सेवन करना चाहिए।[२७]

ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि में विभीदक (बहेड़ा) का उल्लेख है।[२८] यह बालों को बढ़ाता है, नेत्रों के लिए हितकर है और स्वरभेद को नष्ट करता है।[२९]

**४०. बाल काला करना**—अथर्ववेद में श्यामा और सरूपंकरणी ओषधियों का उल्लेख है।[३०] श्यामा को ही सरूपंकरणी भी कहते हैं। यह श्वित्र (श्वेत कुष्ठ) और पलित (बालों की सफेदी) को दूर करके उन्हें काला बना देती है। यह संभवतः भृंगराज (भांगरा) या नीली ओषधि है।(देखो शब्द श्यामा २४६, सरूपंकरणी २५८)

**४१. नेत्ररोग-चिकित्सा**—अथर्ववेद में नेत्ररोगों की चिकित्सा के लिए अनेक ओषधियों का वर्णन है। अथर्ववेद का कथन है कि नेत्ररोगों के लिए जल महौषधि है। यह आँख, एड़ी और पैर के पंजों के रोगों के लिए भी बहुत उपयोगी है। जल व्याधि दूर करने वाली ओषधियों में सर्वश्रेष्ठ है।[३१] नेत्ररोगों को दूर करने एवं नेत्रशक्ति बढ़ाने के लिए जल-चिकित्सा की कुछ विधियां ये हैं—१. प्रातःकाल शीतल जल से आँखों पर १ या २ मिनट तक छींटे देना। २. स्नान से पूर्व चौड़े जलपात्र

में ४-५ बार आँखों को पूरा डुबोना । इस समय मुँह में पानी भर लें । यह क्रिया अन्य समय भी की जा सकती है । ३. गुलाबी फिटकरी के पानी से प्रतिदिन आँख धोना । ४. जलनेति क्रिया करना । ५. ओस पड़ी हुई घास पर नंगे पैर घूमना । गुलाबी फिटकिरी के पानी से प्रतिदिन आँख धोने से आँख की कोई बीमारी नहीं होने पाती और नेत्रज्योति बढ़ती है । पुरानी आँख की बीमारियों को भी इससे लाभ होता है । इससे नेत्रों में धुंधलापन, जलन, पीडा, नेत्रस्राव और मन्ददृष्टि आदि का होना ठीक होता है ।

अथर्ववेद के तीन सूक्तों में आञ्जन का बहुत गुणगान है ।[३२] यह खनिज और वृक्ष दोनों हैं । यह त्रिककुद् पर्वत पर तथा यमुना-प्रदेश में होता है, अतः इसे त्रैककुद और यामुन अंजन कहते हैं ।[३३] अथर्ववेद में इसे ज्वर, पीलिया धातुरोग, हृदयरोग, अंगभेद और छूतरोग में लाभप्रद बताया है ।[३४] पैप्पलादसंहिता में इसे नेत्रज्योतिवर्धक और आनुवंशिक रोगों का नाशक कहा गया है ।[३५] अथर्ववेद में इसे आयु का रक्षक और पुरुष का जीवन एवं प्राणप्रद कहा गया है ।[३६]

त्रिककुद् पर्वत से निकलने वाला यह त्रैककुद अंजन चौगुना अधिक लाभ देता है ।[३७] यह सुलेमानी सुरमा कहा जाता है । इसको ही सौवीरांजन कहते हैं । भावप्रकाश में अंजन (सुरमा) के दो भेद हैं—स्रोतोऽञ्जन और सौवीराञ्जन । काले सुरमे को स्रोतोऽञ्जन और सफेद सुरमे को सौवीराञ्जन । दोनों के गुण समान हैं । यह नेत्रों के लिए हितकारी और शीतल है । यह क्षय, कोढ़, विष और रक्तविकार को नष्ट करता है ।[३८]

अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ) ओषधि का उल्लेख है और इसे नेत्ररोगों के लिए विशेष लाभप्रद बताया गया है ।[३९] अथर्ववेद के एक सूक्त में एक दिव्य ओषधि का नाम सुपर्ण की कनीनिका दिया है और इसके प्रयोग से दिव्य दृष्टि की प्राप्ति का उल्लेख किया है ।[४०] वैद्यक शब्दसिन्धु में सुपर्ण का अर्थ कमल दिया है ।[४१] कमल की कनीनिका (तारा, पुतली) कमल का मध्यभाग है, अर्थात् कमल का पराग । सफेद कमल को नेत्र के लिए लाभप्रद माना गया है । सफेद कमल के पराग को आँख में लगाने वाले सुरमे में डालने से दिव्य दृष्टि पाने का उल्लेख भी मिलता है ।[४२]

अथर्ववेद आदि में इन ओषधियों को भी नेत्ररोगों के लिए हितकर बताया गया है । आवयु (सरसों, शब्द ३५), विभीदक (बहेड़ा, १६५), मुंज (मूंज, १८५), विहह्ल (सरसों, २१५), शतवार (शतावर, २३१), शर (सरकंडा, २३५), शालि (लाल चावल, २३७), सर्षप (सरसों, २५६), सिलाञ्जाला (सस्यमंजरी, २७१), स्रेकपर्ण (कनेर, २७६) ।

**४२. विलोहित (नकसीर)**—अथर्ववेद में कर्णशूल के साथ विलोहित का भी उल्लेख है ।[४३] यह नासागत रक्त-पित्त या नकसीर है। इसका इलाज सूर्यकिरण-चिकित्सा बताया गया है । उदय होते हुए सूर्य की किरणों का प्रतिदिन सेवन करने से यह रोग समाप्त हो जाता है ।[४४] ऋग्वेद आदि में दूर्वा (दूब) का उल्लेख है । संकोचक होने से यह नकसीर और शस्त्रादि के घाव से होने वाले रक्तस्राव को रोकता है ।[४५] (देखो शब्द ११७) । ऋग्वेद में पाकदूर्वा (परिपक्व दूर्वा या दूब) और अथर्ववेद में शाण्डदूर्वा (बड़ी दूब) का उल्लेख है ।[४६] इन्हें नकसीर को ओषधि बताया गया है । (देखो शब्द १३५ और २३६)

**४३. दन्तरोग, दन्तशूल (दाँत दर्द)**—अथर्ववेद में तिल (तिल) का उल्लेख है ।[४७] यह तीन प्रकार का होता है— सफेद, काला, लाल । काला तिल सर्वोत्तम है । तिल का तेल दांतों को उत्तम बनाता है और बालों के लिए हितकर है ।[४८] अथर्ववेद में न्यग्रोध और वट (वट या बड़) वृक्ष का उल्लेख है ।[४९] इसका दूध दांत दर्द के लिए महौषधि है । हाथ पैरों के फटने में इसके दूध का प्रलेप हितकर है ।[५०]

मैत्रायणी संहिता और यजुर्वेद में उपवाक और उपवाका (इन्द्रजौ, कुटज, कुटजबीज) का उल्लेख है और इसे भेषज बताया है ।[५१] यह दो प्रकार का होता है:—सित (सफेद) कुटज और असित (काला) कुटज । काले कुटज के पत्ते को चबाने से दांतदर्द ठीक हो जाता है ।[५२] ऋग्वेद में शिग्रु (सहजन, सहिंजन) का उल्लेख है ।[५३] जीरा के साथ सहिंजन का प्रलेप दातंदर्द को ठीक करता है और दांत के कीड़ों को नष्ट करता है ।[५४]

**४४. कर्णशूल (कान दर्द)**—अथर्ववेद में कर्णशूल की ओषधि सूर्यकिरण-चिकित्सा बतायी है ।[५५] उदय होते हुए सूर्य की किरणों को छाती पर लेने से कान दर्द, सिरदर्द आदि रोग नष्ट होते हैं ।[५६] ऋग्वेद में शिग्रु (सहजन, सहिंजन) का उल्लेख है ।[५७] इसके गोंद को मीठा तेल (सरसों का तेल) के साथ कान में डालने से कान दर्द ठीक होता है ।[५८]

मैत्रायणी संहिता में भूर्ज (भूर्ज, भोज, भोजपत्र) वृक्ष का उल्लेख है ।[५९] इसकी छाल को भूर्जपत्र (भोजपत्र) कहते हैं । यह कर्णरोग, पित्त, रक्तविकार और विष का नाशक है ।[६०] भावप्रकाश निघण्टु का कथन है कि भृंगराज (भांगरा) का रस बूंद-बूंद करके कान में डालने से कर्णशूल शान्त होता है ।[६१]

**४५. मुखरोग**—ऋग्वेद में हारिद्रव (हरिताल, हरताल) का उल्लेख है ।[६२] सायण ने हारिद्रव का अर्थ हरताल लिया है । शुद्ध हरताल मुख के रोग, खुजली, कोढ़ एवं व्रण का नाशक है ।[६३] हरताल संखिया और गंधक का यौगिक रूप है ।

इसमें २ भाग संखिया और ३ भाग गन्धक का होता है। भूगर्भ में बहुत दिनों तक पास पास संखिया और गन्धक की खानों के रहने से यह स्वयं बन जाता है।

**४६. अपचित्, गण्डमाला, ग्लौ, गलुन्त (अपची, गंडमाला)**—अथर्ववेद के तीन सूक्तों में अपचित् और गंडमाला की चिकित्सा का उल्लेख है।[६४] अपचित् अपची या गंडमाला रोग है। इसे अपचित, रामायणी, ग्लौ, गलुन्त भी कहते हैं।[६५] इस रोग के स्थान बताए गये हैं —ग्रीवा (गर्दन), उपपक्ष्य (दोनों बगल या कांख), विजामन् (उरुसंधि, जांघ की संधि या जोड़)।[६६]

यह रोग क्षय (राजयक्ष्मा) रोग का पूर्वरूप है। इस रोग में गले आदि में छोटी गिल्टियां निकल आती हैं। इन्हें कण्ठमाला भी कहते हैं। ठीक चिकित्सा न होने पर यह रोग क्षय रोग में परिवर्तित हो जाता है। इस रोग के बीज पसलियों और हड्डियों को कमजोर करते हैं। ये हाथ-पैर के तलवों में गर्मी (जलन) पैदा करते हैं और पीठ में दर्द पैदा करते हैं।[६७] गंडमाला के विषय में कहा गया है कि यह छूत की बीमारी है।यह पक्षी की तरह उड़कर दूसरे व्यक्ति को लग जाती है।[६८] मुनि नामक ओषधि के मूल (जड़) से यह गंडमाला दूर होती है।[६६] अगस्त्य वृक्ष (अगस्त, अगस्तिया, हथिया) को मुनि द्रुम या मुनि वृक्ष कहते हैं।[७०] अगस्त की छाल और धतूरा के पत्तों को बराबर लेकर पीस कर लेप करने से शोथ (सूजन) को बहुत फायदा होता है।[७१] राजनिघण्टु में भी अगस्त्य वृक्ष को मुनिद्रुम और व्रणारि कहा है।[७२] व्रणारि का अभिप्राय है कि यह गलगण्ड गण्डमाला आदि रोगों को नष्ट करता है। यह व्रण अर्थात् घावों का अरि (नाशक) है। राजनिघण्टु में ही अगस्त्य को शीतल और गौल्य अर्थात् गोलाकार गंडमाला की ग्रन्थियों के लिए लाभकर कहा गया है।[७३]

'वैद्यक शब्दसिन्धु' मे पलाश (ढाक) को मुनि कहा है। भावप्रकाश निघण्टु में इसे ब्रह्मवृक्ष कहा है। ढाक के फल बवासीर, कृमि,वातरक्त और कुष्ठ को नष्ट करते हैं। पाश्चात्त्य मतानुसार ढाक के पत्तों को गर्म करके प्रलेप करने से व्रण और शोथ (सूजन) ठीक होता है।[७४] भैषज्य रत्नावली में कहा गया है कि पलाश (ढाक) की जड़ को चावल के पानी के साथ पीसकर लेप करने से गलगंड या गंडमाला का रोग नष्ट होता है।[७५]

अथर्ववेद का कथन है कि गंडमाला पर नमक लगाने से वह शीघ्र गलकर बह जाती है और साफ हो जाती है।[७६] अथर्ववेद में यह भी उल्लेख है कि यज्ञ का धूम गण्डमाला रोग को ठीक करता है।[७७]

अथर्ववेद में प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से उल्लेख है कि सूर्य की किरणें इस रोग को ठीक करती हैं। चन्द्रमा की किरणें भी इस रोग को नष्ट करती हैं।[७८]

सूर्योदय के समय की अवरक्त (हलकी लाल या नारंगी ) किरणें गंडमाला के लिए लाभप्रद हैं । इसी प्रकार चन्द्रमा की शीतल किरणें भी गंडमाला को लाभ पहुँचाती हैं ।

अथर्ववेद का कथन है कि ५५ गंडमालाएं गले से ऊपर की नसों में व्याप्त हैं । ७७ गण्डमालाएं ग्रीवा की नाड़ियों में व्याप्त हैं और ९९ गण्डमालाएं स्कन्ध (कन्धा) की नाड़ियों में पहुँची हुई हैं ।[७९] अथर्ववेद में अपची के स्थान ग्रैव्य (ग्रीवा में होने वाले), उपपक्ष्य (कक्ष आ बगल में होने वाले) और विजामन् (वंक्षण या जाँघ के जोड़पर होने वाले) बताए हैं ।[८०] अथर्ववेद के एक सूक्त में अपची के ८ भेदों का उल्लेख है । ये हैं—१. एनी, २. श्येनी, ३. कृष्णा, ४. रोहिणी, ५. असूतिका, ६. रामायणी, ७. ग्लौः, ८. गलुन्त । ये भेद गंडों के रंग, फटना या न फटना, बहना या न बहना के आधार पर हैं ।[८१]

अष्टांगहृदय में अपचीचिकित्सा के विषय में लिखा है कि न पकी हुई ग्रन्थियों पर सर्पगन्धा, सेंधा नमक और सोंठ का लेप करे । जो गाठें कठिन हों, उनको नमक की पोटली से सेंके । कचनार की छाल एक या आधा पल गरम पानी से पीने से गंडमाला नष्ट होती है ।[८२]

अथर्ववेद में अपामार्ग (चिरचिटा, लटजीरा) का उल्लेख है ।[८३] यह अपची रोग, खाज, हृदय रोग, बवासीर, शूल और उदर रोगों को नष्ट करता है ।[८४] अथर्ववेद में बभ्रु (सहस्रपर्णी, शंखपुष्पी) का उल्लेख है ।[८५] इसका ताजा रस गंडमाला, उन्माद, दुर्बलता और ग्रहणी में लाभप्रद है ।[८६]

अथर्ववेद में मण्डूकी (मण्डूकपर्णी) ओषधि का उल्लेख है ।[८७] यह ब्राह्मी ओषधि का ही एक भेद है । यह रसायन है । इसका मूल उष्ण और रसायन होने से खसरा आदि चर्मरोग, गलगंड, गंडमाला, खुजली आदि में व्यवहृत होता है ।[८८] शांखायन गृह्यसूत्र में मधूक (महुआ) का उल्लेख है ।[८९] महुवे के फूल का रस रसायन है । यह गंडमाला और वातरोगों में बहुत लाभकर है ।[९०]

## (ज) हृदय, नाभि, उदर आदि के रोग

**४७. हृदय रोग**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में हृदय रोगों के लिए कई नाम आए हैं—हृदयामय (हृदय के रोग), हृद्द्योत एवं हृद्-द्योतन (हृदय-शूल, हृदय की टीस), हृद्रोग (हृदय के रोग) ।[१] हृदय में जलन, कम्पन और शूल होना हृद्रोग या हृदयामय है ।

सुश्रुत का कथन है कि मल-मूत्र आदि वेगों के रोकने से, उष्ण और रूखे अन्न के अतिमात्र उपयोग करने से, अध्यशन, अजीर्ण और विरुद्ध भोजन करने से विकृत

हुए दोष हृदय में जाकर वहाँ रस (रक्त) को दूषित करके हृदय में बाधा (विकार) उत्पन्न कर देते हैं । इसी को हृदय रोग कहते हैं ।[२]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में हृदय रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा दी गयी है । इनमें सूर्यकिरण-चिकित्सा, चन्द्रकिरण-चिकित्सा और जल-चिकित्सा मुख्य हैं । अथर्ववेद का कथन है कि उदय होते हुए सूर्य की अवरक्त या नारंगी किरणें हृदय के रोगों को तथा पीलिया या पाण्डु रोग को दूर करती हैं ।[३] ऋग्वेद का भी कथन है कि प्रातः उदय होते हुए सूर्य की किरणें हृदय-रोगों को तथा पाण्डुरोग को नष्ट करती हैं ।[४] उदय होते हुए सूर्य की किरणों का इतना अधिक माहात्म्य अथर्ववेद मे वर्णन किया गया है कि शरीर के प्रायः सभी रोगों की यह अमोघ चिकित्सा है ।[५] प्रश्न उपनिषद् में भी सूर्य को जीव-जगत् का प्राण कहा गया है ।[६] सूर्य जीवनी शक्ति देता है, शरीर के दूषित तत्त्वों को नष्ट करता है और शरीर को आरोग्य प्रदान करता है । सूर्यकिरण-चिकित्सा का ही एक विज्ञानसंमत प्रकार है—सूर्यस्नान या धूपस्नान (Sun-bath) । शरीर को जितना अधिक सूर्य की किरणों के संपर्क मे रखेंगे, उतनी अधिक जीवनी शक्ति प्राप्त होगी और शरीर रोगों से मुक्त होगा ।

सूर्यकिरण-चिकित्सा की संक्षिप्त विधि यह है—हृदय रोगी या पाण्डुरोग वाला व्यक्ति प्रातः उदय होते हुए सूर्य के संमुख कम से कम १५ मिनट बैठे । ग्रीष्म ऋतु में कपड़े उतार कर और शीत ऋतु में हलके कपड़े पहन कर बैठे । सूर्य की किरणों को सीधे छाती पर पड़ने दे । उस समय ओम् या गायत्री मंत्र का जप करता रहे । इससे हृदय की विकृतियां दूर होती हैं । नारंगी रंग की बोतल या सफेद रंग की बोतल पर नारंगी रंग का कागज लपेट कर उसमें पानी भरकर कम से कम ६ घंटे धूप में रखे और उस जल को दिन में ४-५ बार पीये । नारंगी रंग के कांच से भी छाती पर सूर्यकिरणें लेने से हृदय को लाभ होता है ।

पानी के स्थान पर नारंगी रंग की बोतल में दूध और चीनी आदि रखकर भी ओषधि तैयार की जाती है । चीनी आदि को ओषधि रूप में परिणत करने में ७ दिन या १ मास तक का समय लगता है, परन्तु उसका उपयोग भी उतने अधिक दिन हो सकता है ।

इसी प्रकार चन्द्र किरण-चिकित्सा का भी विधान है ।[७] चन्द्र-किरण-चिकित्सा में जल दूध एवं प्रलेप आदि चन्द्रमा की चांदनी में रात्रिभर रखा जाता है और तदनन्तर उसका उपयोग किया जाता है । चन्द्रमा की किरणों के प्रभाव से वह जल या लेप आदि शरीर के ज्ञान-तन्तुओं को शीतलता प्रदान करता है और शरीर के दोषों को दूर करके हृदय-रोग आदि का शमन करता है ।

अथर्ववेद में जल-चिकित्सा को हृदय-शूल (हृदय में टीस या चमक) की उत्तम

चिकित्सा बताया गया है।[८] यहाँ तक कहा गया है कि जल सर्वोत्तम ओषधि है। यह सारे दोषों को बाहर निकाल देती है।[९] जल का स्वभाव है-—ग्रन्थि आदि दोषों को ढीला करना और फिर उन्हें बाहर निकाल देना। यह रक्त आदि में विद्यमान अवरोधक तत्त्वों को शिथिल करके उन्हें शरीर से बाहर कर देता है। इसका परिणाम यह होता है कि हृदय में जाने वाला रक्त स्वाभाविक रूप से अबाध गति से ज़ाता है और हृदय-शूल समाप्त हो जाता है। इसके लिए कुछ विधियां ये हैं:— १. प्रतिदिन कम से कम २ या ३ लीटर पानी पीना। २. प्रातः उठते ही शौच आदि से पूर्व १ गिलास पानी पीना। यह पेट को स्वच्छ करता है। ३. रोग की अवस्था में उबाल कर रखे हुए गुनगुने पानी का सेवन। ४. शुद्ध गंगाजल या स्रोत का पानी अधिक लाभप्रद है। ५. सूर्य की किरणों में रखे हुए नारंगी रंग की बोतल के पानी का प्रयोग। यह पानी दिन में चार या पांच बार दवा के रूप मे लिया जाय। ६. तुलसी के ८-१० पत्ते डालकर उबाला हुआ पानी सभी रोगों में अत्यन्त लाभप्रद है। ७. जल जीवन है। शरीर में दो-तिहाई अंश जल है। शुद्ध जल पीने से शरीर के सभी कोश संतृप्त रहते हैं और ठीक कार्य करते हैं।

अथर्ववेद में मृग के सींग को आनुवंशिक हृदय रोगों का नाशक कहा गया है।[१०] मृग के सींग में ओषधि के गुण हैं। यह हृदय में विद्यमान अवरोधक गुच्छों या जालों को नष्ट करता है।[११] मृग के सींग को जल में घिसकर उसका जल पीना चाहिए और उसके सींग की भस्म को जल के साथ लेना चाहिए।

अथर्ववेद में कफज हृदयरोग के लिए बलास शब्द आया है। बलास का अर्थ है—बल अर्थात् शारीरिक शक्ति को नष्ट करने वाला रोग। बलास की चिकित्सा के लिए आंजन मणि, जंगिड मणि और वरण मणि का उल्लेख है। आजंन मणि हृदय के रोगों को दूर करती है।[१२] यह ज्वर और सर्पविष की भी चिकित्सा है। जंगिड मणि के विषय में कहा गया है कि यह बलास, पृष्ट्यामय (पसली का दर्द) और साल भर रहने वाले ज्वर को नष्ट करता है।[१३] इसकी मणि भी धारण की जाती है। वरण मणि को राजयक्ष्मा (T. B.) रोग को नष्ट करने वाला बताया गया है।[१४] इसको वरुण या बरना वृक्ष कहते हैं।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में कतिपय ओषधियों का उल्लेख है। ये ओषधियाँ हृदयरोगों को दूर करती हैं। ये हैं:—

अर्जुन (अर्जुन वृक्ष, देखो शब्द १८), क्षेत्रियनाशनी (एक लता, शब्द ७६), चीपुद्रु (चीड़, शब्द ६०), जम्बीर (जम्बीरी नीबू, शब्द ६३), बलासनाशनी, बलासभेषज (शब्द १६३), वृष (वासा, शब्द २१६), शिग्रु (सहजन, शब्द २४२),

सोम (सोमलता, शब्द २७५), स्रेकपर्ण (करवीर या कनेर, शब्द २७६), हरिद्रु, हारिद्रव (देवदार, शब्द २८३)।

**४८. पृष्ट्यामय (पसली का दर्द, पीठ दर्द)**—अथर्ववदे में पीठ के दर्द और पसली के दर्द के लिए पृष्ट्यामय शब्द आया है। इस रोग की चिकित्सा जंगिड मणि बतायी गयी है।[१५] प्रो० कैलण्ड जंगिड का अर्थ अर्जुन वृक्ष लेते हैं। इसके मणिधारण का विधान है।

**४९. उदरशूल, उदरदार (पेट दर्द)**—अथर्ववेद में तीक्ष्ण उदरशूल के लिए उदरदार शब्द आया है।[१६] अथर्ववेद के तीन सूक्तों में अपामार्ग (चिरचिटा, लटजीरा) का बहुत गुणगान है।[१७] इसको भस्मक (भूख अधिक लगना), तृषा (अधिक प्यास लगना), इन्द्रिय-दुर्बलता आदि रोगों की चिकित्सा बताया गया है। भावप्रकाश के अनुसार यह शूल (तीक्ष्ण दर्द), उदररोग, हृदय रोग और गंडमाला को नष्ट करता है।[१८]

अथर्ववेद में पुनर्नवा का उल्लेख है।[१९] श्वेत पुनर्नवा उदररोग, पाण्डुरोग और सूजन को नष्ट करती है।[२०] अथर्वपरिशिष्ट में वचा (वचा) का उल्लेख है।[२१] यह कब्ज, अफारा (पेट फूलना) और शूल को नष्ट करती है। अजीर्ण के साथ उदराध्मान (पेट फूलना) में वच लाभदायक है। बच्चों को उदरशूल में वच का चूर्ण बहुत थोड़ी मात्रा में देना चाहिए। बालवच चबाने से बच्चों का दांत का चबाना बन्द हो जाता है और दांत शीघ्र निकलते हैं। बच्चों के अजीर्ण और पेट फूलने में नाभि पर इसका लेप लाभकारी है।[२२]

**५०. जलोदर, अप्वा रोग**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में अप्वा रोग का उल्लेख है।[२३] यह जलोदर (Dropsy) रोग है। इसमें पेट में जल हो जाता है। यह हृदय रोग का परिणाम है। अथर्ववेद का कथन है कि बहुत अधिक असत्य-भाषण एवं दुराचार से यह जलोदर रोग होता है।[२४]

अथर्ववेद में अपामार्ग (चिरचिटा) का उल्लेख है।[२५] पाश्चात्त्य मत है कि अपामार्ग का क्षार जलोदर, शोथ (सूजन) और गलगण्ड में विशेष लाभप्रद है।[२६]

**५१. रेचक, मलभेदक (अजीर्ण या कब्ज हटाना)**—अजीर्ण या कब्ज को दूर करने वाली ओषधियों को रेचक या मलभेदक कहते हैं। अथर्ववेद में अनेक ओषधियों का उल्लेख हैं जो कब्ज को दूर करती हैं। ये पेट के मल को बाहर निकालती हैं और पेट की शुद्धि करती हैं। ये ओषधियां हैं:—विभीदक या अक्ष (बहेड़ा, शब्द १ और १६५), अपामार्ग (चिरचिटा, शब्द ६), अर्क (आक, मदार, शब्द १७), करीर (करीर, करील, शब्द ५७), कर्कन्धु (बेर, शब्द ५८), बिल्व (बेल, शब्द १६६), पीलु (पीलु, शब्द १४३), यवाष (जवासा, शब्द १६०)।

**५२. क्षुधामार या मन्दाग्नि रोग (भूख न लगना)**—अन्न ठीक न पचने के कारण मन्दाग्नि रोग होता है । कफज दोष के कारण यह रोग उत्पन्न होता है । अथर्ववेद में इस रोग को क्षुधामार (भूख का मरना, भूख न लगना) नाम दिया गया है ।[२७] इसकी चिकित्सा अपामार्ग (चिरचिटा) ओषधि बतायी है ।[२८] भावप्रकाश का भी कथन है कि यह पाचक, अग्नि-प्रदीपक, दस्तावर, कफ और उदर रोगों का नाशक है ।[२९] अपच या मन्दाग्नि का मुख्य कारण कफ की वृद्धि है । जाठराग्नि के प्रदीप्त होने पर मन्दाग्नि दोष स्वयं नष्ट हो जाता है । अथर्ववेद में कहा गया कि अपामार्ग ओषधि जहाँ होगी, वहाँ कोई भय नहीं हो सकता है ।[३०] अपामार्ग ओषधि एक तेजस्वी सेना के तुल्य रक्षा करती है ।[३१] यह ओषधियों में सर्वोत्तम है और रोगों पर विजय प्राप्त करती है ।[३२]

अथर्ववेद में अन्य कतिपय ओषधियों का उल्लेख है । ये ओषधियां मन्दाग्नि रोग को दूर करती हैं । ये हैं— तलाश या तलाशा (तालीश वृक्ष, शब्द ६८), पिप्पली (पीपर, शब्द १४०), पुनर्नवा (पुनर्नवा, शब्द १४५), मधूक (महुआ, शब्द १७८), वचा (वच, शब्द १६८), वातीकृतभेषजी (पीपर, शब्द २०३) ।

**५३. भस्मक रोग (भूख अधिक लगना)**—अथर्ववेद में क्षुधामार और तृष्णामार शब्दों का दो मंत्रों में इकट्ठे दो बार प्रयोग हुआ है । अतः ये दो अर्थों को प्रकट करते हैं:— क्षुधामार अर्थात् भूख मर जाना और भूख की अधिकता या तीक्ष्णाग्नि से मर जाना । तृष्णामार अर्थात् प्यास का मर जाना या न लगना और प्यास की अधिकता से मृत्यु । इन दोनों प्रकार के रोगों की चिकित्सा अपामार्ग (चिरचिटा) बतायी गयी है ।[३३] उदर की अग्नि के अधिक प्रदीप्त होने को भस्मक या तीक्ष्णाग्नि रोग कहते हैं । इसमें भूख आवश्यकता से अधिक लगती है और प्रतीति होती है कि भूख शान्त नहीं हुई । भावप्रकाश के अनुसार अपामार्ग सभी उदररोगों और हृदय-रोगों को दूर करता है ।[३४]

यजुर्वेद और अथर्ववेद में उदुम्बर (गूलर) का उल्लेख है ।[३५] इसको भी भस्मक रोग की चिकित्सा बताया गया है । यह वायुनाशक और पाचक है । आध्मान (पेट फूलना) को रोकता है ।[३६]

**५४. तृष्णा रोग (प्यास अधिक लगना)**—अथर्ववेद में तृष्णामार रोग का उल्लेख है ।[३७] इसका अर्थ है—प्यास अधिक लगना या अधिक प्यास से मर जाना । शरीर में पित्त का प्रकोप होने पर वायु ऊर्ध्वगत होकर तालु को प्रभावित करती है । इससे तृष्णा या तृषा (प्यास की अधिकता) रोग उत्पन्न होता है ।

अथर्ववेद में इसकी चिकित्सा अपामार्ग (चिरचिटा) ओषधि बतायी गयी है ।[३८]

इसमें अपामार्ग का मन्थ (काढ़ा) पीने से लाभ होता है । अपामार्ग पित्त के प्रभाव को शान्त करता है ।[३९]

अथर्ववेद आदि में इन ओषधियों का उल्लेख है । ये ओषधियां तृषा रोग को शान्त करती हैं । अवक या अवका (सेवार, शब्द संख्या २१), दूर्वा (दूब, शब्द ११७), पुण्डरीक (सफेद कमल, शब्द १४४), मधूक (महुआ, शब्द १७८), यव (जौ, शब्द १८८), वट (बड़, शब्द २००), शर (सरकंडा, शब्द २३५) ।

**५५. जम्भ रोग**—अथर्ववेद में जम्भ रोग का उल्लेख है । जम्भ रोग के दो अर्थ लिये गये हैं—१. जंभाई अधिक आना, २. दोनों जबड़ों का जुड़ जाना । ह्विटनी ने इसे जबड़ों का बन्द होना या शरीर में ऐंठन होना रोग माना है । मुख्यरूप से यह बच्चों में होने वाला रोग है । अथर्ववेद में इस रोग की चिकित्सा जंगिड मणि बतायी गयी है ।[४०]

**५६. मूत्ररोध और मूत्रकृच्छ्र रोग**—अथर्ववेद के प्रारम्भ में ही मूत्ररोध और मूत्रकृच्छ्र रोग की चिकित्सा का उल्लेख है ।[४१] शरीर के दोषों को बाहर निकालने की उत्तम विधि है—मूत्र का निर्बाध रूप से बाहर निकलना । शरीर के सारे विष मूत्र में एकत्र हो जाते हैं और वे मूत्र के साथ शरीर से बार हो जाते हैं । इस प्रकार शरीर नीरोग रहता है । जब मूत्र अन्दर रुक जाता है तो मूत्र का विष शरीर में फैल जाता है ओर वह अनेक रोगों को उत्पन्न करता है । पौरुष ग्रन्थि (Prostate glands) के बढ़ने से मूत्रमार्ग अवरुद्ध हो जाता है और मूत्र बाहर नहीं आता । इसे मूत्ररोध या मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ।

मूत्रकृच्छ्र भयंकर बीमारी है । इसकी तुरन्त चिकित्सा न होने पर मृत्यु का संकट रहता है । अतएव वेद में वृक्कों (दोनों मूत्राशयों, गुर्दों) को स्वच्छ रखने का विधान है ।[४२]

अथर्ववेद में मूत्ररोध को दूर करने के लिए चार प्रकार बताए हैं—१. ओषधि-चिकित्सा, २. शलाका-प्रयोग, ३. शल्य-चिकित्सा, ४. दैवी चिकित्सा ।

ओषधि-चिकित्सा के लिए उल्लेख है कि शर, मुञ्ज या तेजन (सरकंडा) का प्रयोग करे ।[४३] शर और तेजन सरकंडे के लिए हैं तथा मुंज मूंज के लिए है । ये तीनों शब्द मूंज के भी पर्याय हैं । भावप्रकाश में शर, तेजन या मुञ्ज को पर्यायवाची बताया है ।[४४] इसको मूंज, सरपत, सरकंडा या रामशर कहते हैं । इसमें लम्बी लम्बी सीकें निकलती हैं, इनको इषीका (सींक) कहते हैं । इनसे चटाइयां या पंखे बनते हैं । मूंज को मूत्रकृच्छ्र और नेत्ररोगों की चिकित्सा बताया गया है ।[४५] मूंज को घिसकर पीने से मूत्ररोध दूर होता है। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि मूंज का

छना हुआ पानी पीना चाहिए ।[४६] काठक संहिता का कथन है कि मूंज में बहुत शक्ति है ।[४७] यह बलदायक, पौष्टिक और वीर्यस्तम्भक है ।

मूत्ररोध को दूर करने का दूसरा प्रकार है—मूंज की इषीका (सींक) को मूत्रमार्ग में प्रविष्ट करना ।[४८] इस प्रकार मूत्र बाहर आ जाता है । अष्टांगहृदय की टीका और आयुर्वेदसंग्रह में उल्लेख है कि कपूर का चूर्ण मूंज या कुशा की सींक के द्वारा मूत्रनली या योनि में प्रविष्ट कराने से मूत्र बहुत सरलता से बाहर निकल आता है ।[४९]

अथर्ववेद में दो स्थानों पर इषीका (सींक) शब्द आया है ।[५०] इससे ज्ञात होता है कि मूत्ररोध आदि में इषीका का प्रयोग होता था । इसीका आधुनिक विकसित रूप लोहशलाका या वस्तियंत्र (Catheter, कैथेटर) है । यह यन्त्र आजकल रबर आदि का बना हुआ भी होता है । इसको मूत्रनली से ऊपर ले जाने पर रुका हुआ मूत्र बाहर आ जाता है ।

तीसरी विधि शल्य-चिकित्सा या आपरेशन है ।[५१] इसके द्वारा गवीनी (Uterus, यूटरस) या वृक्कों (गुर्दों, Kidney) में रुका हुआ मूत्र आपरेशन करके बाहर निकाला जाता है ।[५२] मंत्र में मेहन शब्द पौरुष ग्रन्थि (Prostate Gland) के आपरेशन का बोध कराता है ।[५३]

चतुर्थ विधि दैवी चिकित्सा है । अथर्ववेद में दैवी चिकित्सा में पर्जन्य ( मेघ, वर्षा), मित्र (प्राण), वरुण (जल), चन्द्र और सूर्य का उल्लेख है ।[५४] इन पांचों के लिए 'शतवृष्ण्यम्' विशेषण आया है, जिसका अर्थ है—सौ गुनी शक्ति वाला । इसका अभिप्राय यह है कि पर्जन्य आदि में अन्य ओषधिओं की अपेक्षा सौ गुनी अधिक शक्ति है, अतः ये सौ गुना अधिक लाभ भी देते हैं । इन पांचों मन्त्रों में कहा गया है—'तेना ते तन्वे शं करम्' अर्थात् पर्जन्य आदि के द्वारा तेरे शरीर को स्वास्थ्य प्रदान करता हूँ । पांचों मन्त्रों में कहा गया है कि 'बहिष्टे अस्तु बाल् इति' अर्थात् तेरे शरीर से सारे दोष बाहर हो जाएंगे ।[५५] ये पांच देव शरीर से इस प्रकार दोषों को निकाल देते हैं ।

**१. पर्जन्य**—वर्षा का जल सबसे शुद्ध होता है । इसका विधिपूर्वक पान करने से शरीर के सारे दोष मूत्र के द्वारा बाहर हो जाते हैं ।

**२. मित्र**—मित्र का अर्थ प्राण या प्राणशक्ति है । प्राणायाम के द्वारा शरीर की शुद्धि होती है । श्वास के द्वारा प्राणशक्ति जितनी अधिक शरीर में जाएगी, उतनी अधिक रक्तशुद्धि होगी । निःश्वास के द्वारा शरीर के दोष बार फेंके जाते हैं ।

**३. वरुण**—जल-देव है । जल हमारे शरीर की शुद्धि करता है और दोषों को मूत्ररूप में बाहर करता है । अतः कम से कम २ या ३ लीटर पानी दिन में अवश्य पीना चाहिए । जल-चिकित्सा शरीर के सभी रोगों को दूर करने का उत्तम उपाय है ।

**४. चन्द्र**—चन्द्रमा ओषधियों का स्वामी है । यह ओषधियों को शक्ति देता है । चन्द्रमा की किरणों में रखा हुआ जल या दूध आदि गुणकारी हो जाता है । उसका पान करना रोगों को दूर करता है ।

**५. सूर्य**—सूर्य-किरण-चिकित्सा सभी रोगों की सरल और अमोघ प्राकृतिक चिकित्सा है । सूर्य की किरणें शरीर के दोषों को जला देती हैं या पंसीने आदि के द्वारा बाहर निकाल देती हैं ।

इस प्रकार मूत्रकृच्छ्र या मूत्ररोध के लिए चार प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख है ।

अथर्ववेद आदि में मूत्रनाडी के शोधन और मूत्रकृच्छ्र या मूत्ररोध (मूत्र का रुकना) रोग को दूर करने के लिए उपयोगी अनेक ओषधियों का उल्लेख है । ये ओषधियां इस रोग के लिए विशेष लाभप्रद हैं:—

दर्भ (कुश, शब्द ११३), अपामार्ग (चिरचिटा, शब्द ६), मदुघ (मुलहठी, जेठीमध, शब्द १७३), किंशुक (पलाश, ढाक, शब्द ६३), कुश (कुशा या दर्भ, शब्द ६७), आस्रावभेषज (कुश, शब्द ३७), दूर्वा (दूब, शब्द ११७), पीतुदारु (देवदार, शब्द १४१), पुनर्नवा (पुनर्नवा, शब्द १४५), बिस (भिस, कमल की जड़, शब्द १६७), माष (उड़द, शब्द १८३), मुञ्ज (मूंज, शब्द १८५), यवाष (जवासा, शब्द १९०), वरण ( वरुण वृक्ष, शब्द २०१), वेतस (बेंत, शब्द २२१), शर (सरकंडा, मूंज, शब्द २३५), शाण्डदूर्वा (बड़ी दूब, शब्द २३६), शिग्रु (सहजन, शब्द २४२), सहदेवी (अरुन्धती, शब्द २६१), स्रेकपर्ण (कनेर, शब्द २७६) ।

कनेर की जड़ और मूलत्वक् (जड़ की छाल) दोनों ही मूत्रकृच्छ्र की अमोघ चिकित्सा हैं । ये हृदय को भी बल देते हैं ।

**५७. अश्मरी (पथरी)**—अष्टांगहृदय में बताया है कि कुपित वायु वस्ति के मुख को घेर कर अकेले मूत्र को या पित्त या कफ या शुक्र के साथ मूत्र को सुखा देती है । इससे क्रमशः अश्मरी (पथरी) उत्पन्न होती है । सब अश्मरियों का आधार कफ है ।[५६] पथरी में वस्ति के आसपास तीव्र दर्द होता है और मूत्र के निकलने में कठिनाई होती है । पथरी आरम्भ में बहुत छोटी होती है और बाद में कई तह

जमने से या कई पथरियों के इकट्ठा होने से बड़ी पथरी बनती है । शर्करा (छोटे कण) ही अश्मरी के रूप में परिणत होते हैं ।[५७]

सुश्रुत का कथन है कि अश्मरी (Stone) भयंकर व्याधि है । यह यम के तुल्य घातक है । प्रारम्भिक अवस्था में यह ओषधि से ठीक हो जाती है , परन्तु बढ़ जाने पर शस्त्रचिकित्सा (Operation) से ही ठीक होती है ।[५८] सुश्रुत ने चिकित्सा दी है कि गोखरू के बीज का चूर्ण, मधु मिलाकर, बकरी के दूध के साथ एक सप्ताह पीने से पथरी नष्ट हो जाती है ।[५९] अष्टांगहृदय ने एक सरल चिकित्सा दी है कि सहजन के मूल (जड़) का काढ़ा थोड़ा गरम पीने पर अश्मरी (पथरी) को निकाल देता है ।[६०] अष्टांगहृदय की टीका में एक अन्य सरल चिकित्सा दी है कि नारियल के फूल को क्षार के साथ पानी में पीसकर पीने से एक दिन में पथरी निकल जाती है ।[६१]

अष्टांगहृदय ने एक चेतावनी दी है कि आपरेशन के बाद घाव भर जाने पर भी एक वर्ष तक हाथी, पर्वत, घोड़ा, वृक्ष और रथ की सवारी न करे और न जल में तैरे ।[६२] इसका अभिप्राय यह है कि एक वर्ष तक ऐसा कोई काम न करे, जिससे आपरेशन वाले स्थान को झटका लगे ।

अथर्ववेद आदि में कतिपय ओषधियों का उल्लेख है, जो अश्मरी (पथरी) रोग के लिए लाभप्रद हैं । इनमें से कुछ ओषधियों का अश्मरी रोग हेतु सुश्रुत संहिता और अष्टांगहृदय में भी उल्लेख है । वरण (वरुण वृक्ष) अश्मरी रोग के लिए बहुत लाभप्रद है । इसके आश्चर्यजनक लाभ आधुनिक डाक्टरों ने भी देखे हैं । वरुण की छाल १०० ग्राम के लगभग लेकर चौगुने पानी में उबालें । आधा पानी रह जाने पर उसको पीयें । प्रतिदिन दो बार पीयें । ऐसा ५ या ७ दिन करें । इससे पथरी गलकर रेत या चूरे के रूप में पेशाब के साथ बाहर आ जाती है । पथरी बहुत बढ़ जाने पर आपरेशन ही करवाना उचित है । (वरण, शब्द संख्या २०१)

अन्य उपयोगी ओषधियां ये हैं:—अर्जुन (अर्जुन, शब्द १८), गुग्गुलु, गुल्गुलु (गूगल, शब्द ८५) पीतुदारु, पूतद्रु (देवदार, शब्द १४१), वेतस (बेंत, शब्द २२१), कुश (दर्भ, कुश, शब्द ६७) ।

**५८. वमन (कै)**—अथर्ववेद आदि में कतिपय ओषधियों का उल्लेख है । ये ओषधियां वमन या कै को रोकने के लिए प्रयुक्त होती हैं । ये हैं—जम्बीर (जम्बीरी नींबू, शब्द ६३), दूर्वा (दूब, शब्द ११७), यवाष (जवासा, शब्द १६०) ।

## (झ) हाथ, पैर के रोग

**५६. हाथ, पैर फटना**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में न्यग्रोध (वट या बड़, शब्द १२६) का उल्लेख है। हाथ-पैर फटने में इसके दूध का प्रलेप हितकर है।

**६०. कुनख रोग**—अथर्ववेद में इस रोग का उल्लेख है। साथ ही इस रोग की चिकित्सा के लिए अपामार्ग (चिरचिटा) ओषधि का उल्लेख है।[६३] इस मंत्र में कुनख रोग के साथ ही श्यावदत् (काले दांत वाला) और बण्ड (अपंग, लूला) का भी उल्लेख है। मंत्र का कथन है कि इन तीनों रोगों वालों के साथ बैठने से भी ये रोग व्यक्ति को लग जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि ये संपर्क (छूत) रोग हैं।

कुनख का अर्थ है—कुत्सित या विकृत नाखून और कुनखिन् का अर्थ है विकृत नाखून वाला। इनके पास बैठने का निषेध है, अतः यह संक्रामक रोग ज्ञात होता है। यह कुष्ठ या महाकुष्ठ रोग है, इसमें नाखून विकृत हो जाते हैं या गल जाते हैं। माधवनिदान, चरक और सुश्रुत में भी इसका उल्लेख है। माधवनिदान ने इसका लक्षण दिया है:—

वात और पित्त प्राणियों के नख के समीप के मांस में स्थिर होकर दाह और पाक उत्पन्न करते हैं। यह व्याधि 'चिप्प' नाम से कही जाती है। यही चिप्प रोग जब अल्प शक्ति वाले दोषों से उत्पन्न होता है तो नाखून परुष (सूखा और खुरदरा) हो जाता है। इसे कुनख कहते हैं। इसमें नाखून के मांस मे पाक हो जाता है।

आजकल इस रोग को ओनीकोग्राई फोसिस (Onychogry phosis) कहते हैं।[६४]

अथर्ववेद के अनुसार इसकी चिकित्सा अपामार्ग (चिरचिटा) है। भावप्रकाश में अपामार्ग को खुजली, शूल, हृदयरोग आदि का नाशक बताया गया है। पाश्चात्त्य मतानुसार अपामार्ग का क्षार शोथ, चर्मरोग और गलगंड में प्रयुक्त होता है।[६५]

**६१. पादरोग**—अथर्ववेद में इस पादरोग का उल्लेख है। मन्त्र का कथन है कि मेरी आँखों, दोनों एड़ियों और दोनों पंजों में जो दर्द या शूल है, उसको ओषधियों में श्रेष्ठ माना गया जल दूर करे।[६६] इस मंत्र में जल-चिकित्सा को पादरोगों के लिए सर्वोत्तम बताया गया है। 'जल-चिकित्सा' प्रकरण में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है। घुटना, पैर, पैर के पंजे आदि के शूल या अन्य रोगों के लिए रोगग्रस्त अंश पर धार से पानी डालें। यह कार्य ५-७ मिनट करें। बाल्टी में शीतल जल में पैर डाल कर ५ या १० मिनट बैठें। तुरन्त की चोट, क्षत आदि में गर्म पानी में नमक डाल कर पैर को सेंकें। इससे सूजन, मोच आदि ठीक हो जाती हैं।

थकान से दर्द हो तो पूर्ववत् गर्म पानी से पैरों को धोवें और सेंकें । शीतल जल से स्नान भी लाभप्रद है ।

## (ञ) मानस रोग

**६२. मानस रोग**—सुश्रुत ने रोगों को चार भागों में बांटा है— आगन्तुक, शारीरिक, मानसिक और स्वाभाविक । शस्त्रप्रहार आदि से होने वाले आघात आगन्तुक हैं । अन्न-पान आदि की विषमता से उत्पन्न रोग शारीरिक हैं । क्रोध, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, काम, लोभ आदि से उत्पन्न रोग मानस रोगा है । भूख, प्यास, निद्रा, बुढ़ापा आदि स्वाभाविक रोग हैं । इन सब रोगों के आधार शरीर और मन हैं। शारीरिक रोगों को व्याधि और मानस रोगों को आधि कहते हैं । इस प्रकार आधि और व्याधि में सभी रोगों का संग्रह हो जाता है ।[११]

चरक ने इस विषय पर विस्तृत विचार किया है । चरक का मत है कि मानस रोग प्रज्ञापराध (बुद्धि के आदेशों की उपेक्षा) से उत्पन्न होते हैं । ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, अंहकार और द्वेष आदि मन के विकार अर्थात् मानसिक रोग प्रज्ञापराध से उत्पन्न होते हैं ।[२]

प्रज्ञापराध की परिभाषा चरक ने दी है कि धी (बुद्धि), धृति (धैर्य) और स्मृति (स्मरणशक्ति ) के भ्रष्ट हो जाने पर मनुष्य जब अशुभ कर्म करता है, तब सभी शारीरिक और मानसिक रोगों को प्रकुपित करने वाले कारणों को प्रज्ञापराध कहते हैं ।[३]

प्रज्ञापराध का स्वरूप है— बुद्धि से उचित रूप में ज्ञान का न होना, विषम अर्थात् अनुचित रूप से कर्मों ने प्रवृत्त होना, यह प्रज्ञापराध है । यह विपरीत ज्ञान और विपरीत प्रवृत्ति मन के विषय हैं ।[४]

मानस रोगों के तीन कारण माने गए हैं—

**१. कुलज (Hereditary)**—ये वंशपरंपरागत रोग होते हैं, जो अनुकूल परिस्थिति मिलने पर रोग की उत्पत्ति करते हैं ।

**२. मानसिक (Psychic)**—मन के. विभिन्न संघटकों का सामंजस्य या अनुकूलता से न चलने से ये मानस रोग होते हैं ।

**३. शारीरिक (Physical)**—शरीर में कतिपय रासायनिक परिवर्तन से या धातु-विकार से मस्तिष्क के कार्य में गड़बड़ी होने से ये मानस रोग होते हैं ।

सुश्रुत का कथन है कि वही व्यक्ति स्वस्थ कहा जा सकता है, जिसमें वात-पित्त-कफ दोष साम्यावस्था में हों, जठराग्नि आदि अग्नियां सम हों, रस-रक्त आदि धातुएं तथा मल-मूत्रादि व्यवस्थित हों तथा जिसकी आत्मा इन्द्रियां और मन प्रसन्न हों ।[५]

चरक ने इस विषय में उपदेश दिया है कि जो सदा सुखी और स्वस्थ रहना चाहता है हो वह अपने आहार (भोजन), आचार (आचरण) और अपनी चेष्टाओं पर पूर्ण नियन्त्रण रखे ।[६] साथ ही एक सामान्य आदेश दिया है कि मल (शौच) और मूत्र के वेग को न रोके, क्योंकि इनके रोकने से अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।[७] मल-मूत्र के वेग को अधारणीय वेग (Non-Suppressible Urges) कहा गया है ।

मन की प्रसन्नता और स्वस्थता मनुष्य को नीरोग रखती है और उसका दूषित होना रोगों का कारण है । अतएव मैत्रायणी उपनिषद् में कहा गया है— मन ही मनुष्य के बन्धन (व्याधियुक्त होना) और मोक्ष (रोगरहित होने) का कारण है ।[८] ऋग्वेद और यजुर्वेद का कथन है कि यदि वृत्र (पाप, रोग, व्याधि) को नष्ट करना है तो मन को शुद्ध रखो ।[९]

यजुर्वेद के ६ मंत्रों में 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' अर्थात् मेरा मन शुभ विचारों वाला हो, यह प्रार्थना की गयी है और कहा गया है कि मन ही मनुष्य की सारी क्रियाओं और चेष्टाओं को नियन्त्रित करता है । संयमशील मन योग्य सारथि के तुल्य मनुष्य को ठीक मार्ग पर ले चलता है ।[१०] यदि मन दूषित है तो शरीर भी दूषित और रोगग्रस्त होता है ।

मन को ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों आदि में ब्रह्म, सम्राट् , ब्रह्मा, प्रजापति आदि कहा गया है ।[११] मन की शक्ति अपार है । मन की शक्ति से केवल हस्तस्पर्श के द्वारा रोगी को नीरोग करने का ऋग्वेद में उल्लेख है ।[१२] मनोबल में इतनी बड़ी शक्ति होती है कि वह बड़े से बड़े रोगों को भस्मात् करके मनुष्य को पूर्ण नीरोग बना सकता है । इसी पद्धति का आश्रय लेकर Auto Suggestion अर्थात् 'स्वसंकल्प-शक्ति' नामक चिकित्सा पद्धति का आविष्कार हुआ है ।

**६३. क्रोध**—अथर्ववेद में क्रोध की चिकित्सा का वर्णन है ।[१३] इसमें दर्भ और भूरिमूल ओषधियों का उल्लेख है । दर्भ कुश को कहते हैं । भावप्रकाश में इसे शीतल कहा गया है । जल में कुश को डालकर रखें और फिर छना हुआ पानी पीयें। इससे क्रोध शान्त होगा । अथर्ववेद में दूसरी ओषधि भूरिमूल बतायी गयी है ।[१४] भूरिमूल का अर्थ है—बहुत जड़ों वाला । कैयदेव निघण्टु में खस को बहुमूल कहा गया है ।[१५] खस का प्रयोग शीतलता के लिए किया जाता है । खस में दाह, मद, थकान आदि दूर करने के गुण हैं । खस का छना हुआ जल या खस को पीस कर छानकर उसका जल सेवन करें ।

**६४. मोह, शोक**—अथर्ववेद में मोह शोक आदि दोषों को दूर करने के लिए सोम आदि ओषधियों का उल्लेख किया गया है ।[१६] इन दोषों में शपथ्य (क्रोधजन्य दोष), वरुण्य (जलीय दोष और मानसिक दोष मोह आदि), आँख, वाणी आदि के दुरुपयोग से जन्य दोष एवं मानसिक दोष हैं । इन सभी की चिकित्सा सोम ओषधि है ।[१७]

**६५. ईर्ष्या**—ईर्ष्या रोग की भी ओषधि अथर्ववेद में वर्णित है । यह ओषधि समुद्र के समीप से लायी जाती है ।[१८] अथर्ववेद में ईर्ष्याजन्य हानि का उल्लेख किया गया है कि यह मनुष्य को अन्दर ही अन्दर आग की तरह जलाती रहती है । जिस प्रकार दावाग्नि वृक्षों को जला देती है, उसी प्रकार ईर्ष्या मनुष्य की जीवन शक्ति को भस्मसात् कर देती है । जिस प्रकार शीतल जल से अग्नि को शान्त करते हैं, उसी प्रकार सद्विचाररूपी जल से ईर्ष्या को शान्त करना चाहिए ।[१६] ईर्ष्या की ओषधि समुद्रफल या सिन्धुफल है, राजनिघण्टु, शालिग्राम निघण्टु और निघण्टु रत्नाकर में सिन्धुफल के गुण बताए गए हैं कि यह भ्रान्तिनाशक, ईर्ष्यानाशक और शिरोरोग नाशक है ।[२०] शालिग्राम निघण्टु में लिखा है कि यह कोंकण देश की ओर अधिकता से होता है । कोंकण प्रदेश पश्चिमी घाट (सह्य पर्वत) से समुद्र तक चला गया है । सिन्धुफल को जल में घिस कर लेना चाहिए । इसको कृमिनाशक भी बताया गया है ।[२१] सिन्धुफल बड़ी इलायची के तुल्य तीन धार वाले होते हैं और वृक्षों की डोरी में लटके रहते हैं ।

**६६. दुःस्वप्न और स्वप्नदोष**—अथर्ववेद में दुःस्वप्न या बुरे स्वप्न आना और स्वप्नदोष होने की चिकित्सा का उल्लेख है । स्वप्नदोष में वीर्य-स्खलन हो जाता है । इसके लिए जल-चिकित्सा का उल्लेख है ।[२२] जल दोषों को दूर करता है । साथ ही यह बुरे स्वप्न और स्वप्नदोष को भी दूर करता है । इसके लिए सोने से पूर्व शीतल जल से स्नान, कटिस्नान और मेहन-स्नान अर्थात् मूत्रेन्द्रिय को जल से धोना लाभप्रद हैं । उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) के अग्रभाग को गीले नरम वस्त्र से रगड़ना या उस पर शीतल जल की धारा छोड़ना भी उपयोगीं है । दुःस्वप्न के लिए वरण (वरुण, वरना वृक्ष) की मणि (माला) को धारण करना भी लाभप्रद है ।[२३] अथर्ववेद और पैप्पलाद संहिता में आञ्जन (पहाड़ी अंजन या सौवीर अंजन) को कुस्वप्न और स्वप्नदोष का नाशक बताया गया है । अंजन वृक्ष की मणि को भी बांधने का उल्लेख है ।[२४]

अथर्ववेद मं बभ्रु ओषधि का उल्लेख है ।[२५] यह सहस्रपर्णी या शंखपुष्पी है । यह सभी मानसिक रोगों को नष्ट करती है । यह रसायन है और स्नायुतन्तुओं के लिए लाभप्रद है ।[२६]

**६७. उन्माद रोग**—उन्माद रोग दो प्रकार का होता है—शान्त और

प्रलापयुक्त । शान्त उन्माद में मस्तिष्क के आन्तरिक तन्तु कफलिप्त या जड़ हो जाते हैं, तब मन मूढ होकर शान्त उन्माद को उत्पन्न करना है । प्रलापयुक्त में व्यक्ति असंयत भाषा का प्रयोग करता है ।

इसके लिए Auto Suggestion या स्वसंकल्पचिकित्सा सर्वोत्तम है ।

इसमें मनोबल को प्रदीप्त करके अपनी आत्मा को आदेश दिया जाता है कि उसे कोई रोग नहीं हैं और वह पूर्णतया रोगमुक्त है । इस विचारशक्ति का प्रभाव यह होता है कि रोगी धीरे-धीरे सामान्य स्थिति में आ जाता है ।

अथर्ववेद ने उन्मत्तता के नाशन का उपाय दिया है—अग्नि ।[२७] अग्नि में सुगन्धित कपूर चन्दन तुलसी इलायची केसर गूगल आदि उस्तुएं तथा पौष्टिक कन्दमूल छुहारा किशमिश आदि एवं रोगनाशक गिलोय आदि ओषधियां डालकर उसका धुआं सुँघाने से रोगी के मस्तिष्क में चेतना, स्फूर्ति और प्रसन्नता आती है । इससे उसका उन्माद दूर होता है ।

अथर्ववेद में ज्ञानतन्तुओं को आघात पहुँचाने वाले तत्त्वों को कृमि, रक्षस् आदि नाम दिए गए हैं । इनके प्रभाव से मनुष्य विचारहीन या आसुरी भावना वाला हो जाता है । ऐसे कृमियों को नष्ट करने वाली ओषधि अजशृंगी दी गयी है ।[२८] यह मेषशृंगी या मेढ़ासिंगी है । यह रोग-कृमि, खांसी और विष को नष्ट करती है ।[२९]

अथर्ववेद आदि में कुछ ओषधियों का उल्लेख है । ये ओषधियां उन्माद रोग को नष्ट करती हैं । ये हैं:—

अश्वत्थ (पीपल, शब्द २४), उन्मादरोग में इसकी समिधा से हवन किया जाता है । उदुम्बर (गूलर, शब्द ४५), उन्मादरोग-निवारण हेतु इसकी भी समिधा से हवन का विधान है । क्षिप्तभेषजी (पिप्पली, पीपर, शब्द ७७), वातीकृतभेषजी (पीपर, शब्द २०३) । बभ्रु (सहस्रपर्णी, शंखपुष्पी, शब्द १६१), यह रसायन है । इसका रस उन्माद, दुर्बलता और गंडमाला में लाभप्रद है ।

**६८. क्षिप्तरोग या धनुर्वात रोग**—अथर्ववेद में क्षिप्तरोग की चिकित्सा पिप्पली (पीपर) ओषधि दी गयी है ।[३०] क्षिप्तरोग से धनुर्वात रोग का ग्रहण किया गया है । भावप्रकाश में पीपर को वात और कफ को नष्ट करने वाला बताया गया है । यह भूख बढ़ाती है और बलवर्धक है ।[३१] अष्टांगहृदय में प्रसारिणी तेल का उल्लेख है कि यह सारे वातरोगों को नष्ट करता है ।[३२] भावमिश्र ने भी धनुर्वात या धनु:स्तम्भ और कुब्जत्व (कुबड़ापन) में प्रसारिणी तेल के प्रयोग का विधान किया है । इसमें अन्य ओषधियों के साथ पिप्पली भी डाली जाती है ।[३३]

**६९. अपस्मार (मृगी) रोग**—अपस्मार को मृगी या मिरगी रोग कहते हैं । इसमें व्यक्ति मूर्छित होकर गिर पड़ता है । इसे Epilepsy (एपिलेप्सी) रोग कहते

हैं। अथर्ववेद में दक्षवृक्ष अर्थात् दशमूल को सन्धिवात और मस्तिष्क वात (अपस्मार) रोगों की चिकित्सा बताया गया है।[३४] दशमूल में ये दस ओषधियां हैं—बिल्व, अग्निमन्थ, स्योनाक, काश्मरी, पाटला, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, ब्रड़ी कटेली, छोटी कटेली और गोखरू। (दशमूल ओषधियों के विवरण के लिए देखें भावप्रकाश निघण्टु)।[३५]

अथर्ववेद में तलाशा (तालीस वृक्ष या तालीसपत्र) वृक्ष का उल्लेख है।[३६] प्रो० खोरी के मतानुसार यह मृगी, दमा, रक्तपित्त एवं आक्षेपमूलक रोगों में प्रयुक्त होता है।[३७]

अथर्ववेद में न्यस्तिका या शंखपुष्पी का उल्लेख है।[३८] यह अपस्मार (मृगी), कोढ़, कृमि और विष को नष्ट करती है।[३९] अथर्वपरिशिष्ट में वचा (वच) ओषधि का उल्लेख है।[४०] यह अपस्मार, उन्माद और वातरोगों को नष्ट करती है।[४१]

**७०. मूर्च्छा रोग**—तैत्तिरीय आदि संहिताओं में खर्जूर (खजूर) का उल्लेख है।[४२] यह मूर्च्छा रोग, दमा, श्वासरोग और खांसी को नष्ट करता है।[४३] शंखपुष्पी भी मूर्च्छा रोग के लिए उपयोगी है। (देखो शब्द २२६)

## (ट) बाल रोग

**७१. बच्चों के दांत निकलना आदि**—अथर्वपरिशिष्ट में वचा (वच) ओषधि का उल्लेख है। यह बच्चों के अनेक रोगों को दूर करता है। बच्चों के उदराध्मान अर्थात् पेट फूलना या अजीर्ण में नाभि पर इसका प्रलेप करना चाहिए। बच्चों को बालवच चबाने के लिए देने से दांत का चबाना बन्द हो जाता है और दांत शीघ्र निकलते हैं। बच्चों के पेटदर्द में वच का चूर्ण थोड़ी सी मात्रा में देना चाहिए। वच का चूर्ण मुंह में रखने से खांसी बन्द हो जाती है। वच का लेप सूजन दूर करता है।[४५]

**७२. जम्भ रोग**—अथर्ववेद में जम्भरोग का उल्लेख है।[४६] इसमें दोनों जबड़े जुड़ जाते हैं। वेबर, ब्लूमफील्ड आदि ने कौशिकसूत्र के आधार पर इसे शिशुरोग माना है। ह्विटनी इसे 'जबड़ा बन्द होना' रोग मानते हैं। अथर्ववेद में जंगिड मणि इसकी चिकित्सा बताई गयी है। दारिल और कैलण्ड ने जंगिड का अर्थ अर्जुन वृक्ष माना है। इसकी मणि (माला) धारण करने का विधान है।[४७]

## (ठ) विविध शूल एवं प्रमेह आदि

**७३. पृष्ट्यामय (पसली का दर्द)**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इस रोग का उल्लेख है।[१] अथर्ववेद में इस रोग की ओषधि जंगिड मणि दी है।[२] जंगिड मणि पसली का दर्द, बलास रोग और साल भर रहने वाले ज्वर को नष्ट करती है।

ऋग्वेद अथर्ववेद आदि में पुष्कर (कमल) का उल्लेख है।[३] पुष्करमूल

(पोहकरमूल) पसली के दर्द की मुख्य दवा है । यह शोथ (सूजन) और श्वास रोगों को भी दूर करता है ।[४] इसको ओरिस रूट (Oris Root) कहते हैं ।

**७४. प्लीहा-शूल (तिल्ली में दर्द)**—अथर्ववेद में प्लीहा (तिल्ली, Spleen) से संबद्ध रोगों का उल्लेख है ।[५] इसके लिए पिप्पली या क्षिप्तभेषजी (पीपर) का उल्लेख है ।[६] पीपर प्लीहाशूल, बवासीर, गठिया और प्रमेह को नष्ट करती है ।[७]

**७५. प्लीहा-यकृत्-वृद्धि**—जिगर और तिल्ली का बढ़ना । अथर्ववेद में प्लीहा और यकृत् रोगों का उल्लेख है ।[८] अथर्ववेद आदि में निम्नलिखित ओषधियों का उल्लेख है । ये प्लीहा और यकृत् की वृद्धि में लाभप्रद हैं:—

पिप्पली (पीपर, शब्द १४०) । विभीतक (बहेड़ा, शब्द १६५), यह प्लीहावृद्धि में लाभ देता है । भावप्रकाश के अनुसार प्लीहा और यकृत् की वृद्धि में भृंगराज को अजवाइन के साथ लेना चाहिए । यह खांसी और प्रतिश्याय (जुकाम) के लिए भी लाभप्रद है ।[९]

**७६. अस्थियों और पर्वों के रोग**—अथर्ववेद में बलाशनाशनी या बलास-भेषज ओषधि का उल्लेख है ।[१०] यह बलास (कफरोग) को नष्ट करती है । साथ ही यह हड्डियों के एवं हड्डियों के पर्वों (जोड़ों) के रोगों को तथा हृदय के रोगों को नष्ट करती है ।[११]

**७७. प्रमेह एवं मधुमेह**—अष्टांगहृदय में उल्लेख है कि प्रमेह २० प्रकार का होता है । यह मेद (चर्बी), मूत्र और कफ को बढ़ाने वाले खान-पान से उत्पन्न होता है । अधिक मीठे का सेवन, एक ही स्थान पर बैठे रहना, अनियमित सोना आदि प्रमेह के कारण हैं । सभी प्रमेहों का सामान्य लक्षण है—मूत्र का अधिक होना । यह मूत्र कुछ गंदला या मैला होता है । मधुमेह में मधु के समान मूत्र प्रवाहित होता है । प्रमेह ही उपेक्षा करने पर मधुमेह में बदल जाता है। सभी मेहों में मधु के समान मूत्र आता है, अतः सभी मेहों को मधुमेह भी कहा जाता है । प्रमेह या मधुमेह के कुछ पूर्वरूप ये हैं:—पसीना आना, अंगों में शिथिलता, आराम की अधिक इच्छा, शरीर में स्थूलता, गले और तालु में शुष्कता, मुख में मधुरता, हाथ-पैर में जलन और मूत्र पर चीटियों का आना ।[१२]

अष्टांगहृदय में प्रमेह और मधुमेह की चिकित्सा के रूप मे कुछ सरल योग (नुस्खे) ये दिये हैं—१. आंवले के रस में हल्दी को घोलकर मधु मिलाकर लें । २. गिलोय का रस या आंवले का रस मधु के साथ लें । ३. शिलाजतु (शिलाजीत) उत्तम रसायन है । मधुमेह का असाध्य रोगी भी शिलाजतु की एक तुला (एक सौ पल) यदि खा लेता है तो वह पूर्णतया नीरोग हो जाता है । शिलाजीत प्रमेह के लिए अत्युत्तम ओषधि है ।[१३]

निर्धन प्रमेह के रोगी के लिए अष्टांगहृदय का उपदेश है कि वह अधिक से अधिक तपस्वी जीवन व्यतीत करे । अत्यन्त सादा खाना खावे । जितना संभव हो, अधिक से अधिक घूमे । कठिन परिश्रम का कार्य करे । इस प्रकार वह मधुमेह से मुक्त हो जाएगा ।[१४]

सुश्रुत का कथन है कि सभी १६ प्रकार के साध्य प्रमेह हरिद्रा (हल्दी) के प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं ।[१५] सरल विधि यह है कि रात्रि में सोने से पूर्व चाय की चम्मच से आधा चम्मच पिसी हल्दी दूध से लें । सुश्रुत ने सारे प्रमेह के रोगियों के लिए कुछ योग (नुस्खे) ये दिये हैं:—१. हल्दी में मधु मिलाकर आंवले के रस से पिलावें । २. त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला), इन्द्रायण, देवदारु और नागरमोथा का क्वाथ (काढ़ा) पिलावें । इन योगों में आंवले का रस, हल्दी और मधु मिलाना चाहिए । चरक ने भी इसका समर्थन किया है ।[१६]

संपन्न लोगों लिए सुश्रुत ने विशेष चिकित्सा दी है कि—पाठा (पाढ़), हरड़ और चित्रक (चीता) में से किसी भी एक के काढ़े में प्रचुर मात्रा में मधु मिलाकर पिलावें ।[१७] हरड़ का काढ़ा इनमें सबसे सरल विधि है । इसे मधु मिलाकर दें ।

उक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि सभी प्रकार के मधुमेह में शिलाजीत, हल्दी, आंवला और हरड़ का प्रयोग अत्यधिक लाभकारी है । अथर्ववेद आदि में कुछ ओषधियों का उल्लेख है । ये प्रमेह और मधुमेह में विशेष लाभप्रद हैं:—

पिप्पली, क्षिप्तभेषजी (पीपर, शब्द १४० और ७७), खदिर (खैर, शब्द ८०), तिल्वक (तिनिश वृक्ष, शब्द १०४), बला (शब्द १६२), साल (साखू वृक्ष, शब्द २७०)

## (ड) स्त्री-रोग

**७८. स्त्रीरोग**—अथर्ववेद आदि में स्त्रीरोगों में उपयोगी कतिपय ओषधियों का उल्लेख है । यजुर्वेद और अथर्ववेद में अपामार्ग (चिरचिटा, लटजीरा, चिंचीड़ा) का अनेक बार उल्लेख है ।[१८] इसको सबसे अधिक प्रभावशाली ओषधि कहा गया है । पाश्चत्त्य विद्वानों का मत है कि यह अत्यधिक रजःस्राव (Menorrhagia, मेनराजिया) रोग में विशेष लाभप्रद है ।[१९]

यजुर्वेद और अथर्ववेद में उदुम्बर (गूलर) का उल्लेख है ।[२०] पाश्चात्त्य मत है कि यह पाचक, वायुनाशक और आध्मानहर (अफारा दूर करने वाला) है । यह रक्तप्रदर, रक्त पित्त और रक्तवमन आदि में हितकर है । गूलर का मूल (जड़) श्वेत प्रदर में लाभ करता है ।[२१]

मैत्रायणी आदि संहिताओं में उपवाक या उपवाका (इन्द्र जौ, कुटज, कुटजबीज)

का उल्लेख है ।[२२] पाश्चात्त्य विद्वानों के मतानुसार प्रसव के बाद योनि (स्त्री-जननेन्द्रिय) को दृढ़ करने के लिए इसका प्रयोग होता है । यह गुर्दों में दर्द, पेट के कीड़े, रक्तपित्त और रक्तातिसार (खूनी पेचिश ) में लाभप्रद है । इसका बीज शुक्रक्षय से उत्पन्न दुर्बलता को दूर करता है ।[२३]

यजुर्वेद और अथर्ववेद में प्लक्ष (पिलखन, पाकर) वृक्ष का उल्लेख है ।[२४] यह योनिरोग, योनिदाह, सूजन, व्रण और रक्तविकार का नाशक है ।[२५]

अथर्ववेद में बज(सफेद सरसों) और पिंग (पीली सरसों) का उल्लेख है ।[२६] बज और पिंग गर्भरक्षक और गर्भाशय-संकोचक हैं । ये गर्भनाशक कृमियों को नष्ट करते हैं । गर्भिणी के गर्भदोष-निवारण के लिए इन्हें कमर में बांधा जाता है, अतः इन्हें नीविभार्य (कमर में बांधना) कहते हैं ।[२७]

**७६. योनिरोग**—अथर्ववेद आदि में योनिरोगों को दूर करने वाली कतिपय ओषधियों का उल्लेख हैं ।

ऋग्वेद आदि में वेतस (बेंत) का उल्लेख है ।[२८] यह योनिरोग, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त और पथरी में लाभप्रद है । [२९] अथर्ववेद में वट (बड़) वृक्ष का उल्लेख है ।[३०] यंह योनिरोग, शुक्रक्षीणता , सूजाक, मधुमेह और मूर्च्छा को दूर करता है ।[३१] अथर्ववेद में साल या शाल (साखू) वृक्ष का उल्लेख है ।[३२] यह योनिरोग, कर्णरोग, बहरापन और चर्मरोगों को नष्ट करता है ।[३३]

**८०. योनिकृमि एवं गर्भनाशक कृमि**—अथर्ववेद में योनिकृमियों को नष्ट करने के उपाय बताए हैं—ब्रह्म (ब्रह्मवृक्ष, गूलर) और अग्नि ।[३४] निघण्टु रत्नाकर में उदुम्बर अर्थात् गूलर को ब्रह्मवृक्ष कहा है और इसके गुण बताए हैं कि गूलर की छाल योनि के रोगों को नष्ट करती है । गूलर की छाल के चूर्ण और उसकी छाल के पानी आदि के सेवन से योनिरोग दूर होते हैं । चित्रक (चीता या चीत) ओषधि को अग्नि कहते हैं ।[३५] यह कृमिनाशक, रसायन और पाचक है । यह बहुत तीव्र प्रभाववाली ओषधि है । योनिमार्ग में इसके प्रवेश से गर्भस्राव हो जाता है । इसकी जड़ के प्रलेप से कच्चा फोड़ा शीघ्र पक जाता है ।[३६]

अथर्ववेद में पृश्निपर्णी (पिठवन) ओषधि को गर्भनाशक कृमियों का नाशक कहा गया है ।[३७] इसे चित्रपर्णी भी कहते हैं । यह तीव्र कृमि-नाशक ओषधि है ।[३८] इस सूक्त मे कहा गया है कि यह आग की तरह गर्भभक्षक कृमियों को जला देती है ।

कुछ आयुर्वेदीय ग्रन्थों में गर्भरक्षा के लिए पृश्निपर्णी का उपयोग दिया है । योगरत्नाकर और क़ामरत्न में गर्भिणी को छठे मास में गर्भरक्षा के लिए पृश्निपर्णी का सेवन करना लाभप्रद बताया गया है ।[३९]

अथर्ववेद में गर्भनाशक कृमियों का उल्लेख है ।[४०] इनकी चिकित्सा बज (सफेद सरसों) और पिंग (पीली सरसों) ओषधि कही गयी है ।[४१]

अश्वत्थ (पीपल, शब्द २४) और न्यग्रोध (वट या बड़ शब्द १२६) ये दोनों योनिशोधक और योनिदोषों के नाशक हैं । माषपर्णी या पृश्निपर्णी (शब्द १८४) को प्रो० रोठ ने लक्ष्मणा (श्वतेपुष्पा कण्टकारी) ओषधि माना है । यह गर्भपात (Abortion) रोकने की दवा है । केशव ने कौशिकसूत्र में इसे गर्भस्राव (Miscarriage) से पीडित स्त्रियों के लिए बहुमूल्य ओषधि बताया है ।[४२] भावप्रकाश का कथन है कि पुत्रजननार्थ लक्ष्मणा (सफेद कण्टकारी) का प्रयोग अचूक पाया गया है । इसके सेवन से अवश्य पुत्र-प्राप्ति होती है ।[४३]

**८१. गर्भदोष**—अथर्ववेद में गर्भदोष को दूर करने के लिए पिंग (पीली सरसों) और बज (सफेद सरसों) ओषधियों का उल्लेख है । इन्हें नीविभार्य (कमर में बांधने योग्य) कहा गया है। ये गर्भिणी के गर्भदोषों को दूर करते हैं और गर्भनाशक कृमियों को नष्ट करते हैं । ये गर्भरक्षक और गर्भाशय-संकोचक हैं ।[४४]

**८२. गर्भस्थापक**—अथर्ववेद आदि में निम्नलिखित ओषधियों का उल्लेख है । ये ओषधियां गर्भस्थापक हैं :—

उत्तानपर्णा (पाटा या पाढ़ा ओषधि, शब्द ४४) गर्भस्थापक और वीर्यवर्धक है । पाटा या पाठा ओषधि (पाढ़ा, शब्द १३६), नीविभार्य (बज और पिंग, सफेद और पीली सरसों, शब्द १२८), पृश्निपर्णी या माषपर्णी (शब्द १८४), संस्कन्ध (अर्जुन वृक्ष, शब्द २५२) ।

**८३. गर्भदृंहण**—कौशिकसूत्र में गर्भदृंहण अर्थात् गर्भ को दृढ़ और स्थिर करने के लिए कुष्ठ (कूठ) ओषधि को उत्तम बताया है ।[४५]

**८४. गर्भपात (Abortion) रोकना**—गर्भपात रोकने के लिए माषपर्णी या पृश्निपर्णी (लक्ष्मणा) ओषधि को उत्तम दवा बताया गया हैं । (देखो शब्द १८४)

**८५. गर्भपात कराना या गर्भस्रावण**—अथर्ववेद आदि में निम्नलिखित ओषधियों का उल्लेख हैं, इनके सेवन से गर्भपात हो जाता है:—शिग्रु (सहजन, सहिंजन, शब्द २४२) । इसकी त्वचा (छाल) के प्रयोग से गर्भपात हो जाता है । स्रेकपर्ण (करवीर या कनेर वृक्ष, शब्द २७६) । गर्भपात के लिए कनेर की जड़ का प्रयोग होता है ।

**८६. ऋतुस्राव रुकना**—ऋग्वेद और अथर्ववेद मे तेजन शब्द का उल्लेख है ।[४६] तेजन शब्द वंश या बांस का वाचक है । बांस के पत्ते आर्तव रज:स्रावकारी हैं । ये मासिक धर्म को ठीक करते हैं । इसकी गांठों का क्वाथ (काढ़ा) लोकिया

(Lochia) स्राव को रोकता है। (प्रसव के बाद योनिमार्ग से जलवत् निकलने वाले पदार्थ को लोकिया कहते हैं)।[४७]

ऋग्वेद में शाल्मलि (सेमर) वृक्ष का उल्लेख है।[४८] पाश्चात्य मत है कि सेमर का मूल (जड़) रजःस्राव, रक्तातिसार और अतिसार (दस्त) में दिया जाता है। यह रजःस्राव की अधिकता को रोकता है।

भावप्रकाश निघण्टु ने नीली या नीलिनी (नील, Indigofera इंडिगोफेरा) पौधे को रुके हुए ऋतुस्राव (मासिक धर्म) को ठीक करने वाला बताया है। जिन स्त्रियों को अधिक आयु होने पर भी ऋतुस्राव नहीं होता या जिनका ऋतुस्राव बहुत समय से बन्द हो गया है, उन सबको यह ठीक कर देता है।[४९]

**८७. रक्त-प्रदर**—अथर्ववेद मे पर्णमणि का उल्लेख है।[५०] यह पलाश या ढाक वृक्ष के लिए है। पाश्चात्यमत है कि यह रक्तप्रदर रोग को नष्ट करता है।[५१] अथर्ववेद में शण (सन) का उल्लेख है।[५२] इसकी रस्सी बनती है। इसके फूल रक्त प्रदर (प्रदर के अन्दर अधिक खून आना) को रोकते हैं।[५३]

**८८. सुख-प्रसव**—अथर्ववेद के एक पूरे सूक्त में वर्णन है कि नारी को सन्तान सुखपूर्वक हो।[५४] दसवें मास में सन्तान का जन्म होना चाहिए।[५५] गर्भ में देवों का निवास माना गया है, अतः गर्भ की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखना चाहिए।[५६] अथर्ववेद में धात्री (दाई, Midwife) का कर्तव्य बताया है कि वह किस प्रकार गर्भाशय को ऊपर और नीचे करे, जिससे बच्चा आसानी से उत्पन हो।[५७]

अथर्ववेद में प्रसूति-रोगों को दूर करने के लिए बज (सफेद सरसों) और पिंग (पीली सरसों) का उल्लेख है।[५८] सरसों कृमिनाशक और रक्षोनाशक है। आजकल भी प्रसूतिगृह में अग्नि में सरसों डालने की प्रथा है।

अथर्ववेद में सन्धिवात (गठिया) आदि रोगों को दूर करने के दशवृक्ष अर्थात् दशमूल ओषधि का उल्लेख है।[५९] यह त्रिदोषनाशक है और खांसी, ज्वर, सूजन, पसली की पीड़ा, शिरोरोग एवं अरुचि को नष्ट करती है, अतः प्रसूति रोगों को दूर करने से लिए दशमूल का अरिष्ट और अर्क आदि दिया जाता है।[६०] यह पेट की सफाई करके सभी प्रसूति-रोगों को दूर करता है। दशमूल शरीर में वात आदि के प्रकोप को नष्ट करता है, अतः प्रसूता के अंगों में पीड़ा नहीं होने पाती।

अथर्ववेद में अपामार्ग (चिरचिटा) का बहुत गुणगान है।[६१] इसको सब ओषधियों में श्रेष्ठ माना गया है।[६२] इन्द्रजाल ग्रन्थ के सुखप्रसव योग में लिखा है यदि संतान-स्तम्भन रोग हो या बच्चा पैदा होने में अनावश्यक विलम्ब हो रहा हो तो अपामार्ग की जड़ चार अंगुल लेकर स्त्री की योनि में प्रवेश करने से बच्चा बहुत शीघ्र एवं सुखपूर्वक बाहर आ जाता है।[६३]

अथर्ववेद में शेवल (शैवाल या सेवार) का उल्लेख है और इसे जरायुपातन (झिल्ली या खेड़ी को गिराने वाला) कहा गया है ।[६४] भावप्रकाश निघण्टु में चित्रक (चीता या चीत) ओषधि का गुण बताया है गया है कि इसका चूर्ण प्रसूता को सेवन कराने से गर्भस्थ शिशु जीवित या मृत, जिस अवस्था में भी होगा, शीघ्र ही बाहर आ जाता है ।[६५]

**८६. मूढगर्भ**—मूढगर्भ उसे कहते हैं, जिसके सारे अंग विकसित हो चुके हैं और जो मन बुद्धि आदि से युक्त हो गया है । ऐसा गर्भ जब अपान वायु के विकार के कारण मूढ या मार्ग में अवरुद्ध हो जाता है तो उसे मूढगर्भ कहते हैं । इसकी चिकित्सा शल्यक्रिया के द्वारा होती है । अथर्ववेद में स्पष्ट उल्लेख है कि मैं तेरे मूत्रमार्ग को तथा योनि को विदीर्ण करता हूँ, जिससे गर्भ बाहर आ जाए । साथ ही बाहर आने में रुकावट डालने वाली नाड़ियों को भी चीरता हूँ ।[६६]

**९०. अनपत्यता या बन्ध्यात्व रोग**—स्त्री में गर्भ स्थित न होना या गर्भ स्थित होकर गिर जाना अनपत्यता (सन्तानहीनता) या बन्ध्यात्व (बांझपन) रोग कहा जाता है । अथर्ववेद में अनपत्यता रोग का उल्लेख है ।[६७] मंत्र में 'अगोता' शब्द भी गोत्र-हीनता अर्थात् पुत्रहीनता या बन्ध्यात्व का सूचक है । इसकी चिकित्सा अपामार्ग (चिरचिटा) ओषधि बतायी गयी है ।[६८] दत्तात्रेयतन्त्र में उल्लेख है कि अपामार्ग की जड़ को एक रंग वाली गाय के दूध के साथ पीसकर पीने से गर्भ स्थिर हो जाता है और दीर्घजीवी संतान होती है ।[६९]

अथर्ववेद में ऋषभक ओषधियों का उल्लेख है । इनके विषय में कहा गया है कि ये ओषधियां उत्तम गर्भबीजों की उत्पति करती हैं ।[७०] इनके सेवन से विशेष बल और शक्ति आती है ।[७१] भावप्रकाश निघण्टु में ऋषभक ओषधि का उल्लेख है । यह अष्टवर्ग की आठ ओषधियों में से एक है । निघण्टु रत्नाकर में ऋषभक ओषधि को 'गर्भसन्धानकारक' अर्थात् गर्भ को स्थिर करके पुत्र लाभ कराने वाली ओषधि कहा गया है ।[७२] अष्टवर्ग में आठ ओषधियां ये हैं—जीवक, ऋषभक, मेदा महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि ।[७३] इनमें वृद्धि को गर्भधारण कराने वाली, वीर्यवर्धक और पौष्टिक बताया गया है । भावप्रकाश का यह भी कथन है कि ये अष्टवर्ग की ओषधियां राजाओं को भी दुर्लभ हैं, अतः इनकी प्रतिनिधि ओषधियां, जो समान गुणवाली हों, लेना चाहिए । जीवक और ऋषभक के अभाव में विदारीकन्द, मेदा महामेदा के अभाव में शतावर, काकोली क्षीरकाकोली के अभाव में अश्वगन्धा, ऋद्धि और वृद्धि के अभाव में वाराहीकन्द ओषधि लें ।[७४]

ऋषभक ओषधियों को वर्षा के जल में घिसकर पीने से बन्ध्यात्व रोग के दूर होने का निर्देश है । वर्षा के जल को पुत्रलाभ का साधन बताया गया है ।[७५]

अथर्ववेद में उल्लेख है कि शमीवृक्ष के ऊपर उसे हुए पीपल के पत्रादि के सेवन से पुत्रलाभ होत है ।[७६] कामरत्न ग्रन्थ में लिखा है कि वन्दा (शमी आदि पर उत्पन्न) पीपल का रस ऋतुस्नान के बाद पीने से बन्ध्या स्त्री को भी पुत्रलाभ होता है ।[७७]

लाक्षा (लाख, गोंद) ओषधि के विषय में कहा गया है कि यह नवयुवतियों या नवविवाहिताओं को गर्भशक्ति देने वाला है ।[७८] मन्त्र में 'कानीन' शब्द कन्याओं या नववधुओं के लिए हितकर अर्थ सूचित करता है ।

अथर्ववेद में शतवार मणि (शतावर) और औदुम्बर मणि (गूलर) की माला धारण करने से पुत्रलाभ का उल्लेख है ।[७९]

अथर्ववेद के एक पूरे सूक्त में पृश्निपर्णी ओषधि का उल्लेख है ।[८०] पृश्निपर्णी को ही माषपर्णी और चित्रपर्णी कहते हैं । इसके पत्ते चितकबरे होते हैं । यह गर्भपात रोकने की दवा है । प्रो० रोठ ने इसे लक्ष्मणा ओषधि माना है । भावप्रकाश में लक्ष्मणा को पुत्रजननी (पुत्रलाभ कराने वाली) कहा गया है ।

श्वेतपुष्पा (सफेद फूल वाली) कंटकारी, जिसके पत्तों पर लालरंग के बिन्दु हों, लक्ष्मणा ओषधि मानी गयी है । पुत्र-जननार्थ सफेद कंटकारी का प्रयोग अचूक पाया गया है । इसके सेवन से पुत्रलाभ अवश्य होता है ।[८१]

**६१. स्तन का दूध बढ़ाना**—अथर्ववेद आदि में कतिपय ओषधियों का उल्लेख है, जो स्त्री आदि के स्तन का दूध बढ़ाती हैं । ये हैं—पिप्पली (पीपर, शब्द १४०) । इसको ही वातीकृतभेषजी, अतिविद्धभेषजी एवं क्षिप्तभेषजी कहते हैं । पाषाणभेद के साथ इसका प्रलेप स्तनों पर करने से दूध अत्यधिक पैदा होता है ।[८२]

अरुन्धती ओषधि को सहदेवी भी कहते हैं । इसके अन्य नाम हैं—जीवला, जीवन्ती, सहमाना, सहस्वती, त्रायमाणा, विषदूषणी आदि । पशुओं का दूध बढ़ाने में इसका उपयोग होता है ।[८३]

अथर्ववेद में औदुम्बर मणि अर्थात् उदुम्बर (गूलर) की माला के धारण से पशुओं के दूध की वृद्धि का उल्लेख है ।[८४] अथर्ववेद में बिस (पद्मकन्द, कमल की जड़) का उल्लेख है । यह दुग्धवर्धक और रक्तविकार-नाशक है । भसीडे में भी ये गुण होते हैं ।[८५]

**६२. स्त्री-सौन्दर्य की वृद्धि**—अथर्ववेद में आसुरी ओषधि का उल्लेख है ।[८६] इसको 'मांपश्यम्' अर्थात् 'मेरी ओर देखो' कहा गया है । इसका अभिप्राय यह है कि यह स्त्री के सौन्दर्य को बढ़ाती है और दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करती है । वैद्यक शब्दसिन्धु में सफेद सरसों को आसुरी कहा गया है । अथर्वपरिशिष्ट के आसुरी कल्प (३५) में इसका अर्थ राजिका (राई) किया गया है । भावप्रकाश निघण्टु में

राजिका (राई, Mustard Seeds) को आसुरी कहा गया है ।[८७] राजानिघण्टु का कथन है कि सफेद सरसों देह की कान्ति को बढ़ाती है, सुकुमारता लाती है और शरीर की अशोभा दूर करती है । सरसों का उबटन शरीर पर लगाने से शरीर की शोभा बढ़ती है । इसके प्रयोग से स्त्री पति को अपने वश में कर लेती है ।

अथर्ववेद में सहस्रपर्णी ओषधि का उल्लेख है ।[८८] यह शंखपुष्पी है । इसको न्यस्तिका, सुभंगकरणी, संवननी, बभ्रु, कल्याणी आदि कहते हैं । यह वीर्यवर्धक, सौभाग्यकारक और वशीकरण ओषधि कही गयी है । सौभाग्य के लिए इसकी जड़ हाथ में बांधने का विधान है । यह मेधावर्धक और मानसिक रोगों को नष्ट करने वाली है । यह रसायन है । यह स्मृति, कान्ति और बल बढ़ाती है ।[८९] इसके द्वारा स्त्री पति को अपने वश कर लेती है ।

अथर्ववेद में अंजन या आञ्जन के गुणों का वर्णन है ।[९०] इसमें अंजन को सौन्दर्य, तेज ओज और सौभाग्य का सूचक कहा गया है । अंजन के प्रयोग से व्यक्ति पर किसी की कुदृष्टि नहीं लगने पाती ।[९१] अंजन में नदी का-सा प्रवाह है और बिजली का-सा तेज, अतः उससे सौन्दर्य की प्राप्ति होती है ।[९२] पर्वतीय सौवीर अंजन अधिक लाभप्रद है । यह चौगुना लाभ देता है ।[९३]

## (ढ) गुप्त रोग

**६३. अर्शरोग (बवासीर, Piles)**—इसका विस्तृत वर्णन चर्मरोग प्रकरण में दिया गया है ।

**६४. स्वप्नदोष (Emission)**—सोते हुए वीर्य के स्खलित हो जाने को स्वप्नदोष कहते हैं । इसके लिए जल-चिकित्सा सर्वोत्तम है । अथर्ववेद में दुष्वप्न अर्थात् बुरे स्वप्न आना और स्वप्नदोष की चिकित्सा जल बताया गया है ।[९४] टब में बैठकर कटिस्नान और सोते समय पैरों को धोकर सोना इसके लिए विशेष लाभप्रद है । सोने से पूर्व शीतल जल से स्नान, रात्रि में नाभि पर गीला कपड़ा रखना, सोने से पूर्व मूत्रेन्द्रिय को धोना स्वप्नदोष को रोकते हैं । यदि स्वप्नदोष अधिक होता हो तो रात्रि में सोते समय उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) और नाभि के मध्य में वस्त्र भिगोकर रखें । इससे विशेष लाभ होता है । मूत्रेन्द्रिय के अग्र भाग को जल में भीगे वस्त्र से धीरे-धीरे रगड़ना या उस पर जल की धार छोड़ना और मूत्रेन्द्रिय को ठंडे जल में ५ या ७ मिनट रखना विशेष लाभकारी है ।

अथर्ववेद का कथन है कि आंजनमणि के उपयोग से भी स्वप्नदोष दूर होता है ।[९५] इसका अभिप्राय यह है कि रात्रि में सोते समय सौवीर अंजन लगाने से स्वप्न-संबन्धी रोग दूर होते हैं । (देखो आञ्जन शब्द ३०)

**६५. अक्षपराजय एवं नपुंसकता (Impotency)**—शरीर में शुक्र धातु (वीर्य) की उत्पत्ति न होना, अथवा शुक्र की ऐसी क्षीणता या निर्बलता, जिससे सन्तान उत्पन्न न हो सके, नुपंसकता रोग है। अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ या पुष्करमूल, पोहकरमूल) ओषधि को इसकी चिकित्सा बताया गया है। वेद का कथन है कि यह जन्मजात नपुंसकता और अण्डकोश के दोषों को दूर करता है।[९६] कुष्ठ (कूठ) का ही एक भेद पुष्करमूल या पोहकरमूल है। दोनों के गुण प्रायः समान हैं।

अपामार्ग (चिरचिटा) ओषधि के सेवन से भी पुरुष के प्रजननेन्द्रिय की निर्बलता दूर होती है।[९७] प्रजननेन्द्रिय की दुर्बलता को अक्षपराजय रोग कहते हैं। वीर्य का शीघ्र निकल जाना या जननेन्द्रिय का निर्बल होना अक्षपराजय है। ऐन्द्रजालिक 'कामरत्न' ग्रन्थ का कथन है कि रक्त अपामार्ग (लाल चिरचिटा) की जड़ को कमर में बांधने से वीर्य-स्तम्भन की शक्ति बढ़ जाती है।[९८]

अथर्ववेद में वाजीकरण (जननेन्द्रिय को शक्ति देने वाली) ओषधि के रूप में वृषा ओषधि का उल्लेख है।[९९] वृषा शब्द कपिकच्छु (केवांच या कौंच) के लिए है।[१००] इसके बीज वातनाशक और अत्यन्त वाजीकरण हैं। पाश्चात्य सिद्धान्त के अनुसार कौंच के बीज नाड़ियों को ताकत देने वाले, आर्तवरजःस्रावकारी और शक्तिवर्धक हैं। इसके बीजों की खीर बनाकर शुक्रक्षीणता, वातव्याधि आदि के रोगी को सेवन करना चाहिए।[१०१] अश्वगन्धा (असगंध) ओषधि को भी वृष कहते हैं।[१०२] यह भी शक्तिवर्धक और वाजीकरण है।

अथर्ववेद में अर्क (आक, मदार) को भी वाजीकरण बताया गया है।[१०३] कामरत्न में वाजीकरण प्रकरण में लिखा है कि सफेद आक की जड़ को घिसकर गाय के दूध के साथ सात दिन पीने से वाजीकरण लाभ प्राप्त होता है और वृद्ध भी युवा हो जाता है।

अथर्ववेद मे कल्याणी (माषपर्णी, पृश्निपर्णी, पिठवन) ओषधि को काम-शक्तिवर्धक और वाजीकरण बताया गया है।[१०५] राजनिघण्टु में माषपर्णी का नाम कल्याणी दिया गया है। इसके विषय में निघण्टु ग्रन्थों में कहा गया है कि यह 'महावृष्या' अर्थात् शुक्र बढ़ाने वाली और वाजीकरण है।[१०६] भावप्रकाश में भी इसे रसायन और शुक्रवर्धक बताया गया है।[१०७]

अथर्ववेद में बभ्रु का उल्लेख है। यह सहस्रपर्णी (शंखपुष्पी) का विशेषण है।[१०८] शंखपुष्पी से श्वेत पुष्प वाली शंखपुष्पी का ग्रहण होता है। यह वीर्यवर्धक, स्नायुतन्तुओं को लाभकर और रसायन है।[१०९] यजुर्वेद और अथर्ववेद में न्यग्रोध (वट, बड़) का उल्लेख है। सूजाक और शुक्रक्षीणता में इसका प्रयोग होता है। (देखो न्यग्रोध, शब्द १२९)

**६६. धातुरोग, धातुक्षय**—शुक्र या वीर्य-संबन्धी रोगों को धातुरोग कहते हैं । वीर्य का ठीक न बनना या असमय निकल जाना धातुरोग हैं । अथर्ववेद में आजंन (अंजन) को धातुरोगों की ओषधि कहा गया है ।[११०] पर्वतीय अंजन को स्रोतोंजन या काला सुरमा कहते हैं । सफेद सुरमा कुछ पीलापन लिए हुए होता है, इसे सौवीर अंजन कहते हैं । दोनों में काला सुरमा अधिक गुणकारी है ।[१११]

**६७. सूजाक (Gonorrhoea)**—यह संभोग-जन्य रोग है । इसमें मूत्रनली या योनि में सूजन हो जाती है । वेदों में निम्नलिखित ओषधियों का उल्लेख है । ये सूजाक में लाभकारी हैं:—न्यग्रोध (वट या बड़, शब्द १२६), पुनर्नवा (पुनर्नवा, शब्द १४५) । भंग या भंगा (भांग या गांजा) । सूजाक और ग्रहणी (दस्त, पेचिश) में इसका प्रयोग होता है । (देखो शब्द १६८)

**६८. भगन्दर (Fistula in the anus)**—यह मलद्वार या गुदा में नाडीव्रण या नासूर है । अष्टांगहृदय का कथन है कि हाथी घोड़ा आदि की सवारी से, कठिन और उत्कट (उकडूँ) आसनों के करने से, अतिमैथुन से, मल-मूत्र का वेग रोकने से, दस्त पेचिश आदि से गुदा के अन्दर या बाहर एक या दो अंगुल की दूरी पर प्रायः पिटिका (फोड़ा) होकर बाद में वह व्रण रक्त एवं मांस में जाने लगता है । चिकित्सा न करने पर वह भग और गुदा को फाड़ देता है । बाद में बहुत से सूक्ष्म छेदों में से धीरे-थीरे मल-मूत्र और शुक्र निकलने लगता है ।[११२]

भगन्दर के रोगी के लिए आवश्यक है कि उसका पेट साफ रहे । अजीर्ण या कब्ज का रहना उसके लिए हानिकारक है ।[११३] त्रिफला का सेवन उसके लिए लाभप्रद है । पेट की शुद्धि के लिए त्रिफला खावे और त्रिफला का रस घाव पर लगावे ।

अथर्ववेद आदि में निम्नलिखित ओषधियों का उल्लेख है । ये ओषधियां भगन्दर में लाभप्रद हैं:—अर्क (आक, मदार) का दूध थूहर (सेहुण्ड) के रस के साथ भगन्दर या नासूर का मुख बन्द करने के लिए दिया जाता है ।[११४](अर्क, शब्द १७) । स्रेकपर्ण (करवीर या कनेर वृक्ष) की जड़ की छाल भगन्दर के व्रण को ठीक करने के लिए उपयोगी है । (स्रेकपर्ण, शब्द २७६)

**६६. उपदंश (Syphilis,सिफिलिस, फिरंग, गरमी, आतशक)**—यह अति भयंकर रति रोग है । इसमें मैथुन की उत्कट अभिलाषा होती है । अष्टांगहृदय में उपदंश के कतिपय कारण ये बताये गये हैं:—न चाहती हुई स्त्री के साथ मैथुन या बलात्कार करने से, रोगी या अगम्य योनि में संभोग करने से, पशु आदि की अन्य योनि में मैथुन करने से, दोषग्रस्त तंग मलिन एवं छोटी योनि के सेवन से,

नवप्रसूता के साथ मैथुन करने से, मैथुनेच्छा बढ़ाने के लिए तीक्ष्ण प्रलेप आदि गुह्यभाग पर लगाने आदि से उपदंश आदि रोग होते हैं।[११५]

अष्टांगहृदय में इसकी एक सरल चिकित्सा बतायी गई है कि मिट्टी के घड़े आदि में त्रिफला को जला ले और उसे घी में मिलाकर लगावे। यह उपदंश की उत्तम चिकित्सा है।[११६]

अष्टांगहृदय में एक अन्य चिकित्सा दी है कि आम, जामुन, चमेली, कदम्ब के कोमल पत्ते, बेर बेल ढाक और बरगद की छाल और त्रिफला को लेकर पानी में पकाकर इनका काढ़ा बना ले। इस काढ़े को घाव को धोने के काम में लावे। उक्त चीजों से पका हुआ तेल भी घाव भरने के लिए उत्तम है।[११७]

अथर्ववेद आदि में निम्नलिखित ओषधियों का उल्लेख है। ये ओषधियां उपदंश रोग के लिए हितकर हैं:—

अर्क (आक, मदार) का दूध उपदंश या फिरंग रोग के लिए विशेष लाभप्रद है। अतः इसे उद्भिज पारद कहते है।[११८] (अर्क, शब्द १७)। पीतुदारु, देवदारु (देवदार, शब्द १४१) की लकड़ी का काढ़ा गोनोरिया और फिरंग रोग में शक्तिशाली रसायन के रूप में सेवन करना चाहिए।[११९] मण्डूकी (मण्डूकपर्णी, शब्द १७१) यह ब्राह्मी का ही एक भेद है। मण्डूकपर्णी का मूल (जड़) उष्ण और रसायन है। यह चर्मरोग, फिरंग क्षत, खुजली आदि में प्रयुक्त होता है। इसकी जड़ की पुलटिस या प्रलेप सिफिलिस के लिए लाभप्रद है। इसकी जड़ का चूर्ण भी घाव पर लगाया जाता है।[१२०]

सोम (सोमलता, शब्द २७५) शब्द से एफेड्रा (Ephedra) ओषधि का भी ग्रहण होता है। इसकी लकड़ी और जड़ का क्वाथ (काढ़ा) फिरंग या सिफिलिस रोग को नष्ट करता है।[१२१] स्रेकपर्ण (करवीर, कनेर शब्द २७६) के मूलत्वक् (जड़ की छाल) के लेप से फिरंग के घाव, शिश्नक्षत (मूत्रेन्द्रिय के घाव) आदि रोग ठीक होते हैं।[१२२]

गुग्गुलु (गूगल, शब्द ८५) के विषय में प्रो० वाट का कथन है कि यह फिरंग रोग, कुष्ठ और वात रोगों में लाभप्रद है।[१२३]

●

---

**(क) ज्वर आदि रोग**

१. ज्वरस्तु खलु... सर्वप्राणभृतां प्राणहरः, देहेन्द्रियमनस्तापकरः, ज्वरयति शरीराणीति ज्वरः, सर्वरोगाधिपतिः, सर्वे प्राणभृतः सज्वरा एव जायन्ते सज्वरा एव म्रियन्ते। चरक, निदान० १.३५

२. देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ।
ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ।। चरक, चिकित्सा० ३.४
३. ज्वरो विकारो रोगश्च व्याधिरातङ्क एव च ।
एकोऽर्थो नामपर्यायैर्विविधैरभिधीयते ।। चरक, चिकित्सा० ३.११
४. तस्य प्रकृतिरुद्दिष्टा दोषाः शारीरमानसाः ।
देहिनं नहि निर्दोषं ज्वरः समुपसेवते ।। चरक, चिकित्सा० ३.१२
५. यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः । अ० १.२५.३
यदि शोको यदि वाभिशोको० । अ० १.२५.३
६. अथर्व० ५.४.१ से १०
७. कुष्ठेहि तक्मनाशन० । अ० ५.४.१
शीर्षामयम्... अक्ष्योस्तन्वो रपः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद्० । अ० ५.४.१०
८. अ० ४.५.२, ७, ८
९. भावप्रकाश, हरीतक्यादि० १६४-१६६, पृष्ठ ५८ से ६०
१०. स कुष्ठो विश्वभेषजः । अ० १९.३९.६ से ८
११. शीर्षलोकं तृतीयकं० । अ० १९.३९.१०
१२. विश्वभेषजो जङ्गिडस्करत् । अ० १९. ३५. ५
१३. तक्मानं विश्वशारदम् अरसां जङ्गिडस्करत् । अ० १९.३४.१०
१४. न तं यक्ष्मा अरुन्धते० ।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते । अ० १९.३८.१
१५. भाव० कर्पूरादि० ४०-४१ । पृष्ठ १०७ से १०९
१६. आञ्जनं त्रैककुभम् आङ्क्ते । मैत्रायणी सं० ३.६.३
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि । अ० ४.९.९
१७. यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे । अ० ४.९.१०
१८. अथर्व० ४.९.१ से १०; १९.४४.१ से १०; १९.४५.१ से ५
१९. पैप्प० १.५५.१ से ४; ८.३.१ से १३
२०. त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः । अ० ४.९.८
२१. यस्याञ्जन प्रसर्पसि-अङ्गमङ्गं परुष्परुः । अ० ४. ९. ४
२२. स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः ० । अ० ४.१०.१
२३. शंखेनामीवाममतिं ० ।
शंखो नो विश्वभेषजः कृशनः । अ० ४.१०.३
२४. तत् ते बध्नामि-आयुषे वर्चसे बलाय... शतशारदाय० । अ० ४.१०.७
२५. पिप्पली क्षिप्तभेषजी० वातीकृतस्य भेषजीम्० । अ० ६.१०९. १ से ३
२६. भावप्रकाश० हरीतक्यादि० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
२७. अग्निस्तक्मानमप बाधताम् सोमो ग्रावा वरुणः० ।
वेदिर्बर्हिः समिधः । अथर्व० ५.२२.१
२८. अधा हि तक्मन् अरसो हि भूयाः,
अधा न्यङ् अधराङ् वा परेहि ।। अ० ५.२२.२
२९. दासीं निष्टक्वरीमिच्छ० । अ० ५.२२.६
शूद्राम् इच्छ० । ५.२२.७
३०. भावप्रकाश० गुडूच्यादि० २५४-२५५ । पृष्ठ २५५
३१. भावप्रकाश० कर्पूरादि० ८९ से ९१ । पृष्ठ १३० से १३३

३२. या रोहन्ति पुनर्नवाः । अ० ८.७.८
३३. भावप्रकाश, गुडूच्यादि० २३५ से २३७ । पृष्ठ २४४ से २४५
३४. वरणो वारयातै.... यक्ष्मः । अ० १०. ३. १ से २५
३५. अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः । अ० १०.३.३
३६. भाव० वटादि० ६५-६६ । पृष्ठ ३५६-३५७
द्रव्यगुणविज्ञान, भाग ४, प्रियव्रत शर्मा, पृष्ठ १२६-१३०
३७. अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये । अ० ६.८५. ३
३८. कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि । अ० २.३३.७
३९. अष्टांगहृदय,निदान स्थान, अध्याय १.१९ से २३
४०. अष्टांग० निदान०, अ० २७ से ३३
४१. अष्टांग०, ज्वर चिकित्सित० अध्याय १.१५४ से १६६
४२. दैवाश्रयं च भैषज्यं ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति ।
विशेषाद् विषमान् प्रायस्ते ह्यागन्त्वनुबन्धजाः । अष्टांग० १.१६५
४३. यथास्वं च सिरां विध्येद् अशान्तौ विषमज्वरे । अष्टांग० ज्वर० १.१६६
४४. स कुष्ठो विश्वभषेजः० । तक्मानं सर्वं नाशय । अ० १९. ३९. ६
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं च० । अ० ५.४.९
४५. अथर्वपरि० ३५.१.१४-१५
४६. भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते । अ० १९.३८.१
४७. मणिं.... खदिरमोजसे । अथर्व० १०. ६. ७
४८. आर० एन० खोरी, मेटीरिया मेडिका, भाग२, पृष्ठ १८४
४९. अथर्व० ४.९.१ से १० । २. ४.१-६ । १९.३४, १-१० । १९.३६, १-६ ।
५०. अष्टांग० निदान० ५.४
५१. अष्टांग० चिकित्सित० ५.१-५, १९-२०
५२. दैवव्यपाश्रयं तत्तद् अथर्वोक्तं च पूजितम् । अष्टांग० चि० ५.८३
५३. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कम्,
अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् । ऋग्० १०.१६१.१ । अथर्व० ३.११.१; २०.९६.६
५४. तैत्ति० २.३.५.२; २.५.६.५ । काठक० ११.३, मैत्रा० २.२.७
५५. राजानं यक्ष्म आरदिति तद् राजयक्ष्मस्य जन्म, यत् पापीयान् अभवत् तत् पापयक्ष्मस्य,
यत् जायाभ्योऽविन्दत् तत् जायेन्यस्य । तैत्ति० २. ३. ५. २
५६. आदित्यं चरुं निर्वपेत्, आदित्या अंशुम् आप्याययन्ति । तैत्ति० २.३.५.२
५७. यत् जायाभ्याम् अविन्दत् । तैत्ति० २.५.६.५
५८. यो दर्शपूर्णमासयाजी सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहोति । तैत्ति० २.५.६.३
५९. ऋतं ब्रूहीति । मैत्रायणी० २.२.७
६०. अनृते यक्ष्मोऽगृह्णात् । ओजो वै वीर्यम् । काठक० ११.३
६१. हविषा जीवनाय०, शतायुषा हविषा० । ऋग् १.१६१, १, ३
६२. सत्यस्य हस्ताभ्याम् उदमुञ्चद् बृहस्पतिः । अ० ३.११.८
६३. पिब कलशे सोमम्०, आ वृषस्व । अ० ७. ७ ६. ६
६४. पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पूरुषम् । अ० ७.७६.४
६५. तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे । अ० ७.७६.५
६६. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान अध्याय ८,
सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र, अध्याय ४१
अष्टांगहृदय, निदानस्थान ५, चिकित्सितस्थान अध्याय ५

६७. तां वेदविहितामिष्टिम् आरोग्यार्थी प्रयोजयेत् । चरक, चिकित्सा० ८.१८९
दैवव्यपाश्रयं तत्तद् अथर्वोक्तं च पूजितम् ।
अष्टांग० चिकित्सित० ५.८३
६८. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कम्,
अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् । अ० २०.९६.६
६९. चीपुद्रुः । परा तमज्ञातं यक्ष्मम् अधराञ्चं सुवामसि । अ० ६.१२७.३
७०. यदेनसो मातृकृतात् शेषे पितृकृताच्च यत् ।-अ० ५.३०.४
७१. अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियम्० । अ० ४.१८.७
७२. अपामार्गान् सक्तून् कृत्वा....जुहोति । मैत्रायणी० २.६.३
७३. भावप्रकाश, गुडूच्यादि० २१७ से २२१ । पृष्ठ २३७ से २३९
७४. हरिणस्य... शीर्षणि भेषजम् । स क्षेत्रियम्... अनीनशत् । अ० ३.७.१
७५. विषाणे वि ष्य...यदस्य क्षेत्रियं हृदि । अ० ३.७. २ और ३
७६. भैषज्य रत्नावली, शूलरोगाध्याय ५४
७७. उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चताम्० । अ० २.८.१
७८. बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य, यवस्य ते पलाल्या, तिलस्य तिलपिंज्या
वीरुत् क्षेत्रियनाशनी० । अ० २.८.३
७९. नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः ।
नमः क्षेत्रस्य पतये । अ० २.८ ४-५
८०. वीरुत् क्षेत्रियनाशनी अप क्षेत्रियम् उच्छतु । अ० २.८.२ से ५
८१. आपो विश्वस्य भेषजीः, तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् । अ० ३.७.५
८२. पैप्प० १.५५, १ से ४; ३.८.१ से १३
८३. श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत् सहासिम ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे ।। अ० ७.६५.३
८४. भावप्रकाश गुडूच्यादि० २१७ से २२१ । पृष्ठ २३७ से २३९
८५. उद्यन्नद्य मित्रमह...हरिमाणं च नाशय । ऋग्० १.५०.११
अनुसूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि । अ० १.२२.१
८६. गावो या उत रोहिणीः । अ० १.२२.३
८७. अथो हरितभेषजम् । अ० ४.९.३
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः० । अ० २.४. १ से ६
८८. या रोहन्ति पुनर्णवाः । अ० ८.७.८
भाव० गुडूच्यादि० २३५-२३७ । पृष्ठ २४४-२४५
८९. शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अ० १.२२.४
९०. पिप्पली... वातीकृतस्य भेषजीम्० । अ० ६.१०२.१ से ३
भाव० हरीतक्यादि० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १९
९१. अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि । अ० १.२२.४
९२. पक्षी जायान्यः पतति । अ० ७.७६.४
९३. यस्य कृण्मो हविर्गृहे । अ० ७.७६.५
९४. जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् । २.४.२
९५. या व्याघ्रं विषूचिका० । यजु० १९.१०
९६. सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीम् अमीवा या नो गयमाविवेश । अ० ७.४२.२

९७. बदरैरुपवाकाभिर्भेषजम् । मैत्रा० ३.११. २ और ६
९८. भाव० हरीतकी० १५० से १५२ । पृष्ठ ४८ से ५१
९९. स कुष्ठो विश्वभेषजः । अ० १९.३९.६
१००. भाव० हरीतकी० १६४ । पृष्ठ ५८ से ६०
१०१. दूर्वा रोहन्तु । अ० ६.१०६.१ । भाव० गुडू० पृष्ठ २१३-२१४
१०२. दर्भो भङ्गो यवः । अ० ११.६.१५
१०३. भाव० हरीतकी० २१८ ।। पृष्ठ ८५ से ८७

**(ख) वातजरोग**

१. पिप्पली.... वातीकृतस्य भेषजीम् । अ० ६.१०९. १ से ३
२. पिप्पल्यः....न स रिष्याति पूरुषः । अ० ६.१०९.२
३. अथर्व० ६.१०९. १ से ३
४. भाव० हरीतक्यादि० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
५. पिप्पली क्षिप्तभेषजी-उतातिविद्धभेषजी । अ० ६.१०९. १ से ३
६. विषाणका नाम...... वातीकृतनाशनी । अ० ६.४४.३
७. भाव० गुडू० २५७-२५९ । पृष्ठ २५६-२५७
८. स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति । अ० १९.३९.५
९. भाव० हरीत० १६४ । पृष्ठ ५८ से ६०
१०. शां० गृ० १.१२.९; ४.१७.३
११. भाव० फलादि० ९३-९५ । पृष्ठ ३२१ से ३२२
१२. सोमो वीरुधामधिपतिः । अ० ५.२४.७
१३. भाव० गुडू० २६१ तथा परिशिष्ट पृष्ठ ५५१-५५२
१४. पिप्पली क्षिप्तभेषजी । अ० ६.१०९. १ से ३
१५. भाव० हरी० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
१६. तलाशा वृक्षाणाम्० । अ० ६.१५.३
१७. भाव० कर्पूरादि १०० । पृष्ठ १३५-१३६
१८. अथर्व परि० १.४४.१०, ५.१.५
१९. भाव० हरी० ९८-९९ । पृष्ठ ३२-३३
२०. तं शम्याः शमीत्वम् । मैत्रा० १.६.५ । शमीम्, अ० ६.११.१
२१. भाव० वटादि० ७२-७३ । पृष्ठ ३५८
२२. ते खर्जूरा अभवन् । तैत्ति० २.४.९.२
२३. भाव० फलादि० ११५ से १२१ । पृष्ठ ३२७-३२८
२४. दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्याः । अ० २.९.१
२५. अ० २.९.३
२६. चरक, अपस्मार चि०, अध्याय १०
२७. भाव० गुडू० १२ से ४७ । पृष्ठ १४५ से १५९
२८. पीतुदारुर्भवति । काठक २५.६
पूतुद्रुर्नाम भेषजम् । अ० ८.२.२८
२९. भाव० कर्पूरादि० २३-२४ । पृष्ठ १०४-१०५
३०. पिप्पली... वातीकृतस्य भेषजीम् । अ० ६.१०९. १ से ३
३१. भाव० हरी० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
३२. बदरैरुपवाकाभिर्भेषजम् । मैत्रा० ३.११.२

३३. भाव० हरीतकी० १५०-१५२ । पृष्ठ ४८ से ५१
३४. विभीतको जागृविः० । ऋग् १०.३४.१
३५. भाव० हरी० ३४ से ३६ । पृष्ठ ८ से ९
३६. महान् वै भद्रो बिल्वः । अ० २०.१३६.१५
३७. भाव० गुडू० १२-१३ । पृष्ठ १४६-१४७
३८. शां० गृ० १.१२.६
३९. भाव० फलादि० ६३-६५ । पृष्ठ ३२१ से ३२२
४०. सक्तूनां रूपं बदरम् । यजु० १९.२२
४१. भाव० फलादि० ६६-७५ । पृष्ठ ३१६-३१७
४२. पर्णे वो वसतिष्कृता । ऋग्० १०.९७.५
४३. भाव० वटादि० ४९-५३ । पृष्ठ ३५२
४४. खदिरस्य सारम् । ऋग्० ३.५३.१९ । अथर्व० १०.६.७
४५. भाव० वटादि० ३० से ३२ । पृष्ठ ३४५-३४६
४६. न्यग्रोधा महावृक्षाः । अ० ४.३७.४
४७. भाव० वटादि० १-२ । पृष्ठ ३३६
४८. महान् वै भद्रो बिल्वः । अ० २०.१३६.१५
४९. भाव० गुडू० १२-१३ । पृष्ठ १४५ से १४७
५०. आशरीकं विशरीकं बलासम्० । अ० १९.३४.१०
५१. बदरैरुपवाकाभिर्भेषजम् । मैत्रा० ३.११.२
५२. भाव० हरीतकी० १५०-१५२ । पृष्ठ ४८ से ५१
५३. अश्वत्थात् खदिरात्० । अ० ५.५.५
५४. भाव० वटादि० ३० से ३२ । पृष्ठ ३४५-३४६
५५. महान् वै भद्रो बिल्वः । अ० २०.१३६.१५
५६. भाव० गुडू० १२-१३ । पृष्ठ १४६-१४७
५७. मण्डूकी....अप्सु शं भुवः । अ० १८.३.६०
५८. भाव० गुडू० २८२-२८४ । पृष्ठ २६४-२६६
५९. सुकिंशुकं शल्मलिम् । ऋग् १०.८५.२०
६०. भाव० वटादि० ५४-५५ । पृ० ३५३-३५४
६१. महान् भद्र उदुम्बरः । अ० २०.१३६.१५
६२. भाव० वटादि० ८-९ । पृष्ठ ३३९
६३. पिपीलिकावटः । अ० २०.१३५.३
६४. भाव० वटादि० १-२ । पृष्ठ ३३६.३३७
६५. नादकर्णी, (M. M. Vol. I) पृष्ठ ५४३
६६. शल्मलिर्वृद्ध्या । यजु० २३.१३
६७. भाव० वटादि० ५४-५५ । पृष्ठ ३५३-३५४

**(घ) कफज रोग**

१. कासः । अ० १.१२.३ । कासे (कासा) । अ० ६.१०५. १ से ३
कासिकया (कासिका) । अ० ५.२२.१२
२. एवा त्वं कासे प्रपत० । अ० ६.१०५. १ से ३
३. मनसोऽनु प्रवाय्यम् । पृथिव्या अनु संवतम् ।
समुद्रस्यानु विक्षरम् । अ० ६.१०५. १ से ३

४. अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र । पृष्ठ १६३
५. समुद्रफेनः....कफहृत् । भाव० हरी० ११३ । पृष्ठ ३६
६. मुञ्ज...कासः... वनस्पतीन् सचतां पर्वतांश्च । अ० १.१२.३
७. पिप्पली अतिविद्धिभेषजी । अ० ६.१०६. १ से ३
८. भाव० हरी० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
९. विभीदको जागृविः । ऋग्० १०.३४.१
१०. भाव० हरी० ३४ से ३६ । पृष्ठ ८-९
११. मदुघान्मधुमत्तरः । अ० १.३४.४
१२. भाव० हरी० १३८-१३९ । पृष्ठ ४२-४४
१३. माषाश्च मे । यजु० १८.२ । अ० १२.२.५३
१४. भाव० धान्य० ४१-४३ । पृष्ठ ३६४
१५. तौ वृषश्च यवाषश्च० । काठक० ३०.१
१६. भाव० गुडू० २०८-२११ । पृष्ठ २३३-२३५
१७. उद् वंशमिव येमिरे । ऋग्० १.१०.१
१८. भाव० गुडू० १.४५-१४८ । पृष्ठ २०७-२०८
भाव० हरी० १११-११२ । पृष्ठ ३८-३९
१९. तौ वृषश्च यवाषश्चाभवताम् । काठक० ३०.१
२०. भाव० गुडू० ८३ से ८५ । पृष्ठ १७७ से १७९
२१. अष्टांगहृदय, चिकित्सित० ३.१६ और १७
२२. हृदो बलासमङ्गेभ्यो० । अ० ९.८.८
अस्थिस्रंसं परुस्रंसम् आस्थितं हृदयामयम् ।
बलासं सर्वं नाशय-अङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु । अ० ६.१४.१
यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ । अ० ६.१२७.२
२३. बलास... वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुः । अ० ६.१२७.२
२४. अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः । अ० २.४.३
२५. आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदम् अरसां जङ्गिडस्करत् ।। अ० १९.३४.१०
२६. यदाञ्जनं त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे । अ० ४.९.९-१०
२७. त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः । अ० ४.९.८
२८. बलासं सर्वं नाशय । अ० ६.१४. १ से ३
अथो बलासनाशनीः ओषधीः । अ० ८.७.१०
२९. पिप्पली क्षिप्तभेषजी० । अ० ६.१०९. १ से ३
३०. भाव० हरी० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
३१. अ० १.२.४ और ९.३.४
३२. भाव० गुडू० १४५-१४८, पृष्ठ २०७-२०८
३३. पीतुदारुर्भवति । काठक० २५.६
३४. अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् । अ० ८.२.२८
३५. भाव० कर्पूरादि० २३-२४ । पृष्ठ १०४-१०५
३६. यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते । अ० १९.३८. १ से ३
३७. भाव० कर्पूरादि० ३१ से ४७ । पृष्ठ १०९
३८. तिलस्य तिलपिञ्ज्या । अ० २.८.३
३९. भाव० धान्य० ६२ से ६५ । पृष्ठ ३६६-३६७

४०. दूर्वा रोहन्तु । अ० ६.१०६.१
४१. भाव० गुडू० १६४-१६८ । पृष्ठ २१३-२१४
४२. शां० गृ० १.१२.६
४३. भाव० फलादि० ६३-६५ । पृष्ठ ३२१ से ३२२
४४. व्रीहिर्यवश्च भेषजौ । अ० ८.७.२०
४५. भाव० धान्य० २७-३० । पृष्ठ ३६२
४६. शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा । अ० १६.३६. १ से ६
४७. मण्डूकी... अप्सु शं भुवः । अ० १८.३.६०
४८. भाव० गुडू० २८२-२८४ । पृष्ठ २६४-२६६
४६. निःसालां धृष्णुम् । अ० २.१४.१
५०. भाव० वटादि० १६ से २१ । पृष्ठ ३४२
५१. अथर्व० १. सूक्त २३ और २४ । ५.४. १ से १० । १६.३६. १ से १०
५२. इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् । अ० १.२३.१
५३. दारुणं चारुणं श्वित्रं किलासं नामभिस्त्रिभिः ।
दोषे रक्ताश्रिते रक्तं, ताम्रं मांससमाश्रिते ।
श्वेतं मेदःश्रिते श्वित्रं गुरु तच्चोत्तरोत्तरम् । माधवनिदान
५४. अष्टांग० निदान स्थान, १४.१ से ३
५५. सर्वं कृष्णाति तद् वपुः । वही ४-५
५६. वही, श्लोक ६ से ७
५७. वही, श्लोक ३३ से ३६
५८. अष्टांगहृदय, चिकित्सितस्थान, १६.१, १२ से १३
५६. ललाटहस्तपादेषु शिराश्चास्य विमोक्षयेत् । वही, श्लोक १५
६०. भास्कराराधनानि... कुष्ठमुन्मूलयन्ति । वही, श्लोक ६८
६१. वही, श्लोक २५ से २७
६२. दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् । अ० १.२३.४
६३. अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि । अ० १.२३.४
६४. शरीरे षट् त्वचः । तद्यथा--उदकधरा त्वग् बाह्या, द्वितीया त्वसृग्-धरा, तृतीया सिध्मकिलाससंभवाधिष्ठाना० । चरक, शारीर० ७.४
६५. नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् । । अ० १.२३.१
ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् । अ० १.२३.४
आसुरी... किलासभेषजम् इदं किलासनाशनम् । अ० १.२४.२
श्यामा सरूपंकरणी... पुना रूपाणि कल्पय । अ० १.२४.४
६६. भाव० गुडू० ७७-७८ । पृष्ठ १७२
६७. भाव० कर्पू० ३१-४३ पृष्ठ १०७ से १०६
६८. भाव० गुडू० ११३ से ११७ । पृष्ठ १६२ से १६५
६६. रामे कृष्णे० । अ० १.२३.१
७०. भाव० गुडू० २३२-२३३ । पृष्ठ २४२ से २४४
७१. रामे कृष्णे असिक्नि च । अ० १.२३.१
७२. भाव० गुडू० १६६-१६६ । पृष्ठ २२८-२३०
७३. भाव० पुष्पादि० ५८-५६ । पृष्ठ २६६-२६७
७४. भाव० गुडू० २३६-२३७ । पृष्ठ २४४-२४५

७५. भाव० हरी० ५३-५८ । पृष्ठ १४-१६
७६. रामे कृष्णे असिक्नि च । अ० १.२३.१
७७. सुश्रुत, चिकित्सा० ६.३७
७८. योगरत्नाकर, कुष्ठाधिकार
७६. श्यामा सरूपंकरणी । अ० १.२४.४
८०. इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् । अ० १.२३.१
८१. भाव० गुडू० २००-२०३ । पृष्ठ २३०-२३१
८२. भाव० हरी० १८४-१८५ । पृष्ठ ६६-७०
८३. आसुरी... किलासभेषजम् इदं किलासनाशनम् । अ० १.२४.२
८४. भाव० धान्य० ७२-७४ । पृष्ठ ३६८
८५. ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् । अ० १.२३.४
८६. भाव० हरी० १७३-१७४ । पृष्ठ ६४-६५
८७. यथा सर्वाणि कुष्ठानि हतः खदिरबीजकौ । सुश्रुत० चिकित्सा० ६.१६
८८. अष्टांग०, निदान० ७.१ से १४
८६. अष्टांग० चिकित्सित० ८.१ से ८; १८-१६
६०. अष्टांग० चिकि० ८.३८ से ४२, १६२
६१. नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि । यजु० १२.६७
६२. दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव । अ० २.२५.२
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचः० । अ० ४.१७.५
६३. सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्णी-अजायत । अ० २.२५.२
६४. अवाक्पुष्पी बला दार्वी पृश्निपर्णी त्रिकण्टकः ।
एतदर्शःस्वतीसारे रक्तस्रावे त्रिदोषजे ।। चरक, अर्शश्चि० २३४-२४०
६५. दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि । अ० ४.१७.५
६६. पिबेत् तण्डुलतोयेन कल्कितं वा मयूरकम् । अष्टांग० चिकि० ८.१०४
६७. दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव । अ० २.२५.२
६८. तत्राहुरेके शस्त्रेण कर्तनं हितमर्शसाम् ।
दाहं क्षारेण चाप्येके, दाहमेके तथाऽग्निना । चरक० चिकि० १४.३३ से ३६
६६. चतुर्विधोऽर्शसां साधनोपायः । तद्यथा-भेषजं क्षारोऽग्निः
शस्त्रमिति । सुश्रुत० चिकित्सा० ६.३ से १०
१००. तथैवार्शांसि सर्वाणि वृक्षकारुष्करौ हतः । सुश्रुत, चिकि० ६.१६
१०१. सुश्रुत० चिकि० ६.२२
१०२. भाव० गुडू० २००-२०३ । पृष्ठ २३०-२३१
१०३. शतवारो अनीनशद् मणिर्दुर्णामचातनः । अ० १६ ३६.१
१०४. भाव० गुडू० १७४-१७६ । पृष्ठ २१८-२१६
१०५. मदुघान्मधुमत्तरः । अ० १.३४.४
जिह्वामूले मधूलकम् । अ० १.३४.२
१०६. भाव० हरी० १३८-१३६ । पृष्ठ ४२-४४
१०७. हस्तेन कण्डूयेत पामनंभावुकाः प्रजाः स्यु० । तैत्ति० ६.१.३.८
पामना जायेरन् । काठक० २३.४
१०८. अयमर्कः... संसमकं कृणोतु । अ० ६.७२.१
१०६. भाव० गुडू० ६५ से ७० । पृष्ठ १६५-१६६
११०. आसुरी...किलासभेषजम् । अ० १.२४.२

१११. भाव० धान्य० ७२-७४ । पृष्ठ ३६८
११२. मण्डूकी... अप्सु शं भुवः । अ० १८.३.६०
११३. भाव० गुडू० २८२-२८४ । पृष्ठ २६४-२६६
११४. स्रेकपर्णा० । मैत्रा० ४.१३.४ । काठक० १६.२१
११५. भाव० गुडू० ७६-८० । पृष्ठ १७३-१७४
११६. अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं० । अ० १.२२.४
११७. भाव० धातु० १२८-१३२ । पृष्ठ ३७७-३७८
११८. स्रेकपर्णाऽष्ठीवन्ता० । मैत्रा० ४.१३.४ । काठक० १६.२१
११६. भाव० गुडू० ७६-८० । पृष्ठ १७३-१७४
१२०. विसल्पस्य । अ० ६.८.२० । विसल्पकस्य । अ० ६.१२७.१
विसल्यस्य । अ० ६.१२७.३
१२१. तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् । अ० ६.१२७.२
१२२. अङ्गभेदो विसल्पकः.....निर्हन्त्वाञ्जनम् । अ० १६.४४.२
१२३. औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा । अ० १६.३१.१ से १४
१२४. दध्नो रूपं कर्कन्धूनि । यजु० १६.२३
१२५. भाव० फलादि० ६६ से ७४ । पृष्ठ ३१६-३१७
१२६. तैल्वकीम् अभिचरन् । मैत्रा० ३.१.६
१२७. भाव० वटादि० ७५-७६ । पृष्ठ ३५६
१२८. तौ वृषश्च यवाषश्च० । तौ वर्षेषु शुष्यतः । कठ० ४६.४ । काठक० ३०.१
१२६. भाव० गुडू० ८३-८५ । पृष्ठ १७७ से १७६
१३०. दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः । अ० ६.१०६.१
१३१. भाव० गुडू० १६४-१६८ । पृष्ठ २१३-२१४
१३२. ह्रदो वा पुण्डरीकवान् । अ० ६.१०६.१
१३३. भाव० पुष्पादि० १ से ५ । पृष्ठ २७६-२७७
१३४. प्लक्षात् । अ० ५.५.५
१३५. भाव० वटादि० ११-१२ । पृष्ठ ३४०
१३६. भूर्जो वै नामैष वृक्षः । मैत्रा० १.१०.१२
१३७. भाव० वटादि० ४७-४८ । पृष्ठ ३५१-३५२

**(च) घाव, चोट आदि**

१. अश्वत्थो देवसदनः । अ० ५.४.३
२. भाव० वटादि० ३ । पृष्ठ ३३७-३३८
३. पर्णे वो वसतिष्कृता । ऋग्० १०.६७.५
४. भाव० वटादि० ४६-५३ । पृष्ठ ३५२
५. पुष्करपर्णं पात्रम् । अ० ८.१४.६
६. भाव० हरी० १६५-१६६ । पृष्ठ ६०-६२
७. शिग्रवो यक्षवश्च । ऋग्० ७.१८.१६
८. भाव० गुडू० १००-१०५ । पृष्ठ १८६-१८८
६. प्लक्षात् । अ० ५.५.५
१०. भाव० वटादि० ११-१२ । पृष्ठ ३४०
११. वंशानां ते० । अ० ६.३.४
१२. भाव० गुडू० १४५-१४८ । पृष्ठ २०७-२०८

१३. अ० ६.८५.१ से ३
१४. जालाषेणाभिषिञ्चत० जालाषम् उग्रं भेषजम् । अ० ६.५७.२
१५. अथर्व० ५.५.१ से ६
१६. भद्रात् प्लक्षात्...अश्वत्थात् खदिराद् धवात् । अ० ५.५.५
१७. यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम् ।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः । अ० ५.५.४
१८. इदम् इद् वा भेषजम् इदं रुद्रस्य भेषजम् ।
येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ।। अ० ६.५७.१
१९. शाण्डदूर्वा व्यल्कशा । अ० १८.३.६
२०. भाव० गुडू० १६४-१६८ । पृष्ठ २१३-२१४
२१. सिलाची नाम वा असि० । अ० ५.५.१ से ६
२२. रोहण्यसि रोहणी-अस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी । अ० ४.१२.१ से ७
२३. यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे, यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
सं दधत् परुषा परुः । अ० ४.१२.७
२४. अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र, ब्रह्ममुनि, पृष्ठ ८६ से ६१
२५. पाटामिन्द्रो व्यश्नादसुरेभ्यः स्तरीतवे । अ० २.२७.४
२६. भाव० गुडू० १८२ से १८४ । पृष्ठ २२१-२२२
२७. भग्नसंधानकरी पित्तदाहातिसारशूलघ्नी । राजनि० व० ६
२८. पाटामिन्द्रो व्यश्नात्० । अ० २.२७.४
इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहौ । अ० २.२७.३
२९. यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते । अ० १९.३८.१ से ३
३०. भाव० कर्पूरादि० ३१ से ४३ । पृष्ठ १०७ से १०९
३१. शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः० । अ० १.१७.३
३२. उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ।। अ० २.३.४
३३. परि वः सिकतावती धनुः० । अ० १.१७.४
३४. सातवलेकर, अथर्व० सुबोध भाष्य । अ० १.१७.४ की व्याख्या ।
३५. अदो यदवधावति-अवत्कमधि पर्वतात् ।
तत् ते कृणोमि भेषजम्० । अ० २.३.१
३६. श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् । अ० ६.४४.२
३७. असृक्स्थानम् अथो आस्रावभेषजम् । पैप्प० २०.५४.३
३८. अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् ।
तदास्रावस्य भेषजम्० । अ० २.३.३ और ५
३९. पाटामिन्द्रो व्याश्नाद् असुरेभ्यः स्तरीतवे । अ० २.२७.४
४०. भाव० गुडू० ७७-७८ । पृष्ठ १७२-१७३
४१. आस्रावभेषजम्, विषाणका नाम वा असि । अ० ६.४४.१ से ३
४२. भाव० गुडू० २५७-२५९ । पृष्ठ २५६-२५७
४३. वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुः० । अ० ६.१२७.२
४४. विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य० । अ० ६.१२७.१ से ३
४५. भाव० कर्पूरादि० २५-२६ । पृष्ठ० १०५-१०६
४६. यदाञ्जनं त्रैककुदम् । अ० ४.९.१ से १०

४७. यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः । अ० १६.४४.२
४८. यस्याञ्जन प्रसर्पसि-अङ्गमङ्गं परुष्परुः । अ० ४.६.४
४६. यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि । अ० ४.६.६
५०. त्रिककुन्नाम ते पिता । अ० ४.६.८
५१. यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे । अ० ४.६.१०
५२. भाव० धातु० १३६-१४० । पृष्ठ ३७८-३७६
५३. अरुस्राणमिदं महत्० । तदास्रावस्य भेषजम् । अ० २.३.५
५४. नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत् । अ० २.३.३
५५. अष्टांगहृदय, निदानस्थान, ११.१ से ५
५६. सर्वावस्थासु सर्वासु गुग्गुलुं विद्रधीषु च ।
कषायैर्योगिकैर्युञ्ज्यात् स्वैः स्वैस्तद्वत् शिलाजतु ।। अष्टांग० चिकित्सा० १३.२५-२६
५७. अष्टांग० चिकि० १३.१० और २१ से २३
५८. अष्टांग० चिकि० १३. २६-२७
५६. शिग्रवो यक्षवश्च । ऋग्० ७.१८.१६
यं भेषजस्य गुल्गुलोः० । अ० १६.३८.१ से ३
६०. विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ।।
भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ।
वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् । अ० ६.१२७.१ से ३
६१. बदरैरुपवाकाभिर्भेषजम् । मैत्रायणी० ३.११.२ । यजु० १६.२२
६२. भाव० फलादि० ६८-७४ । पृष्ठ ३१६-३१७
६३. निःसालां धृष्णुं धिषणम् । अ० २.१४.१
६४. भाव० वटादि० १६-२१ । पृष्ठ ३४२
६५. शीर्षामयमुपहत्याम् अक्ष्योस्तन्वो रपः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद्० । अ० ५.४.१०
६६. पैप्प० १.३१.१ से ४
६७. केशव० २८.१३
६८. भाव० हरीत० १६३-१६४ । पृष्ठ ५८ से ६०
६६. पूतुद्रुर्नाम भेषजम् । अ० ८.२.२८
७०. भाव० कर्पूरादि० २३-२४ । पृष्ठ १०४-१०५
७१. अ० ८.२.२८ । ६.१२७.१ से ३
७२. भाव० कर्पूरादि० पृष्ठ १०४ से १०६
७३. अ० १.२.१ । १८.३.६
७४. आशरीकं विशरीकं...अरसां जङ्गिडस्करत् । अ० १६.३४.१०
७५. अ० ५.४.१ से १०; १६.३६.१ से १०
७६. केशव० २८.१३
७७. रोहण्यसि रोहणी-अस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी । अ० ४.१२.१
सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः । अ० ४.१२.३
७८. रोहयेदमरुन्धति । अ० ४.१२.१
७६. भद्रात् न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एहि-अरुन्धति । अ० ५.५.५
८०. सिलाची नाम वा असि । अ० ५.५.१
८१. केशव० २८.४

८२. काठक० ३४.३ । हरिता अर्जुना उत । अ० ४.३७.५
८३. भाव० वटादि० २६-२७ । पृष्ठ ३४४
८४. प्रियङ्गवश्च मे । यजु० १८.१२
८५. भाव० धान्य० ७६-७७ । पृष्ठ ३६८

**(छ) सिर, आंख, नाक, कान आदि के रोग**

१. शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं ० ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे । अ० ६.८.१
२. उद्यन् आदित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः । अ० ६.८.२२
३. मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं० ।
वनस्पतीन् सचतां पर्वतांश्च । अ० १.१२.३
४. स कुष्ठो विश्वभेषजः । अ० १६.३६.१ से १०
५. शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो रपः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद्० । अ० ५.४.१०
६. वीरुत् क्षेत्रियनाशनी । अ० २.८.१ से ५
७. पैप्प० १.६६.१ से ४ । १६.३५.७ से १०
८. शां० गृ० १.१२.६; ४.१७.३
६. भाव० फलादि० ६३-६५ । पृष्ठ ३२१ से ३२२
१०. तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि । अ० ६.१३६.१
११. दृंह प्रत्नान् जनयाजातान् जातानु वर्षीयसस्कृधि । अ० ६.१३६.२
१२. कौशिक सूत्र ३१.२८
१३. भाव० गुडू० २४४-२४६ । पृष्ठ २४६-२५०
१४. भाव० गुडू० २५१-२५२ । पृष्ठ २५२ से २५४
१५. अथर्व० ६ सूक्त १३६ और १३७
१६. उत स्थ केशदृंहणीरथो ह केशवर्धनीः । अ० ६.२१.३
१७. पैप्प० १.३८.१ से ४
१८. भूमिरुत्तमा । तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जगभ्रम् । अ० ६.२१.१
१६. शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो रपः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद्० । अ० ५.४.१०
२०. मृड केशेभ्यः शमि । अ० ६.३०.३
२१. भाव० वटादि० ७२-७३ । पृष्ठ ३५८
२२. बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि । ....शमि । अ० ६.३०.३
२३. पैप्प० १.६६.१ से ४; १६.३५.७ से १०
२४. जीवन्तीमोषधिमहम् । अ० ८.२.६
२५. केशव० ३१.२८
२६. तिलस्य तिलपिञ्ज्या । अ० २.८.३
२७. केशव० ३१.२८
२८. विभीदको जागृविः । ऋग्० १०.३४.१
२६. भाव० हरी० ३४ से ३६ । पृष्ठ ८-६
३०. श्यामा सरूपंकरणी । अ० १.२४.४
३१. यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः । अ० ६.२४.२

३२. अथर्व० ४.६.१ से १० । १६.४४.१ से १० । १६.४५.१ से ५
३३. यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे । अ० ४.६.१०
३४. यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्तु-आञ्जनम् । अ० १६.४४.२
३५. पैप्प० १.५५.१ से ४; ८.३.१ से १३
३६. आयुषोऽसि प्रतरणम् । भद्रं पुरुषजीवनम् । अ० १६.४४.१ और ३
३७. चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनम् । अ० १६.४५.३
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि । अ० ४.६.६
३८. भाव० धातुवर्ग १३६-१४० । पृष्ठ ३७८-३७६
३६. अक्ष्योस्तन्वो रपः । कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद्० । अ० ५.४.१०
४०. दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका । अ० ४.२०.३
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे । अ० ४.२०.२
४१. सुपर्णः पद्मिन्याम् । वैद्यकशब्द०
४२. कज्जलं काञ्चनीं चैव सितपद्मस्य केशरम्० ।
सर्वाञ्जनमिदं ख्यातं पातालनिधिदर्शनम् ।। सिद्धनागार्जुनकक्षपुट ५
४३. कर्णशूलं विलोहितम् । अ० ६.८.१
४४. उद्यन् आदित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः । अ० ६.८.२२
४५. भाव० गुडू० १६४-१६८ । पृष्ठ २१३-२१४
४६. पाकदूर्वा । ऋग्० १०.१६.१३ । शाण्डदूर्वा । अ० १८.३.६
४७. तिलस्य तिलपिञ्ज्या । अ० २.८.३
४८. भाव० धान्य० ६३ से ६५ । पृष्ठ ३६६-३६७
४६. न्यग्रोधा महावृक्षाः । अ० ४.३७.४
५०. भाव० वटादि० १-२ । पृष्ठ ३३६-३३७
५१. बदरैरुपवाकाभिर्भेषजम् । मैत्रा० ३.११.२ । यजु० १६.२२
५२. भाव० हरी० १५०-१५२ । पृष्ठ ४८ से ५१
५३. शिग्रवो यक्षवश्च । ऋग्० ७.१८.१६
५४. भाव० गुडू० ६६-१०५ । पृष्ठ १८६ से १८८
५५. कर्णशूलं विलोहितम् । अ० ६.८.१
५६. उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः । अ० ६.८.२२
५७. शिग्रवः० । ऋग्० ७.१८.१६
५८. भाव० गुडू० ६६-१०५ । पृष्ठ १८६-१८८
५६. भूर्जो वै नामैष वृक्षः । मैत्रा० १.१०.१२
६०. भाव० वटादि० ४७-४८ । पृष्ठ ३५१-३५२
६१. भाव० गुडू० २४३-२४५ । पृष्ठ २४६-२५०
६२. अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि । ऋग्० १.५०.१२
६३. भाव० धातु० १२८-१३२ । पृष्ठ ३७७-३७८
६४. अथर्व० ६.८३; ७.७४; ७.७६
६५. रामायणी-अपचित् प्र पतिष्यति ।
ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति । अ० ६.८३.३
६६. या ग्रैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्याः ।
विजाम्नि या अपचितः । अ० ७.७६.२
६७. यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति । अ० ७.७६.३

६८. पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पूरुषम् । अ० ७.७६.४
६६. मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् । अ० ७.७४.१
७०. अथागस्त्यो.. मुनिपुष्पो मुनिद्रुमः । भाव० पुष्पादि० ५६
७१. भाव० पुष्पादि० पृष्ठ २६५-२६६
७२. अगस्त्यः.... मुनिद्रुमो व्रणारिः । राजनिघण्टु
७३. अगस्त्यं शिशिरं गौल्यम्० । राजनिघण्टु
७४. भाव० वटादि० ४६ से ५३ । पृष्ठ ३५२-३५३
७५. तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः।
हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति । भैषज्य रत्नावली
७६. लवणाद् विक्लेदीयसीः । अ० ७.७६.१
७७. कथं ह त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे । अ० ७.७६.५
७८. अपचितः.... सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु । अ० ६.८३.१
७६. अ० ६.२५.१ से ३
८०. या ग्रैव्या... उपपक्ष्याः । विजाम्नि या अपचितः० । अ० ७.७६.२
८१. एन्येका श्येन्येका० । अ० ६.८३.२ और ३
८२. अष्टांग० उत्तरस्थान अ० ३० श्लोक १४ से १६
८३. अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं ० । अ० ४.१८.७
८४. भाव० गुडू० २१७-२१८ । पृष्ठ २३७ से २३६
८५. बभ्रु कल्याणि सं नुद । अ० ६.१३६.३
८६. भाव० गुडू० २७२-२७३ । पृष्ठ २६१-२६२
८७. मण्डूकी-अप्सु शं भुवः । अ० १८.३.६०
८८. भाव० गुडू० २८२-२८३ । पृष्ठ २६४-२६६
८६. शां० गृ० १.१२.६ । ४.१७.३
६०. भाव० फलादि० ६३-६५ । पृष्ठ ३२१-३२२

**(ज) हृदय, नाभि, उदर आदि के रोग**

१. अथर्व० ५.३०.६ । ६.१४.१ । १.२२.१ । ५.२०.१२ । हृद्रोगम् । ऋग्० १.५०.११
२. सुश्रुत० उत्तर० अध्याय ४३ श्लोक ३-४
३. अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ।। अ० १.२२.१
४. उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन् उत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय । ऋग्० १.५०.११
५. अथर्व ६.८.१ से २२
६. प्राणः प्रजानाम् उदयत्येष सूर्यः । प्रश्न उप० १.८
७. सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु । । अ० ६.८३.१
८. आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् । अ० ६.२४.१
६. आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ।। अ० ६.२४.२
१०. हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् । अ० ३.७.१
११. विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि । अ० ३.७.२
१२. त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः । अ० ४.६.८
१३. आशरीकं विशरीकं बलासं.. जङ्गिडस्करत् । अ० १६.३४.१०
१४. वरणो वारयाता... यक्ष्मो यो अस्मिन् आविष्टः । अ० ६.८५.१

१५. बलासं पृष्ट्यामयम्...अरसां जङ्गिडस्करत् । अ० १६.३४.१०
१६. उदरदारस्त्वा हनिष्यति । अ० ११.३.४२
१७. अथर्व० ४ सूक्त १७ से १६
१८. भाव० गुडू० २१७-२१८ । पृष्ठ २३७ से २३६
१६. या रोहन्ति पुनर्णवाः । अ० ८.७.८
२०. भाव० गुडू० २३५-२३७ । पृष्ठ २४४-२४५
२१. अथर्वपरि० १.४४.१० । ५.१.५
२२. भाव० हरी० ६८-६६ । पृष्ठ ३२-३३
२३. अप्वे परेहि । ऋग्० १०.१०३.१२ । अथर्व० ३.२.५
अप्वामन्तरोदरात् । अ० ६.८.६
२४. यदुक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु । अथर्व० १.१०.३
२५. अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे । अ० ४.१७.७
२६. भाव० गुडू० २१७-२२१ । पृष्ठ २३७ से २३६
२७. क्षुधामारं तृष्णामारम्० । अथर्व० ४.१७.६
२८. क्षुधामारं.... अपामार्ग त्वया वयं सर्व तदप मृज्महे । अ० ४.१७.६
२६. भाव० गुडू० २१७-२२१ । पृष्ठ २३७ से २३६
३०. न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे । अ० ४.१६.२
३१. सेनेवैषि त्विषीमती । अ० ४.१६.२
३२. अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी । अ० ४.१७.८
३३. क्षुधामारं तृष्णामारम् अगोताम् अनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ।। अ० ४.१७.६ और ७
३४. भाव० गुडू० २१७-२२१ । पृष्ठ २३७ से २३६
३५. उदुम्बरः । अथर्व० २०.१३६.१५ । तैत्ति० सं० ५.१.१०.१
३६. भाव० वटादि० ८-६ । पृष्ठ ३३६
३७. तृष्णामारं क्षुधामारम् । अ० ४.१७.७
३८. अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे । अ० ४.१७.७
३६. भाव० गुडू० २१७-२२१ । पृष्ठ २३७ से २३६
४०. जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् परि णः पातु । अ० २.४.२ । मा त्वा जम्भः विदत् । अ० ८.१.१६
४१. अथर्व० १.३.१ से ६
४२. स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् । अ० ७.६६.१
४३. विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यम्० । अ० १.२.१
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् । अ० १.२.४
अन्तस्तिष्ठति तेजनम् । अ० १.२.४
४४. भद्रमुञ्जः शरो बाणस्तेजनः ० । भाव० गुडू० १५० । पृष्ठ २०६
४५. मूत्रकृच्छ्राक्षिरोगहृत् । भाव० गुडू० १५१ । पृष्ठ २०६
४६. पिबता मुञ्जनेजनम् । ऋग्० १.१६१.८
४७. ऊर्ग् वै मुञ्जाः । काठक० १६.१०
४८. यथेषुका परापतद् अवसृष्टाधि धन्वनः ।
एवा ते मूत्रं मुच्यताम्० । अ० १.३.६
४६. लिङ्गाग्रसुषिरे सम्यग् योन्यां वा संप्रवेशयेत् ।

मूत्रदुःखहरं मुख्यं कर्पूरं परिसंक्षिपेत् ।। अष्टांग० चिकि० ११.१
मूत्रे विवृद्धे कपूर्रचूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत् । आयुर्वेद संग्रह ।
५०. इषीकामिव । अ० ७.५६.४ । इषीकाम् । अ० १२.२.५४
५१. विषितं ते बस्तिबिलं..... एवा ते मूत्रं मुच्यताम् । अ० १.३.८
५२. यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संश्रुतम् ।
एवा ते मूत्रं मुच्यताम् । अ० १.३.६
५३. प्र ते भिनद्मि मेहनम्० । अ० १.३.७
५४. पर्जन्यम्, मित्रम्, वरुणम्, चन्द्रम्, सूर्यम् । अ० १.३.१ से ५
५५. तेना ते तन्वे शं करम्, बहिष्टे अस्तु बालिति । अ० १.३.१ से ५
५६. संजायतेऽश्मरी घोरा ।
श्लेष्माश्रया च सर्वा स्यात् । अष्टांग० निदान० ६.६-७
५७. अष्टांग० निदान० ६.७-८
५८. अश्मरी दारुणो व्याधिः, अन्तकप्रतिमो मतः ।
औषधैस्तरुणः साध्यः प्रवृद्धश्छेदमर्हति ।। सुश्रुत० चिकि० ७.३
५६. सुश्रुत० चिकित्सा० ७.१६
६०. क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थः कदुष्णोऽश्मरिपातनः । अष्टांग० चि० ११.३१
६१. यो नारिकेलकुसुमं सक्षारं वारिणा पिष्ट्वा ।
पिबति च तस्य दिनैकाद् निपतति घोराश्मरी नूनम् ।। अष्टांग० चि० ११.६३
६२. अष्टांग० चिकि० ११.६२
६३. श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत् सहासिम ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे । अ० ७.६५.३
६४. वैदिक साहित्य में शल्यचिकित्सा, रामजीत विश्वकर्मा, पृष्ठ ८२.८३
६५. भाव० गुडू० २१७-२२१ । पृष्ठ २३७ से २३६
६६. यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ।। अ० ६.२४.२

**(ञ) मानस रोग**

१. सुश्रुत० सूत्रस्थान १.३२ से ३४
२. ईर्ष्या-शोक-भय-क्रोध-मान-द्वेषादयश्च ये ।
मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः ।। चरकः० सूत्र० ७.५२
३. धी-धृति-स्मृति-विभ्रष्टः कर्म यत् कुरुतेऽशुभम् ।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात्, सर्वदोष-प्रकोपणम् ।। चरक० शारी० १.१०२
४. बुद्ध्या विषमविज्ञानं, विषमं च प्रवर्तनम् ।
प्रज्ञापराधं जानीयात्, मनसो गोचरं हि तत् ।। चरक० शारी० १.१०६
५. समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ।। सुश्रुत, सूत्र० १५.४८
६. आहाराचारचेष्टासु सुखार्थी प्रेत्य चेह च ।
परं प्रयत्नमातिष्ठेद् बुद्धिमान् हितसाधने ।। चरक० सूत्र० ७.६०
७. न वेगान् धारयेद् धीमान् जातान् मूत्रपुरीषयोः ।। चरक० सूत्र० ७.३
८. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । मैत्रा० उप० ४.११
६. भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये । ऋग्० ८.१६.२० । यजु० १५.३६
१०. यजु० ३४.१ से ६

११. मनो ब्रह्म । गोपथ ब्रा० पूर्व० २.११
मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म । बृहदा० उप० ४.१.६ । शत० ब्रा० १४.६.१०.१५
मनो वै प्रजापतिः । तैत्ति० ब्रा० ३.७.१.२
मन एव सर्वम् । गोपथ० पूर्व० ५.१५
१२. हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा, ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ।। ऋग्० १०.१३७.७
१३. अयं दर्भो विमन्युकः.. मन्युशमन उच्यते । अ० ६.४३.१
१४. अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति । मन्युशमन उच्यते । अ० ६.४३.२
१५. उशीरं वीरणं.... बहुमूलम्० । कैयदेव निघण्टु
१६. या ओषधयः सोमराज्ञीः.... ते नो मुञ्चन्त्वंहसः । अ० ६.९६.१
१७. मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अ० ६.९६.२
यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम ।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु । अ० ६.९६.३
१८. सिन्धुतस्पर्याभृतम्..ईर्ष्याया नाम भेषजम् । अ० ७.४५.१ ।
१९. अग्नेरिवास्य दहतो...ईर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय । अ० ७.४५.२
२०. समुद्रस्य फलं चोष्णं.. कफं भ्रान्तिं शिरोरुजम् ।
दोषं दावानलाख्यं च नाशयेदिति कीर्तितम् । निघण्टु रत्नकार
२१. जलेन घृष्ट्वा पीतं चेत् कृमिनाशकरं परम् । निघण्टु रत्नाकर
२२. अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु । अ० १०.५.२४
२३. स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि.... मणिर्वरणो वारयिष्यते । अ० १०.३.६
२४. असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद्.... पाहि आञ्जन । अ० ४.९.६
२५. बभ्रु कल्याणि सं नुद । अ० ६.१३९.३
२६. भाव० गुडू० २७२-२७३ । पृष्ठ २६१-२६२
२७. अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि । अ० ६.१११.२
२८. अजशृङ्गी-अज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय । अ० ४.३७.२
२९. भाव० गुडू० २५७-२५९ । पृष्ठ २५६-२५७
३०. पिप्पली क्षिप्तभेषजी-उतातिविद्धभेषजी । अ० ६.१०९.१
३१. पिप्पली दीपनी वृष्या.... वातश्लेष्महरी लघुः । भाव० हरी० ५३-५८ । पृष्ठ १४-१६
३२. प्रसारिणीः... सर्वमारुतामयनाशनम् । अष्टांग० चिकि० २१.६५-६६
३३. धनुःस्तम्भे च कुब्जके । योज्यं प्रसारिणीतैलम् । भाव० धनु० चिकि० १८६
३४. दश वृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्याः । अ० २.९.१
अधीतीरध्यगादयम्० । अ० २.९.२
३५. भाव० गुडू० श्लोक १२ से ४६ । पृष्ठ १४५ से १५९
३६. तलाशा वृक्षाणामिव । अ० ६.१५.३
३७. भाव० कर्पूरादि० १०० । पृष्ठ १३५-१३६
३८. न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम । अ० ६.१३९.१ से ५
३९. भाव० गुडू० २७२-२७३ । पृष्ठ २६१-२६२
४०. अथर्व० परि० १.४४.१०
४१. भाव० हरी० ९८-९९ । पृ० ३२-३३
४२. ते खर्जूरा अभवन् । तैत्ति० २.४.९.२

४३. भाव० फलादि० ११५ से १२१ । पृष्ठ ३२७
४४. अथर्व० परि० १.४४.१०; ५.१.५
४५. भाव० हरी० ९८ से १०० । पृष्ठ ३२-३३
४६. मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदत् । अ० ८.१.१६
४७. जङ्गिडो जम्भाद् विशराद्.. पातु विश्वतः । अ० २.४.२

**(ठ) विविध शूल एवं प्रमेह आदि**

१. तष्टेव पृष्ट्यामयी । ऋग्० १.१०५.१८
बलासं पृष्ट्यामयम् । अ० १९.३४.१०
२. अरसां जङ्गिडस्करत् । अ० १९.३४.१०
३. निषिक्तं पुष्करे मधु । ऋग्० ८.७२.११
४. भाव० हरी० १६५-१६६ । पृष्ठ ६०-६१
५. यक्ष्मं.... प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि । अ० २०.९६.१९
६. पिप्पली क्षिप्तभेषजी । अ० ६.१०९.१
७. भाव० हरी० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
८. अ० २०.९६.१९
९. भाव० गुडू० २४३-२४५ । पृष्ठ २४९-२५०
१०. बलासनाशनीः । अ० ८.७.१०
११. हृदयामयम् । बलासं सर्वं नाशय-अङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु । अ० ६.१४.१
१२. अष्टांग० निदान० अध्याय १०, श्लोक १ से ३९
१३. अष्टांग० चिकित्सित० अध्याय १२, श्लोक १ से ४४
१४. अष्टांग० चिकि० १२.३६-३७
१५. हरिद्रायाः प्रयोगेण प्रमेहा इव षोडश । सुश्रुत० चिकि० ६.२०
१६. (क) आमलकरसेन हरिद्रां मधुसंयुक्तां पाययेत् । सुश्रुत० चि० ११.८
(ख) क्षौद्रेण युक्तामथवा हरिद्रां पिबेद् आमलकीफलानाम् । चरक०
१७. सुश्रुत० चिकि० ११.११
१८. अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी । अ० ४ सूक्त १७ से १९
१९. भाव० गुडू० २१७-२२१ । पृष्ठ २३७-२३९ ।
२०. महान् भद्र उदुम्बरः । अ० २०.१३६.१५
२१. भाव० वटादि० ८-९ । पृष्ठ ३३९
२२. बदरैरुपवाकाभिर्भेषजम् । मैत्रा० ३.११.२
२३. भाव० हरी० १५०-१५२ । पृष्ठ ४८ से ५१
२४. प्लक्षात् । अ० ५.५.५
२५. भाव० वटादि० ११-१२ । पृष्ठ ३४०
२६. बजश्च तेषां पिङ्गश्च० । अ० ८.६.२४
२७. गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ । अ० ८.६.२०
२८. हिरण्ययो वेतसः । ऋग्० ४.५८.५
२९. भाव० गुडू० १३०-१३२ । पृष्ठ १९९-२००
३०. पिपीलिकावटः । अ० २०.१३५.३
३१. भाव० वटादि० १-२ । पृष्ठ ३३६-३३७
३२. निःसालाम् । अ० २.१४.१
३३. भाव० वटादि० १९ से २१ । पृष्ठ ३४२

३४. यस्ते गर्भममीवा.... अग्निष्टं ब्रह्मणा सह० । अ० २०.६६.११ से १६
३५. अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र, पृष्ठ २२७ से २३०
३६. भाव० हरी० ६६-७० । पृष्ठ १६-२०
३७. गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च । अ० २.२५.३
३८. उग्रा हि कण्वजम्भनी । अ० २.२५.१ से ५
३९. योगरत्नाकर, स्त्रीगर्भरोग-चिकित्सा, ३ । कामरत्न, गर्भरक्षा ११
४०. अथर्व० ८.६.१ से २६
४१. गर्भान् खादन्ति केशवाः । अ० ८.६.२३
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् । अ० ८.६.२४
४२. कौशिक सूत्र २६.३६
४३. भाव० गुडू० १४०-१४१ । पृष्ठ २०५
४४. बजश्च तेषां पिङ्गश्च० । अ० ८.६.२४
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ । अ० ८.६.२०
४५. कौशिक० ३५.२१ । ३८.६
४६. क्षेत्रमिव विममुस्तेजनेन । ऋग्० १.११०.५
४७. भाव० गुडू० १४५-१४८ । पृष्ठ २०७-२०८
४८. सुकिंशुकं शल्मलिम् । ऋग्० १०.८५.२०
४९. भाव० गुडू० २००-२०३ । पृष्ठ २३०-२३१
५०. पर्णमणिर्बली । अ० ३.५.१
५१. भाव० वटादि० ४६-५३ । पृष्ठ ३५२-३५३
५२. शणश्च मा जङ्गिडश्च । अ० २.४.५
५३. भाव० धान्य० ८८ । पृष्ठ ४०१
५४. अथर्व० १.११.१ से ६
५५. एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पत । अ० १.११.६
५६. देवा गर्भं समैरयन्० । अ० १.११.२
५७. सूषा व्यूर्णोतु० । अ० १.११.३ । ७.३५.३
५८. अरायान्.... बजः पिङ्गो अनीनशत् । अ० ८.६.६
५९. दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्याः । अ० २.९.१
६०. भाव० गुडू० ४७ । पृष्ठ १५९
६१. अथर्व० ४ सूक्त १७ से १९
६२. अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी । अ० ४.१७.८
६३. अपामार्गस्य मूलं तु ग्राहयेच्चतुरङ्गुलम् ।
द्वारि प्रवेशयेद् योनौ तत्क्षणात् सा प्रसूयते । इन्द्रजाल सुखप्रसव०
६४. अवैतु पृश्नि शेवलं.... अव जरायु पद्यताम् । अ० १.११.४
६५. भाव० हरी० ६९-७० । पृष्ठ १९ से २१
६६. वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च... अव जरायु पद्यताम् । अ० १.११.५
६७. अगोताम् अनपत्यताम् । अ० ४.१७.६
६८. अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे । अ० ४.१७.६
६९. गृहीत्वा शुभनक्षत्रे त्वपामार्गस्य मूलकम् ।
गृहीत्वा लक्षणामूलम् एकवर्णगवां पयः ।
पीत्वा सा लभते गर्भं दीर्घजीवी सुतो भवेत् ।। दत्तात्रेयतन्त्र

७०. यानि भद्राणि बीजानि-ऋषभा जनयन्ति च ।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ।। अ० ३. २३. ४
७१. अ० ४.४.४
७२. ऋषभको मधुः शीतो गर्भसन्धानकारकः । निघण्टु रत्नाकर
७३. भाव० हरी० ११४ से १३६ । पृष्ठ ३६ से ४२
७४. भाव० हरी० १३४-१३६ । पृष्ठ ४२
७५. तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्तु-ओषधयः । अ० ३.२३.६
७६. शमीमश्वत्थ आरुढस्तत्र पुंसवनं कृतम् ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनम्० । अ० ६.११.१
७७. कामरत्न, जन्मबन्ध्याचिकित्सा २४
७८. सिलाची नाम कानीनः ० । अ० ५.५.८
७९. शतवारः... शतं वीरान् अजनयत् । अ० १९.३६.१ और ४
अयमौदुम्बरो मणिः... सर्ववीरं नि यच्छात् । अ० १९. ३१. १४
८०. अथर्व० २.२५.१ से ५
८१. भाव० गुडू० १४०-१४१ । पृष्ठ २०५
८२. भाव० हरी० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
८३. करत् पयस्वन्तं गोष्ठम् । अ० ६.५९.२
भाव० गुडू० १३७-१३९ । पृष्ठ २०२-२०५
८४. पयस्फातिं च धान्यम् । ...औदुम्बरो मणिः । अ० १९. ३१. १०
८५. बिसं शालूकम् ० । अ० ४.३४.५
भाव० शाक० ११४-११६ । पृष्ठ ४१८
८६. भेषजं मांपश्यम्० । अ० ७.३८.१
आसुरी.... यथा तेऽसानि सुप्रिया । अ० ७. ३८. २.
८७. भाव० धान्य० ७२-७४ । पृष्ठ ३९८
८८. सुभगंकरणी मम । तया सहस्रपर्ण्या० । अ० ६.१३९.१
८९. भाव० गुडू० २७२-२७३ । पृष्ठ २६१-२६२
९०. तदाञ्जन त्वं शंताते० । अ० १९ सूक्त ४४ और ४५
९१. चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन । अ० १९.४५.१
९२. सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् । अ० १९.४४.५
९३. चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनम्० । अ० १९.४५.३
९४. अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
...प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु । अ० १०.५.२४.
९५ यदस्मासु दुष्वप्न्यं... प्रति मुञ्चताम् । अ० १९.४५.२
९६. कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् । अ० ५.४.१०
९७. अथो अक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे । अ० ४.१७.७
९८. रक्तापामार्गमूलं तु... कट्यां बद्ध्वा तु वीर्यधृत् । ऐन्द्र० कामरत्न
९९. उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना । अ० ४.४.२
१००. वृषा कपिकच्छौ । वैद्यक शब्द-सिन्धु
१०१. तद्बीजं वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम् । भाव० गुडू० १२६, पृष्ठ १९८
१०२. अश्वगन्धा.... वरदा वृषः । .....वृष्या रसायनम् । कैयदेव निघण्टु
१०३. एवा ते शेपः... अर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु । अ० ६.७२.१

१०४. पुष्योद्धृतं पिबेन्मूलं श्वेतार्कस्य प्रयत्नतः ।
सप्तरात्रं तु गोक्षीरैर्वृद्धोऽपि तरुणायते ।। कामरत्न, वाजी० २.३
१०५. संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद । अ० ६.१३६.३
१०६. माषपर्णी तु... कल्याणी । राजनिघण्टु
माषपर्णी महावृष्या वृंहणी बलवर्णकृत् । निघण्टु
१०७. भाव० गुडू० ३३-३४ । पृष्ठ १५४-१५५
१०८. बभ्रु कल्याणि सं नुद । अ० ६.१३६.३
१०६. भाव० गुडू० २७२-२७३ । पृष्ठ० २६१-२६२
११०. यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि । अ० ४.६.६
१११. भाव० धातु० १३६-१४० । पृष्ठ ३७८-३७६
११२. अष्टांग० उत्तरस्थान, अध्याय २८.१.५
११३. यतेत कोष्ठशुद्धौ च । अष्टांग० उत्तर० २८.३३
११४. भाव० गुडू० ६५-७० । पृष्ठ १६५-१६६
११५. अष्टांगहृदय, उत्तरस्थान, अध्याय ३३.१ से ५
११६. कपाले त्रिफला दग्धा सघृता रोपणं परम् । अष्टांग० उत्तर० ३४. ६
११७. अष्टांग० उत्तर०, ३४.२ से ४
११८. भाव० गुडू० पृष्ठ १६८-१६६
११६. भाव० कर्पूरादि० पृ० १०५
१२०. भाव० गुडू० पृष्ठ २६६
१२१. भावप्रकाश परिशिष्ट, पृष्ठ ५५१-५५२
१२२. भाव० गुडू० पृष्ठ १७४
१२३. भाव० कर्पूरादि० पृष्ठ १०६

●

अध्याय ५

# प्राकृतिक चिकित्सा

**(क) सूर्य - किरण - चिकित्सा**

१. प्राकृतिक चिकित्सा की उपयोगिता

२. सूर्य किरणों का महत्त्व

३. विभिन्न रंगों की बोतलों के पानी का उपयोग

**(ख) वायु चिकित्सा एवं प्राणायाम चिकित्सा**

**(ग) अग्नि चिकित्सा**

**(घ) जल चिकित्सा**

४. जल चिकित्सा की कुछ विधियाँ

**(ङ) मृत् चिकित्सा**

**(च) यज्ञ चिकित्सा**

**(छ) मानस चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक चिकित्सा**

**(ज) मन्त्र चिकित्सा**

**(झ) हस्त चिकित्सा या हस्तस्पर्श चिकित्सा**

**(ञ) उपचार चिकित्सा**

५. नीरोग रहने के कतिपय उपाय



अध्याय ५

# प्राकृतिक चिकित्सा

## (क) सूर्य-किरण-चिकित्सा

**१. प्राकृतिक चिकित्सा की उपयोगिता**—प्रकृति मनुष्य के लिए वरदान है। प्रकृति के सभी तत्त्व पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि किसी न किसी रूप में मनुष्य का हित करते हैं। इनमें भी सूर्य की किरणों का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वेदों में सूर्य-किरणों से चिकित्सा का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। सूर्य को इस चराचर जगत् की आत्मा कहा गया है।[१] उपनिषद् में भी सूर्य को मानव जगत् का प्राण कहा है।[२] सूर्य रोगों को दूर करता है।[३] सूर्य रोगों को दूर करने के साथ ही बुद्धि को भी शुद्ध करता है और ज्ञान की वृद्धि करता है।[४] वेदों में उदय होते हुए सूर्य की किरणों का बहुत महत्त्व बताया गया है। उदय होता हुआ सूर्य मृत्यु के सभी कारणों को नष्ट करता है।[५] उदय होते हुए सूर्य से अवरक्त (हल्की लाल) किरणें निकलती हैं। इन लाल किरणों में जीवनी शक्ति होती है और रोगों को नष्ट करने की क्षमता होती है। इसलिए ऋग्वेद में कहा गया है कि उदय होता हुआ सूर्य हृदय के सभी रोगों को, पीलिया और रक्ताल्पता को दूर करता है।[६] इसी बात को अथर्ववेद में भी कहा गया है कि उदय होते हुए सूर्य की अवरक्त (Infra Red) किरणें हृदय की बीमारियों और खून की कमी को दूर करती हैं।[७] इस मंत्र में गो शब्द सूर्य की किरणों के साथ ही लाल रंग की गाय के दूध को भी हृदय रोगों में उपयोगी बताता है। मंत्र में यह भी निर्देश दिया गया है कि सूर्य की किरणों का मनुष्य के रूप-रंग और आयु के अनुसार प्रयोग करना चाहिए।[८] इसी हिसाब से रोगी को उदय होते हुए सूर्य की किरणों के सन्मुख कम या अधिक समय बैठाना चाहिए। प्रातःकाल सूर्याभिमुख बैठकर संध्या करने का यही रहस्य है कि अवरक्त किरणों के प्रभाव से व्यक्ति सर्वदा नीरोग रहेगा।

उदय होते हुए सूर्य के सन्मुख रोगी चिकित्सा के हेतु अपनी छाती खुली रखे या बहुत हलका कपड़ा पहने, जिससे सूर्य की किरणें छाती पर सीधी पड़ें और उनका प्रभाव अधिक हो सके। वेद का कथन है कि इन किरणों से वह दीर्घायु होगा,

रोगरहित होगा और उसमें खून की कमी नहीं होगी ।[९] एक अन्य मंत्र का कथन है कि उदय होता हुआ सूर्य शिर के सभी रोगों को, हृदय के सभी प्रकार के कष्टों को, अंगों के दर्द आदि को नष्ट करता है ।[१०] अथर्ववेद में इस सूक्त के २२ मंत्रों में सूर्य-किरण-चिकित्सा से ठीक होने वाले रोगों की एक लम्बी सूची दी गई है । जिसमें प्रमुख रोग ये हैं—सिरदर्द, कानदर्द, रक्त की कमी, सभी प्रकार के सिर के रोग, बहरापन, अंधापन, शरीर में अकड़न और दर्द, सभी प्रकार के ज्वर, पीलिया, जलोदर, पेट के रोग, विषों का प्रभाव, फेफड़ों के रोग, हड्डी-पसली के रोग, आंतों और योनि के रोग, यक्ष्मा, सूजन, घाव, वातरोग, आँख की पीड़ा, घुटना, रीढ़, कूल्हे आदि के रोग ।[११] एक अन्य सूक्त में 'सूर्यः कृणोतु भेषजम्' सूर्य-चिकित्सा से ये रोग ठीक होते हैं, कहकर अपचित् (गंडमाला), गलने और सड़ने वाली बीमारियाँ और कुष्ठ आदि का उल्लेख किया है ।[१२] इससे ज्ञात होता है कि वेदों के अनुसार प्रायः सभी सामान्य और असामान्य बीमारियाँ सूर्य-किरण-चिकित्सा और विशेष रूप से उदय होते हुए सूर्य की किरणों से ठीक हो सकती हैं ।

सूर्य के प्रकाश में रहना अमृत के लोक में रहना माना गया है ।[१३] सूर्य का प्रकाश शरीर के लिए अनिवार्य है ।[१४] सूर्य का प्रकाश शरीर को स्वस्थ और नीरोग बनाता है ।[१५]

सूर्य के लिए कहा गया है कि वह मनुष्य को नीरोगता, दीर्घायु और समग्र सुख देता है ।[१६] सूर्य की सात किरणों से सात प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है । सूर्य से ही उन्नत कृषि होती है ।[१७] सूर्य की किरणें मृत्यु से बचाती हैं ।[१८] इससे ज्ञात होता है कि सूर्य की किरणें मानव के लिए वरदान हैं और वे नीरोगता के साथ सर्वविध सुख की साधन हैं ।

सूर्य रोग के कीटाणुओं का नाशक है । वह दृष्ट और अदृष्ट सभी रोगाणुओं को नष्ट करता है ।[१९] सूर्य सर्प आदि के विष के प्रभाव को भी नष्ट करता है ।[२०]

संसार को स्वच्छ रखने के लिए कृमि एवं कीटाणुओं का नाशन आवश्यक है । यह कार्य सूर्य करता है । अतः जल वायु आदि स्वच्छ रहते हैं । मानवशरीर पर भी सूर्य-किरणों का यही प्रभाव पड़ता है, अतः सूर्य-किरणों के सेवन से शरीर नीरोग और हृष्ट-पुष्ट रहता है ।

**२. सूर्य-किरणों का महत्त्व**—सूर्य-किरण-चिकित्सा के अनेक नाम प्रचलित हैं :—सूर्य-चिकित्सा, सूर्य-किरण-चिकित्सा, रंग-चिकित्सा, Colour-therapy, Chromo-therapy, Chromopathy । इस चिकित्सा में सूर्य की किरणों का शरीर पर सीधे प्रयोग, या सूर्य की किरणों से प्रभावित जल, चीनी, तेल, घी, ग्लिसरीन आदि का प्रयोग किया जाता है ।

पाश्चात्त्य जगत् में इस विद्या का आविष्कार जनरल पंलिझन होन ने किया है । तत्पश्चात् डॉक्टर पेन स्काट, डॉक्टर राबर्ट बोहलेण्ड तथा डॉक्टर एडविन बेबिट आदि ने इस विद्या को आगे बढ़ाया । धीरे-धीरे यह विद्या फ्रांस और इंग्लैण्ड आदि देशों में फैली । इस विषय पर अब प्रचुर साहित्य उपलब्ध है ।

भारतवर्ष में, विशेष रूप से हिन्दी में, इस विद्या के प्रचार और उन्नयन का श्रेय श्री गोविन्द बापू जी टोंगू और डॉ० द्वारकानाथ नारंग आदि को है । संप्रति हिन्दी में भी अनेक ग्रन्थ इस विषय पर प्राप्य हैं ।

सूर्य में सात रंग हैं और उनसे ही मानव शरीर को रूप प्राप्त हुआ है ।[२१] वेद के अनुसार सूर्य की सात प्रकार की किरणें हैं । इनके भी तीन भेद किए गए हैं—उच्च, मध्य और निम्न अर्थात् गहरा, मध्यम और हलका । ७ × ३ = २१ प्रकार की सूर्य को किरणों के प्रभाव से संसार में सारे रूप-रंग हैं ।[२२] इन सात रंगों के नाम हैं—VIBGYOR, अर्थात् Violet (बैंगनी), Indigo (गहरा नीला), Blue (हलका नीला, आसमानी), Green (हरा), Yellow (पीला), Orange (नारंगी), Red (लाल) । इन सातों रंगों को मिला देने पर सफेद रंग हो जाता है, अतः सूर्य की किरणें सफेद दीखती हैं ।

इन सात रंगों में से मूल रंग तीन ही हैं—लाल, पीला, नीला । शेष रंग मिश्रण हैं । लाल और नीला मिलाकर बैंगनी रंग, नीला और सफेद मिलाकर आसमानी, पीला और नीला मिलाकर हरा, लाल और पीला मिलाकर नारंगी रंग बनते हैं ।

दवा बनाने के लिए उसी रंग की काँच की साफ बोतल में पीने का शुद्ध पानी भर कर ६ से ८ घंटे धूप में रखने से दवा तैयार हो जाती है । बोतल थोड़ी खाली रखनी चाहिए और ढक्कन बन्द होना चाहिए । इस प्रकार एक बार बनी हुई दवा को चार या पाँच दिन सेवन कर सकते हैं । एक रंग की बोतल पर दूसरे रंग की बोतल की छाया नहीं पड़नी चाहिए ।

साधारणतया नारंगी रंग की दवा भोजन के बाद १५ से ३० मिनट के अन्दर देनी चाहिए । हरे और नीले रंग की दवाएँ खाली पेट या भोजन से एक घंटा पहले दें । हरे रंग की दवा प्रातःकाल खाली पेट ६ या ८ औंस दे सकते हैं । यह दवा विजातीय द्रव्यों को बाहर निकाल कर शरीर को शुद्ध करती है । इसका विपरीत प्रभाव नहीं होता ।

### ३. विभिन्न रंगों की बोतलों के पानी का उपयोग :—

**(१) लाल (Red) रंग**—लाल रंग की बोतलों का पानी प्रायः मालिश करने या शरीर के बाहरी भाग में लगाने या पट्टी रखने के काम आता है । यह आयोडीन

(Iodine) से भी अधिक गुणकारी है । यह अत्यन्त गर्म होता है, अतः पीने से खून के दस्त या उल्टी हो सकती है । इसका पीना वर्जित है ।

यह उष्ण है । धमनी के रक्त एवं स्नायु को उत्तेजित करता है, स्नायुमंडल पर इसका विशेष प्रभाव होता है, शरीर में गर्मी बढ़ाने के लिए अत्यन्त उपयोगी है । यह सभी प्रकार के वातरोग, कफरोग और नपुंसकता में लाभ देता है । इसे प्रदाह या उत्तेजित अवस्था में नहीं देना चाहिए ।

**(२) नारंगी (Orange) रंग**—यह लाल और पीले का मिश्रण होने के कारण अधिक प्रभावकारी है । रक्तसंचार की वृद्धि करता है, मांसपेशियों को स्वस्थ करता है और सिकुड़न को दूर करता है, मानसिक शक्ति और इच्छा शक्ति को बढ़ाता है । बुद्धि और साहस को विकसित करता है । यह पेट, यकृत्, तिल्ली, गुर्दे और आंतों को प्रभावित करता है । कफ-जन्य रोगों में लाभदायक है ।

इन रोगों के लिए लाभप्रद है :—कफ-जन्य खांसी, बुखार, निमोनिया, इन्फ्लुएंजा, श्वासरोग, क्षयरोग, फेफड़े के दोष, पेट में गैस बनना, स्नायुरोग, स्नायुदुर्बलता, हृदयरोग, गठिया, पक्षाघात, अजीर्ण, एनीमिया, रक्त में लाल कणों की कमी, स्त्रियों के मासिक धर्म में कमी या कठिनाई । यह माँ के स्तनों में दूध की वृद्धि करता है ।

**(३) पीला (Yellow) रंग**—यह रंग अत्युत्तम है । शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करने में अग्रणी है । यह हलका रोचक भी है । पेट साफ रखता है । व्यक्ति को प्रसन्नता प्रदान करता है । पाचन-संस्थान पर इसका अनुकूल प्रभाव पड़ता है ।

पीला रंग इन रोगों के लिए लाभप्रद है :—पेट की गड़बड़, पेट फूलना, पेटदर्द, कोष्ठबद्धता, कब्ज, कृमिरोग, मेदविकार । इसके अतिरिक्त तिल्ली (Spleen), जिगर (Liver), हृदय (Heart) और फेफड़े (Lungs) के अनेक रोगों के लिए हितकर है । यह युवा पुरुषों को तत्काल लाभ देता है । इसका पानी थोड़ी मात्रा में ही लेना चाहिए, अन्यथा हानि करता है ।

गर्मी के कारण होने वाले पेचिश, संग्रहणी, हृदय की धड़कन, ऐंठन, स्नायविक पीड़ा आदि में इसे नहीं देना चाहिए ।

**(४) हरा (Green) रंग**—यह प्रकृति का रंग है, अतएव शरीर और मन को प्रसन्न रखता है । शरीर में रासायनिक द्रव्यों की न्यूनता और अधिकता को संतुलित करता है । शरीर की मांसपेशियों का निर्माण करता है और उन्हें शक्ति देता है । सारे नाड़ी-संस्थानों और मस्तिष्क को बल देता है । रक्त का शोधन

करता है और विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालता है । मन को शान्ति और प्रसन्नता देता है । ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्भावों को कम करता है ।

हरा रंग इन रोगों के लिए लाभप्रद है :—वातजन्य रोग, टाइफाइड, मलेरिया आदि ज्वर, यकृत् और गुर्दों की सूजन, सभी चर्मरोग—चेचक, फोड़ा, फुंसी, दाद, खाज, हाथ पैरों का फटना, गंजापन आदि, नेत्र रोग, मधुमेह (डाइबिटीज़), सूखी खांसी, जुकाम, अल्सर आदि भीतरी घाव, बवासीर (मस्सा), कैंसर, सूजाक, गोनोरिया आदि, सिरदर्द, स्नायुदर्द, रक्तचाप, रक्तपित्त (नाक, मुँह आदि से खून गिरना) सभी प्रकार के पकने सड़ने और बहने वाले दुर्गन्धयुक्त फोड़े घाव आदि, औरतों की मूर्छा एवं योनिप्रदाह, नासूर, भगन्दर, एक्जिमा आदि ।

**(५) नीला (आसमानी, Blue) रंग—**यह अतिशीतल है । पित्तजन्य रोगों पर विशेष लाभकारी है । इसका प्रभाव ज्वर, कास (खांसी), अतिसार, संग्रहणी, जीर्ण पेचिश, श्वास (दमा), शिरःशूल, गर्मी, मूत्रावरोध, प्रमेह, मूत्र में जलन, अन्य मूत्रविकार, पथरी, फीलपाँव, त्वचा रोग, नासूर, फोड़े-फुंसी एवं मस्तिष्क के रोगों पर अति अनुकूल पड़ता है । यह प्यास और आमाशयिक उत्तेजना को शान्त करता है । यह अच्छा पोषक टानिक और एन्टीसेप्टिक है । यह हर प्रकार के ज्वर के लिए रामबाण है और सभी प्रकार के रक्तप्रवाह को रोकता है । यह कफज रोगों, ठंड से उत्पन्न विकारों, गठिया, वातरोग, पक्षाघात और कब्ज आदि में नहीं लेना चाहिए ।

**(६) गहरा नीला (Indigo) रंग—**यह प्राणिमात्र को जीवन शक्ति देता है । यह शीतलता और शान्ति देता है । पौष्टिक होने के कारण कुछ कब्ज करता है । गर्मी के सभी रोगों को दूर करता है । योनि, आमाशय, अंडकोश-वृद्धि, प्रदर आदि में उपयोगी है । शरीर पर इसकी क्रिया अतिशीघ्र होती है ।

**(७) बैंगनी (Violet) रंग—**इसके गुण प्रायः नीले रंग के तुल्य हैं । यह रक्त में लाल कणों की वृद्धि करता है । इससे नींद अच्छी आती है । यह रक्ताल्पता को दूर करता है । फेफड़े के क्षय रोग में अत्यन्त उपयोगी है ।

उपर्युक्त विधि से सात रंग की सूर्य की किरणों से तैयार किया हुआ पानी विभिन्न रोगों को दूर करता है । सूर्य की सात रंग की किरणों के तीन परिवार किये गये हैं :—(१) लाल, पीला और नारंगी, (२) हरा, (३) नीला, आसमानी और बैंगनी । इन वर्गों में से प्रत्येक में से एक-एक रंग लेकर केवल तीन रंगों का ही प्रयोग करके काम चलाया जाता है । ये तीन रंग हैं—नारंगी, हरा, नीला । इनमें से नारंगी कफ-जन्य रोगों के लिए लाभप्रद है और पित्त-जन्य रोगों के लिए नीला ।

वातजन्य रोगों के लिए हरा रंग लाभप्रद है । हरा रंग रक्तशोधक और विजातीय तत्त्वों का निष्कासक है ।

## (ख) वायु-चिकित्सा एवं प्राणायाम-चिकित्सा

मानव-जीवन का आधार प्राण है । प्राणों की सत्ता से ही जीवन की गतिविधियाँ हैं एवं शरीर में बल, स्फूर्ति, उद्यम, उत्साह और ओजस्विता हैं । यदि प्राणशक्ति का संरक्षण, पोषण और संवर्धन किया जाए तो शरीर को व्याधियों से मुक्त किया जा सकता है । शरीर के कण-कण में प्राणों का समावेश है । इनकी शक्ति का ह्रास होने से ही शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है, अतएव प्राकृतिक चिकित्सा में प्राणायाम-चिकित्सा को विशेष महत्त्व दिया गया है ।

प्राणायाम का अभिप्राय है प्राणों की शक्ति का विस्तार । प्राणों का संबन्ध वायु से है । शरीर में प्राण की दो शक्तियाँ विशेष रूप से कार्य करती हैं—प्राण और अपान । प्राणशक्ति श्वास के द्वारा वायु से आक्सिजन (Oxygen) ग्रहण करती है और फेफड़ों में पहुँचा कर समस्त कोशिकाओं को शुद्ध वायु के द्वारा पुष्ट करती है और निःश्वास के द्वारा फेफड़ों के दूषित तत्त्व को बाहर निकालती है । अपान वायु का कार्य है—शरीर के अन्दर व्याप्त दूषित तत्त्वों को मल-मूत्र के रूप में बाहर निकालना और शरीर को शुद्ध रखना । प्राण तत्त्व का काम धनात्मक है और अपान तत्त्व का काम ऋणात्मक । दोनों तत्त्व एक दूसरे के पूरक हैं । दूषित तत्त्वों के निर्गमन से जो स्थान रिक्त होता है, उसमें पोषक तत्त्व अपना स्थान ग्रहण करते हैं ।

वेदों में प्राणशक्ति का बहुत महत्त्व वर्णित है । प्राणों को संसार का स्वामी कहा गया है । यह चर-अचर सभी का स्वामी है ।[२३] प्राण में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है ।[२४] प्राणों की शक्तिमत्ता नीरोगता का आधार हैं और उनकी अशक्तता विविध व्याधियों का कारण है ।[२५]

प्राण के दो रूपों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि एक अन्दर आता है और दूसरा बार जाता है । प्राण रूप में अन्दर आकर यह रुधिर को स्वच्छ करता है और अपान रूप में दोषों को शरीर से बाहर निकालता है ।[२६] प्राण को ही मातरिश्वा और वायु भी कहते हैं ।[२७] इसको शरीररूपी रथ को ढोने के कारण अनड्वान् (अनस्-गाड़ी, रथ, वह्-ढोना) कहा जाता है ।[२८]

प्राणायान-चिकित्सा यह योग-चिकित्सा है । इसमें पूरक, रेचक और दो कुम्भकों का समावेश है । श्वास अन्दर लेने को 'पूरक' कहते हैं । श्वास बाहर छोड़ने को 'रेचक' और अन्दर एवं बाहर रोकने को 'कुम्भक' (आभ्यन्तर कुम्भक

और बाह्य कुम्भक) कहते हैं । श्वास को जितना अधिक अन्दर रोका जाएगा, उतना ही अधिक रक्त शुद्ध होगा । इससे शरीर में अधिक शक्ति का संचार होगा और पाचन शक्ति बढ़ेगी ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में प्राणशक्ति का बहुत महत्त्व वर्णित है । अथर्ववेद का कथन है कि वर्तमान, भूत और भविष्य सभी कुछ प्राण पर निर्भर है ।[२९] यदि मानव जीवन पर ध्यान दिया जाए तो मनुष्य का वर्तमान, भूत और भविष्य प्राण-शक्ति पर ही निर्भर है । प्राणशक्ति की उत्कृष्टता उसे नीरोगता, शौर्य और तेज देती है । उसका अभाव रोग, शोक, क्षय और निस्तेजस्कता का कारण है । इसका ही परिणाम मृत्यु है । प्राण स्वयं भेषज या ओषधि है । प्राण रोगों का उपचार है । अतएव अथर्ववेद का कथन है कि प्राण का सर्वोत्तम रूप भेषज तत्त्व है, यह जीवनीशक्ति प्रदान करता है ।[३०]

संसार में जहाँ भी जीवनी शक्ति है, वहाँ प्राणतत्त्व का चमत्कार है । प्राण आग्नेय तत्व है । यही ज्योति, तेज, ऊर्जा और ऊष्मा देता है । इसका कार्य है—दोषों को नष्ट करके शुद्धता प्रदान करना, तेज ऊर्जा और स्फूर्ति प्रदान करना । इसलिए इसे संसार का महाप्रभु विराट्, नियन्ता और प्रजापति कहा गया है । इसमें दोषों के नाशन और ऊर्जा-प्रदान की शक्ति है, अतः इसे सूर्य कहा गया है । साथ ही शरीर में शान्ति, सौमनस्य, आह्लादकता, प्रेम और माधुर्य की सृष्टि करता है, अतः इसे चन्द्रमा भी कहा गया है ।[३१]

प्राणायाम शरीर के अन्दर के सभी दोषों को जलाकर शरीर को शुद्ध करता है, अतः शरीर नीरोग और स्वस्थ रहता है । मनुस्मृति ने इसको धौंकनी से उपमा देकर समझाया है कि जिस प्रकार धौंकनी की सहायता से अग्नि को प्रदीप्त करके सुवर्ण आदि धातुओं को शुद्ध किया जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा शरीर के सारे दोषों को नष्ट किया जाता है ।[३२]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में अनेक मंत्रों में वायु को भेषज, विश्वभेषज, अमृत आदि कहा गया है । वायु को अमृत का निधि कहा गया है और इसे दीर्घायु का साधन माना है ।[३३] शुद्ध वायु का सेवन, घर में शुद्ध वायु का निर्बाध प्रवेश, शुद्ध वायु में लंबे श्वास लेना, प्रदूषण-रहित स्थान में निवास, पर्वतों पर रहना या समुद्र तट पर निवास करते हुए अतिशुद्ध वायु का सेवन दीर्घायुष्य का साधन है । इन्हीं बातों को वेद के अनेक मन्त्रों में कहा गया है । वायु से प्राण या जीवनी शक्ति प्राप्त होती है ।[३४] वायु भेषज है । यह हृदय को शक्ति देता है और मनुष्य को दीर्घायु करता है ।[३५] वायु शरीर में ओषधि का काम करता है और शरीर के दोषों को निकाल बाहर करता है ।[३६] वायु मनुष्य का रक्षक है, अतः पिता है । वह पोषक

है, अतः भाई है और सहायक है, अतः मित्र है ।[३७] इससे ज्ञात होता है कि शुद्ध वायु का सेवन पालक, पोषक और सहायक मित्र के तुल्य है । यदि इसका सदुपयोग किया जाता है तो मनुष्य दीर्घायु होता है । वायु मनुष्य की आत्मा है ।[३८] यह प्राणों से भी प्रिय है । इसको शरीर में और घर में अत्यन्त आदरणीय अतिथि के रूप में स्थान देना चाहिए । ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि जिस घर में शुद्ध वायु का अबाध प्रवेश है, वह घर शुद्ध है और उसमें रहने वाला व्यक्ति सबसे अधिक सुरक्षित है, अर्थात् वह सभी प्रकार के रोगों से सर्वथा मुक्त रहता है ।[३९]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि प्राणायाम करना, शुद्ध वायु का सेवन और घर में शुद्ध वायु का अबाध प्रवेश मनुष्य के शरीर और हृदय को स्वच्छ रखते हैं, पुष्ट करते हैं और उसे दीर्घायु प्रदान करते हैं ।

## (ग) अग्नि-चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा में अग्नि-चिकित्सा को भी प्रमुख स्थान प्राप्त है । अग्नि-चिकित्सा के अनेक रूप हैं—अग्नि का साक्षात् सेवन, शरीर के अंगों को अग्नि से सेकना, अग्नि में रोगनाशक दवाओं को डालकर रोगों और कृमियों को नष्ट करना, वस्त्र ईंट पत्थर आदि को गर्म करके रोग आदि से प्रभावित अंश को सेकना, निवास स्थान आदि को गर्म करना आदि । वेद का कथन है कि अग्नि शीत की ओषधि है ।[४०] इसका अभिप्राय यह है कि शीत और शीतजन्य रोगों में अग्नि का सेवन लाभप्रद है । अग्नि को सभी रोगों की ओषधि कहा गया है ।[४१] अग्नि के प्रयोग से सभी रोगों की चिकित्सा की जा सकती है । विष-चिकित्सा में अग्नि का प्रयोग किया जाता है । सर्प का विष उतारने के लिए साँप के द्वारा काटे हुए अंश को गर्म लोहे आदि से दाग देने से सर्प का विष नष्ट हो जाता है ।[४२] ऋग्वेद और अथर्ववेद का कथन है कि अग्नि रोगोत्पादक कृमियों को नष्ट करता है । रोगोत्पादक कृमियों को कृमि, रक्षस्, अमीव, यातुधान, अत्रिन् आदि नामों से कहा गया है । अग्नि में गूगल को जलाने से रोग नष्ट होते हैं । गूगल की सुगन्ध रोग और रोग के कीटाणुओं को नष्ट करती है ।[४४] पेटदर्द, चोट, घाव, व्रण आदि में गर्म कपड़े आदि से सेकना लाभप्रद होता है । शीतप्रधान देशों में अग्नि ही जीवनरक्षा का प्रमुख साधन है । आधुनिक समय में दर्द आदि को दूर करने के लिए विद्युत् का उपयोग किया जाता है । मानसिक विक्षेप आदि के लिए भी विद्युत् का आघात आदि लगाना लाभप्रद सिद्ध होता है । विद्युत् के उपयोग से होने वाली चिकित्साएँ भी अग्नि-चिकित्सा के अन्तर्गत आती हैं ।

अग्नि के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ३३ देवों की जो कुछ

विशेषताएँ हैं । वे सभी विशेषताएँ अग्नि में हैं ।[४५] इसका अभिप्राय यह है कि ऊर्जा के समस्त स्रोत अग्नि में हैं । अग्नि के द्वारा सारी जीवनी शक्ति प्राप्त की जा सकती है । अथर्ववेद में अग्नि को तेज, वर्चस्, ओजस्, दीर्घायु, बल और यश का कारण बताया गया है ।[४६] अग्नि आक्सिजन के रूप में शरीर में प्राणशक्ति को उद्बुद्ध करती है ।[४७] अग्नि रोग के कीटाणुओं का नाशक है ।[४८] यज्ञ की अग्नि सभी रोगाणुओं को नष्ट करता है, अतः ऋग्वेद का कथन है कि यज्ञ न करने वाले व्यक्ति रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं ।[४९] अग्नि की ज्वालाएँ मनुष्य को नीरोग करके उनका कल्याण करती हैं ।[५०]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि अग्नि जीवन के लिए अनिवार्य ही नहीं है, अपितु चिकित्सा का भी उत्तम साधन है ।

## (घ) जल-चिकित्सा

ऋग्वेद और अथर्ववेद में जल-चिकित्सा को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है । रुद्र और वरुण देवों को जल-चिकित्सा के क्षेत्र में अग्रगण्य बताया गया है । रुद्र को प्रथम दिव्य भिषक् माना है ।[१] रुद्र जल-चिकित्सक हैं ।[२] इसी प्रकार वरुण को वैद्यों का स्वामी और चिकित्सक कहा गया है ।[३]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में जल-चिकित्सा का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है । ऋग्वेद में वर्णन है कि सोम राजा का कथन है कि जल में सभी ओषधियों के गुण विद्यमान हैं । जल से सभी रोगों की चिकित्सा हो सकती है ।[४] अन्य मन्त्र में कहा गया है कि जल में अमृत है, जल में ओषधि के गुण हैं ।[५] जल शरीर को शक्ति देता है और रोगनाशक है ।[६] जल में सोम आदि रसों को मिलाकर सेवन करने से मनुष्य दीर्घायु होता है ।[७]

जल-चिकित्सा के विषय में यहाँ तक कहा गया है कि जल सभी रोगों का इलाज है, यहाँ तक कि यह आनुवंशिक रोगों को भी नष्ट करता है ।[८] जल को सर्वोत्तम वैद्य बताया गया है और कहा गया है कि यह आँख और पैर आदि के सभी दर्द को दूर करता है ।[९] जल हृदय के रोगों को भी दूर करता है ।[१०]

जल के विविध गुणों का वर्णन अनेक सूक्तों में किया गया है । हिमालय से निकलने वाली नदियों का जल विशेष लाभकारी है । इनका हृदय रोगों में प्रयोग करना चाहिए ।[११] बहता हुआ जल शुद्ध और गुणकारी होता है । यह मनुष्य को शक्ति और गति देता है । कर्मठता के लिए जल और ओषधियों का सेवन करें ।[१२]

वर्षा के जल को सबसे उत्कृष्ट और अमृत बताया गया है । इससे सभी रोग दूर होते हैं और दीर्घायु की प्राप्ति होती है ।[१३] जल के अन्य गुण ये बताए गए

हैं:—जल बलवर्धक है । यह रमणीयता और सौन्दर्य का वर्धक है ।[१४] जल मनुष्य को माता के तुल्य शान्ति और सुख देता है ।[१५] जल मानव की स्थिति का आधार है, अर्थात् जल के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है । जल वरणीय वस्तुओं में सर्वश्रेष्ठ है । यह जीवन के लिए ओषधि का काम करता है ।[१६]

जल के ये लाभ बताए गए हैं:—वैद्यों के लिए जल अधिक उपयोग की वस्तु है । गहराई से निकाला हुआ जल अत्युत्तम होने के कारण सर्वोत्तम चिकित्सा का साधन है ।[१७] जल पापों और पाप-भावनाओं को नष्ट करता है । यह कुस्वप्नों का भी नाशक है ।[१८] जल रोगों को नष्ट करता है और शरीर को नीरोग रखता है ।[१९] जल में संजीवनी शक्ति है । इसके ठीक उपयोग से मनुष्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर सकता है ।[२०] जल लाभप्रद है । इसमें घी के तुल्य बलवर्धन की शक्ति है । जल में अग्नि और सोम दोनों तत्त्व हैं, अतः इसका प्रभाव तीव्र होता है । यह आग्नेय तत्त्व के द्वारा प्राणशक्ति देता है और सोमीय तत्त्व के द्वारा तेजस्विता देता है ।[२१] जल में शक्ति है, दिव्य गुण हैं, अतः जल तेज प्रदान करता है ।[२२] जल में अग्नि रहती है, अतः जल की रगड़ से विद्युत् उत्पन्न होती है । यह जल शक्ति और तेज देता है ।[२३]

स्थान और आश्रय आदि के भेद से जल के गुणों में भी भेद हो जाता है, अतः जल उत्तम, मध्यम और अधम होता है । सूर्य की किरणों में रहने वाला जल उत्तम होता है ।[२४] बहता हुआ जल निर्दोष और विशेष गुणकारी होता है ।[२५] अतः रुका हुआ या अपवित्र वस्तुओं से युक्त जल गुणकारी नहीं होता है ।

जल अनेक प्रकार से प्राप्त कियां जाता है :—वर्षा से, नदियों और समुद्रों से, जलीय प्रदेशों से, रेगिस्तान या रेतीले प्रदेश से, खोद कर बनाए हुए कूप आदि से ।[२६] एक अन्य मंत्र में हिमालय पर्वत से आने वाला जल, स्रोतों का जल, वर्षा का जल और निरन्तर वेग से बहने वाले जल का वर्णन है ।[२७] इन स्थानों से प्राप्त होने वाला जल शुद्ध होता है, अतः लाभकारी है । इनमें भी वर्षा के जल को सर्वोत्तम माना गया है । अथर्ववेद में वर्षा के जल को 'शतवृष्ण्य' अर्थात् सौ गुनी शक्ति वाला कहा गया है ।[२८]

अथर्ववेद में शरीरविज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि शरीर में आठ प्रकार का जल है, अर्थात् आठ प्रकार के जल से शरीर की रचना हुई है । इसमें अस्थियों को समिधा और वीर्य को घी का रूप माना गया है । जल सभी देवों और ब्रह्म के साथ शरीर में प्रविष्ट हुआ । शरीर में सारे देवों का निवास है, अतः पुरुष को ब्रह्म कहा जाता है ।[२९]

शुद्ध जल अमृत और रोगनाशक है, परन्तु दूषित जल और दूषित रस सामान्य रोग ही नहीं, अपितु क्षेत्रिय अर्थात् वंश-परंपरागत रोगों के भी कारण होते हैं ।[३०]

रुद्र को जल-चिकित्सा का आविष्कारक माना गया है । इस चिकित्सा से चोट, घाव, बाणों के बड़े घाव भी ठीक हो जाते हैं ।[३१] जल-चिकित्सा को 'जलाषभेषज' कहा गया है और रुद्र को जल-चिकित्सक के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।[३२] जल-चिकित्सा को उग्र भेषज अर्थात् शीघ्र लाभकारी दवा कहा गया है ।[३३] इसमें रोगग्रस्त अंशको जल में भिगोया जाता है और उस पर जल धार के रूप में या छींटे के रूप में डाला जाता है । ऐसा करने से वह अंश नीरोग हो जाता है ।

**४. जल-चिकित्सा की कुछ विधियाँ**—चरक, सुश्रुत और वाग्भट ने जल के विविध रूपों और उनके उपयोग पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किया है । इसमें वर्षा का जल, नदियों का जल, समुद्र का जल, ठंडा जल, गर्म जल, पेय जल, अपेय जल आदि का विवेचन करते हुए ग्राह्य और अग्राह्य का विवरण दिया है तथा इनकी चिकित्सा की दृष्टि से उपयोगिता पर प्रकाश डाला है ।[३४]

पाश्चात्त्य देशों में जल-चिकित्सा विषय पर पर्याप्त शोधकार्य हुआ है । जल-चिकित्सा के प्रवर्तकों में चार नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—प्रिसनिज, फादर क्नाइप, लुई कूने, एडोल्फ जूस्ट । प्रिसनिज ने ठंडे जल के प्रयोग से गंभीर चोट, घाव आदि को ठीक करने की विधि प्रस्तुत की । फादर सेबस्टियन क्नाइप ने १८६१ में जर्मनभाषा में 'माइन वासेर कूर' (My Water Cure) पुस्तक लिखी । उनका सिद्धान्त है कि रक्त में दूषित द्रव्यों के पहुँचने अथवा रक्त के स्वाभाविक प्रवाह में किसी प्रकार का अवरोध होने पर रोग होता है । इसके निवारण का साधन जल है । जल के तीन विशिष्ट गुण हैं:—१. रक्त में विद्यमान विकृत पदार्थों को घुलाना, २. घुले हुए का निष्कासन, ३. स्वच्छ रक्त का संचालन और शरीर को बल प्रदान करना । इसके लिए उन्होंने निम्न प्रयोग प्रस्तुत किए हैं :—

१. गीली घास पर, गीले पत्थर पर, ओस में भीगी या वर्षा से गीली रेत या जमीन पर, या ताजी पड़ी बर्फ पर नंगे पैर टहलना ।

२. पैरों और हाथों का शीतल जल से स्नान ।

३. घुटनों पर धार से पानी डालना (अभिसिंचन) ।

४. प्रत्येक ठंडे प्रयोग के बाद व्यायाम या श्रम के द्वारा शरीर में गर्मी लाना ।

भारत में जल-चिकित्सा लुई कूने की पुस्तक 'New Science of Healing' के साथ आई । उनका मत था कि सभी रोगों का कारण एक है और उन सबकी चिकित्सा भी एक है । उन्होंने स्नान, बाष्प-स्नान आदि स्नानों पर विशेष बल दिया है ।

एडोल्फ जूस्ट ने जल-चिकित्सा में मिट्टी के व्यापक प्रयोग का उल्लेख किया है। उन्होंने आहार-नियन्त्रण पर भी बल दिया है। मिट्टी में विजातीय विघ्नों और कीटाणुओं से उत्पन्न गर्मी को रुग्णस्थान से खींच लेने की भारी शक्ति है। अतः उन्होंने चोट, घाव, जलना, फोड़े-फुन्सी, दाद, खाज, एक्जिमा आदि चर्मरोग, बिच्छू-साँप आदि के काटने पर तथा हड्डी के टूट जाने पर गीली मिट्टी के प्रयोग को लाभदायक बताया है।

जल हमारे जीवन का आधार है। यह आयुवर्धक रसायन है। इसमें दो तत्त्व मुख्य हैं—हाइड्रोजन (सोम) और आक्सिजन (अग्नि)। अतः जल दोषनाशक और शोधक दोनों है। वैज्ञानिकों ने मानवशरीर तथा उसके विभिन्न अंगों के विश्लेषण द्वारा बताया है कि जल शरीर में ७० प्रतिशत, लार में ९९ प्रतिशत, मूत्र में ९३ प्रतिशत, पित्त में ८८ प्रतिशत, रक्त में ७९ प्रतिशत, मांसपेशियों में ७५ प्रतिशत, पसीने में ५९.८ प्रतिशत और हड्डी में १३ प्रतिशत विद्यमान है। अतः शरीर में जल का सन्तुलन बनाए रखना आवश्यक है। अन्यथा विविध रोगों का जन्म होता है।

जल-चिकित्सा की कुछ उपयोगी विधियाँ ये हैं :—

**(१) टब बाथ**—अथर्ववेद में उल्लेख है कि रोगग्रस्त अंश को पानी में भिगोया जाए।[३५] इस प्रयोग में टब में या बड़े पात्र में पानी भर कर व्यक्ति उसमें बैठता है, निर्धारित समय तक टब में बैठने से पानी का प्रभाव उसके शरीर और अंगों पर पड़ता है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति के रोगग्रस्त अंग नीरोग हो जाते हैं और धीरे-धीरे शरीर के अन्य अंग भी नीरोग होकर स्वस्थ और पुष्ट होते हैं।

**(२) कटिस्नान**—यह लुई कूने की आविष्कृत चिकित्सा विधि है। टब या बड़ा टीन का बर्तन लेना चाहिए, उसमें ठंडा पानी इतना भरना चाहिए कि जिसमें बैठने पर जल नाभि तक आ जाए। पैर टब से बाहर रहते हैं। कपड़े से पेट को धीरे-धीरे मलते हैं। ऐसा ५ से १० मिनट तक करें। बाद में गर्मी के लिए व्यायाम या श्रम करें। इससे गर्मी के दस्त ठीक होते हैं। मोटापा दूर होता है, खून शुद्ध होता है। स्नायुमंडल को लाभ होता है। उच्च रक्त चाप में भी लाभप्रद है। इससे पेट की वायु निकल जाती है। पाचनशक्ति प्रबल होती है। रक्त-प्रवाह नियमित होता है और बल प्राप्त होता है।

**(३) पाद स्नान**—इसके लिए पिंडली या घुटने तक गहरे ठंडे पानी में एक से तीन मिनट तक खड़ा रहना होता है। इससे शरीर में ताजगी आती है और शक्ति बढ़ती है। इससे नाड़ी-दुर्बलता, रक्ताल्पता, सिर और गर्दन के रोग, व्रण, घाव, संधिवात, गठिया और पैरों के समस्त रोग दूर होते हैं।

**(४) अर्ध स्नान**—टब में बैठने पर जल पेट तक पहुँचे । पानी ठंडा होना चाहिए । एक मिनट से तीन मिनट तक करें, इससे अधिक नहीं । इससे शरीर के निचले भाग की विकृतियाँ और रोग समूल नष्ट होते हैं । इससे आंते बलिष्ठ होती हैं । शक्ति की वृद्धि होती है । अर्श (बवासीर), वायु, उदरशूल, हिस्टीरिया आदि रोग नष्ट होते हैं ।

**(५) सहस्रधारा-स्नान या फव्वारे का स्नान**—शरीर में शीतलता लाने के लिए उत्तम साधन है । इससे मानसिक और शारीरिक शान्ति मिलती है और रोगनिरोधक शक्ति आती है ।

**(६) घुटनों पर धारापात**—कुर्सी पर बैठकर दोनों घुटनों पर टोंटी वाले बर्तन से दो से दस मिनट तक धार से पानी डालना । फादर क्नाइप ने इस विधि की बहुत प्रशंसा की है । इससे पैर में रक्त की कमी, कमजोरी एवं पैर की सभी बीमारियों में विशेष लाभ होता है ।

**(७) एनीमा (Enema)**—आंतों की धुलाई और सफाई के लिए उपयोगी विधि है । यह जल-चिकित्सा का प्राण है । जिन्हें कब्ज की शिकायत रहती है, उन्हें सप्ताह में एक बार एनीमा लेने से लाभ होता है । इसका अधिक प्रयोग हानिकारक है ।

**(८) मिट्टी की पट्टी का प्रयोग**—जल-चिकित्सा में मिट्टी भी सहायक है । स्वच्छ मिट्टी खूब ठंडे पानी में भिगोकर गाढ़ा सान लें । रुग्ण स्थान पर इसकी आधा इंच मोटी तह बनाकर रखें और ऊपर से कपड़ा बाँध दें । आवश्यकतानुसार आधे घंटे बाद पट्टी बदल दें । जूस्ट का कथन है कि गीली मिट्टी की पट्टी चोट, घाव, आग से जलने, फोड़े-फुन्सी, दाद, खाज, एक्जिमा, बिच्छू आदि के काटने पर विशेष लाभप्रद है । पेट पर मिट्टी की ठंडी पट्टी बाँधने से ज्वर, दस्त, हैजा, बवासीर, पेचिश, कब्ज आदि ठीक होते हैं । यह भोजन से एक घंटा पूर्व या ढाई घंटे बाद बाँधनी चाहिए ।

**(९) उषापान**—प्रातः उठते ही शौच से पूर्व एक गिलास ठंडा पानी पीना । इससे कब्ज की शिकायत दूर होती है । फेफड़े और दिल स्वस्थ होते हैं, शरीर में स्फूर्ति आती है, आँखों की ज्योति बढ़ती है और मनुष्य दीर्घायु होता है ।

**(१०) तैरना**—जल में तैरना उत्तम व्यायाम है । इससे हाथ-पैर का अच्छा व्यायाम हो जाता है । इससे नसों में स्फूर्ति आती है, मन और मस्तिष्क में नया जीवन आता है, रक्तप्रवाह में प्रगति होती है और भूख अच्छी लगती है ।

**(११) आँख के रोगों की चिकित्सा**—लाल फिटकिरी के ऊपर पतली धार

से पानी डालना और Eye Glass में उस लोशन को लेकर क्रमशः दोनों आँखों को धोना । एक आँख को हाथ से बंद करके दूसरी आँख को Eye Glass में डुबोना और ८-१० बार खोलना और बन्द करना । जल बदल कर इसी प्रकार दूसरी आँख धोना । इससे आँख की बीमारियाँ दूर होती हैं । नियमित रूप से प्रतिदिन एक बार करने से आँख की कोई बीमारी नहीं होने पाती ।

**(१२) उदर-कृमि**—ताजी पड़ी हुई बर्फ को गुड़ के साथ खाने से पेट के सभी कीड़े मर जाते हैं ।

**(१३) विष-निवारण**—बिच्छू, ततैया आदि के काटने पर काटे हुए स्थान पर ऊपर से जल की धार लगातार डालने से विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है ।

**(१४) ज्वर-ताप**—ज्वर का ताप अधिक होने पर रोगी के माथे पर शीतल जल की पट्टी रखने से ताप न्यून हो जाता है और उसकी बेहोशी आदि दूर हो जाती है । गीली मिट्टी की पट्टी भी ज्वर का ताप कम करती है ।

**(१५) कुस्वप्न, स्वप्नदोष आदि**—कुस्वप्न और स्वप्नदोष आदि के निवारण के लिए सोते समय शीतल जल से पैरों को धोना बहुत लाभप्रद होता है । मूत्रेन्द्रिय को शीतल जल से धोने से भी ये रोग नष्ट होते हैं ।

**(१६) प्रमेह**—पुरुषों और स्त्रियों के प्रमेह रोग को दूर करने के लिए कटि स्नान (टब बाथ) उत्तम उपाय है । कटि-स्नान और शिश्न-स्नान वीर्य संबन्धी रोगों को दूर करने के लिए लाभप्रद हैं ।

**(१७) चर्मरोग**—वर्षा के स्वच्छ जल में स्नान करना और रोगग्रस्त अंश पर शीतल जल धार से डालना चर्मरोग को नष्ट करता है ।

**(१८) उदररोग**—वर्षा का शुद्ध जल उपवास आदि के समय पान करने से शरीर के प्रायः सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ।

**(१९) जलपान**—आधुनिक चिकित्साशास्त्रियों का मत है कि पर्याप्त मात्रा में जल न पीने से मनुष्य को सैकड़ों रोग हो जाते हैं । अतः प्रत्येक मनुष्य को दिन में कम से कम दो लिटर पानी पीना चाहिए । जल शरीर के अन्दर के सभी दूषित तत्त्वों को बाहर निकाल देता है और शरीर को स्वस्थ रखता है ।

**(२०) सूर्य-किरण-चिकित्सा**—विभिन्न रंग की बोतलों में सूर्य की किरणों में रखा हुआ जल ओषधि के रूप में हो जाता है और यह विविध रोगों की चिकित्सा के काम आता है । सूर्य-किरण-चिकित्सा में इसका विवरण दिया गया है ।

## (ङ) मृत्-चिकित्सा

प्राकृतिक पदार्थों में मिट्टी का भी चिकित्सा की दृष्टि से महत्त्व है । वेदों में चिकित्सा के लिए मिट्टी के उपयोग का विधान है । अथर्ववेद का कथन है कि दीमक समुद्र से मिट्टी बाहर निकालकर बमी बनाती हैं । यह बमी की मिट्टी आस्राव (रक्त प्रवाह, खून बहना) की दवा है ।[३६] इसको रोगनाशक भी बताया है । इसका मलहम की तरह लेप भी किया जाता है और यह घाव को ठीक करती है ।[३७] विषचिकित्सा के रूप में बमी की मिट्टी का उपयोग बताया गया है ।[३८] सुश्रुतसंहिता कल्पस्थान में सर्पदंश में बमी की मिट्टी को दूध, घी, मधु के साथ मिलाकर पिलाने का विधान है । सुश्रुत का कथन है कि यदि अन्य ओषधियाँ न मिलें तो बमी की काली मिट्टी का उपयोग करें ।[३९] नारायण उपनिषद् में मिट्टी का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि मिट्टी में बहुत गुण हैं । यह शारीरिक पुष्टि देती है ।[४०] मल्लविद्या के विशेषज्ञ मिट्टी को शारीरिक पुष्टि का आधार मानते हैं ।

मिट्टी का चिकित्सा के रूप में अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है—बुखार उतारने के लिए मिट्टी की लोई सिर पर रखी जाती है, उदरविकार और उदर शूल आदि में इसी प्रकार मिट्टी की लोई पेट पर बाँधी जाती है, रक्त प्रवाह बन्द करने के लिए मिट्टी लगाई जाती है, सर्पदंश आदि में उक्त प्रकार से मिट्टी का प्रयोग होता है ।

## (च) यज्ञ-चिकित्सा

वेदों में यज्ञ को भी चिकित्सा का एक प्रकार माना गया है । यज्ञ में चार प्रकार के द्रव्य आहुति के रूप में डाले जाते हैं । ये हैं— १. सुगन्धित—केसर, कस्तूरी, चन्दन आदि । २. पुष्टिकारक—घृत, दूध, फल, अन्न गेहूँ चावल आदि । ३. मिष्ट—शक्कर, छुहारा, किशमिश आदि । ४. रोगनाशक—गिलोय, गूगल, अपामार्ग आदि । इनमें रोगनाशक ओषधियाँ रोगों को नष्ट करने के लिए हैं । रोगों के अनुसार रोगनाशक विभिन्न ओषधियों का भी चयन किया जाता है ।

वेदों में यज्ञों का बहुत अधिक महत्त्व वर्णन किया गया है । इसका मुख्य कारण यह है कि यज्ञ ही एक प्रकार है, जिसके द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखा जा सकता है । यज्ञों के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, वायुमंडल की पवित्रता, विविध रोगों का नाश, शारीरिक और मानसिक उन्नति, रोग-निराकरण के द्वारा दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है । यजुर्वेद का कथन है कि सृष्टि में ऋतुचक्ररूपी यज्ञ नियमित रूप से हो रहा है, अतः सृष्टिचक्र की व्यवस्था है । इस महायज्ञ में वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु समिधा है और शरद् ऋतु सामग्री (हवि) है ।[१] यह यज्ञ-प्रक्रिया विश्व

की नियामक है । सारे संसार में पंच तत्त्वों द्वारा यह देव यज्ञ निरन्तर किया जा रहा है । सामान्य यज्ञ इसी महान् यज्ञ का प्रतीक है ।

यज्ञ में रोगनाशक ओषधियाँ भी डाली जाती हैं, अतः यज्ञ की एक प्रमुख विशेषता रोगनाशन भी है । अथर्ववेद का कथन है कि जिस घर में नियमपूर्वक यज्ञ किया जाता है, वहाँ रोगकृमि स्वयं नष्ट हो जाते हैं ।[२] अपचित् (गंडमाला) रोग को दूर करने के लिए विधिपूर्वक मन लगाकर यज्ञ करना उपाय बताया गया है ।[३] यज्ञ में गूगल को डालने से सभी रोगों का नाश बताया गया है । अथर्ववेद का कथन है कि गूगल की सुगन्ध ओषधि है और यह सभी रोगों को दूर करती है ।[४] इसी प्रकार अन्य रोगनाशक ओषधियों की सुगन्ध वायु के द्वारा फैफड़ों में पहुँचती हैं और शरीर के रोगों को नष्ट करती है ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त यज्ञ-चिकित्सा विषय पर दिया गया है ।[५] 'मैं यज्ञ के द्वारा रोगी को राजयक्ष्मा तथा अन्य अज्ञात रोगों से मुक्त करता हूँ । यदि कोई छूत वाली बीमारी लगी है तो उसको भी यज्ञ के द्वारा दूर करता हूँ ।'[६] 'मैं मरणासन्न व्यक्ति को भी यज्ञ के द्वारा मृत्यु के मुख से छुड़ा लाता हूँ और उसे शतायु बना देता हूँ ।'[७] 'सौ वर्ष की आयु देने वाले यज्ञ के द्वारा मैं इसको मृत्यु से बचाकर लाया हूँ । यह सौ वर्ष जीवित रहेगा । इन्द्र इसे सारे दुःखों से पार लगाएगा ।'[८] 'यज्ञ के द्वारा तुझे नया जीवन प्रदान किया गया है । तेरे सारे अंगों को नीरोग करके तुझे पूर्ण आयु प्रदान की जा रही है ।'[९] 'यज्ञ के द्वारा तेरे अन्दर प्राण और अपान शक्तियाँ प्रवेश करती हैं । इनके द्वारा तू सैकड़ों मृत्युओं को दूर भगाता है ।'[१०]

इससे ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषियों ने यज्ञ का चिकित्सा के रूप में भी प्रयोग किया था ।

## (छ) मानस-चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक चिकित्सा

मनुष्य का मन सुख और दुःख का कारण है ।[११] मन यदि शुद्ध है तो रोग-शोक आदि नहीं होते हैं । यदि मन अशुद्ध है तो नाना प्रकार के रोग होते हैं । चरक ने तीन प्रकार के रोग माने हैं—निज (वात-पित्तादिजन्य), आगन्तुक (अग्नि, विष आदि जन्य) और मानस (मानसिक विकार से जन्य) ।[१२] चरक के अनुसार मानस दोष रजोगुण और तमोगुण के कारण होते हैं । इनके कारण ही काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या, मद, शोक, चिन्ता, उद्वेग, भय और हर्ष आदि होते हैं ।[१३] मानस रोगों का कारण मन है, अतः इनकी चिकित्सा भी मानस ही उपयुक्त होती है । अथर्ववेद में

मानस चिकित्सा का उल्लेख है कि वरुण देव ने मनोवैज्ञानिक उपचार के द्वारा चिकित्सा की ।[१४]

मन की शक्तियाँ अनन्त हैं । मन असाध्य से असाध्य कार्य को साध्य बना देता है । मन मानव के हृदय में विद्यमान एक अक्षय ज्योति है ।[१५] यह ज्योति आत्मिक बल, मनोबल एवं इच्छाशक्ति देती है । ब्राह्मण ग्रन्थों में मन को विराट्, ब्रह्म, परम ब्रह्म कहा गया है ।[१६] अर्थात् मन ब्रह्म के तुल्य अनन्त शक्ति-संपन्न है । अथर्ववेद का कथन है कि मन ही रोग आदि का कारण है और वही उसका निवारक भी है ।[१७] मनोबल का ह्रास ही रोग-शोक आदि का कारण है और उसका उत्थान इन दोषों का नाशक है । अतएव अथर्ववेद का कथन है कि मैं मनोबल के विकास के द्वारा मृत्यु के मुँख में पड़े हुए मित्र को बचा लाता हूँ और उसे पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता हूँ ।[१८]

मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के अन्तर्गत मनोबल के विकास के अतिरिक्त आश्वासन चिकित्सा और संकल्पचिकित्सा (Auto Suggestion) भी आते हैं । रोगी को आश्वासन देना और उसका मनोबल बढ़ाना भी चिकित्सा का एक प्रकार है । अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में इस प्रकार की आश्वासन-चिकित्सा प्राप्त होती है—'हे रोगी, तू भयभीत न हो, तू नहीं मरेगा । मैं तुझे जीवन देकर शतवर्ष की आयु दे रहा हूँ ।'[१९] 'तुम ओषधि लेते रहो, मैं तुम्हें दीर्घायु करता हूँ ।'[२०]

कुशल वैद्य आश्वासन-चिकित्सा के द्वारा रोगी का मनोबल बढ़ाते हैं और उसके रोग-निवारण में सफल होते हैं ।

संकल्प चिकित्सा भी मानस-चिकित्सा का एक प्रकार है । इसमें रोगी को कोई ओषधि न देकर उसके मनोबल को जागृत किया जाता है । मनुष्य का मनोबल उसके अन्दर एक अपूर्व चेतना जागृत करता है और रोगी अनुभव करता है कि वह उस रोग से मुक्त हो रहा है । रोगी का दृढ़ आत्मविश्वास रोगाणुओं को नष्ट करता है और रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करता है ।[२१] पाश्चात्य जगत् में इस Auto Suggestion की विधि को बहुत महत्त्व दिया जा रहा है और इसके द्वारा असाध्य रोगों को भी ठीक किया जा रहा है ।

मानस-चिकित्सा में मन की पवित्रता पर बल दिया जाता है । चरित्र जितना उच्च होगा, उतनी ही शीघ्रता से रोगों का निवारण होगा । अथर्ववेद का कथन है कि सत्य के द्वारा बृहस्पति ने रोगी को मृत्यु के पाश से बचाया ।[२२] अष्टांगहृदय में वाग्भट का कथन है कि दयालु, रागद्वेष से मुक्त मन सभी प्रकार के ज्वरों को नष्ट कर देता है ।[२३] इससे ज्ञात होता है कि मन की पवित्रता, सत्यशीलता एवं धार्मिकता सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने में समर्थ है ।

## (ज) मन्त्र-चिकित्सा

मन्त्र-चिकित्सा ध्वनि-तरंग-चिकित्सा है । मंत्रों से जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, वे तरंग के रूप में ऊपर जाती हैं और सूर्य की सूक्ष्म शक्तियों को आत्मसात् करके साधक के शरीर में प्रविष्ट होती हैं । इन शक्तियों के प्रभाव से शरीर के रोग दूर होते हैं । संगीत में भी यही शब्दशक्ति कार्य करती है । आधुनिक वैज्ञानिकों ने संगीत की सहायता से मनुष्यों और पशुओं के अनेक रोग दूर किये हैं । डॉ० एडवर्ड पोडोलास्की (न्यूयार्क) के अनुसार संगीत से रक्तसंचालन प्रभावित होता है और शिराओं में नवजीवन का संचार होता है । इसके अभ्यास से जिगर और फेफड़े के रोग नहीं होते हैं ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में मंत्रशक्ति का उल्लेख है । ऋग्वेद का कथन है कि मन्त्र तेजोमय हैं । ये रोगों और रोगकृमियों को नष्ट करते हैं ।[२४] वेद मन्त्रों में इन्द्र आदि देवों का निवास है ।[२५] गायत्री में अमृत का बीज है ।[२६] गायत्री मंत्र को वरदा वेदमाता कहा गया है और उसके पाठ से दीर्घायु, प्राण, प्रजा, कीर्ति आदि की प्राप्ति का वर्णन किया गया है ।[२७] मन्त्रशक्ति से देवों ने असुरों को हराया ।[२८] अग्नि मंत्रशक्ति से रोगकृमियों को नष्ट करता है ।[२९] अथर्वा ऋषि को मन्त्रविद्या का विशेषज्ञ बताया गया है । उसके शिर में दिव्य शक्तियों का खजाना भरा हुआ था ।[३०]

मन्त्रों के सस्वर पाठ से जो सूक्ष्म ध्वनि-तरंगें उत्पन्न होती हैं, वे शरीर और मन को पुष्ट करती हैं । इससे शरीर में विद्यमान दूषित तत्त्व नष्ट होते हैं । इसका फल यह होता है कि मनुष्य मानसिक तनाव, शिरोरोग, स्नायुरोग आदि से मुक्त होता है । मन्त्रशक्ति से दुर्विचारों का नाश होता है, अतः मन शुद्ध और पवित्र रहता है ।[३१] मन की पवित्रता से मानस रोग स्वयं शान्त हो जाते हैं । मन्त्रचिकित्सा एक अद्‌भुत चिकित्सा है । इसमें संगीत और शब्दशक्ति का समन्वय रहता है, अतः इसकी गुणवत्ता बढ़ जाती है ।

## (झ) हस्तचिकित्सा या हस्तस्पर्शचिकित्सा

ऋग्वेद और अथर्ववेद में हस्तस्पर्श से रोगनिवारण की विधि दी गई है ।[३२] इस विधि की वर्तमान मेस्मरिज्म (Mesmerism) और हिप्नाटिज्म (Hypnotism) से तुलना करने से ज्ञात होता है कि वेदों की इस हस्तस्पर्श-चिकित्सा का इनसे बहुत साम्य है ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद के अनुसार हस्तस्पर्श से रोग-निवारण की विधि इस प्रकार है:—शरीर में दो वायुएँ हैं—प्राण और अपान । इनमें से प्राणवायु शरीर

को शक्ति प्रदान करती है और अपान वायु शरीर के दोषों को बाहर निकालती है ।[३३] ये दोनों वायुएँ सभी प्रकार के रोगों की चिकित्सा हैं ।[३४] रोग-निवारण के लिए रोगी की चिकित्सा करते समय अपने हाथों को फैलाना, अंगुलियों को खोलना, हाथों में आरोग्यदायक शक्ति का अनुभव करना, दोनों हाथों से रोगी के शरीर को छूना और साथ ही मन्त्र बोलना । हाथ से छूते समय यह कहना कि मेरे दोनों हाथ सुखदायी हैं, इनका स्पर्श लाभकारी है, ये तेरे सारे रोगों को दूर करेंगे, अब तेरे अन्दर शक्ति आ रही है और रोग दूर हो रहा है । इस प्रकार कहते हुए अंगुलियों से रोगी के शरीर को स्पर्श किया जाता है और हाथ फेरा जाता है ।[३५] इस विधि से मरणासन्न व्यक्ति तक को जिलाया जा सकता है ।[३६]

मेस्मरिज्म यह नाम मेस्मर के नाम पर पड़ा है । श्री फ्रेडरिक एन्टाइन मेस्मर (Frederick Antoine Mesmer) का जन्म सन् १७३४ में वियेना में हुआ था । उसने मेस्मरिज्म के नियमों को २७ सूत्रों में दिया है । उसने अपने सूत्र १३ और १६ में प्राण और अपान शक्तियों को जीवस्थ चुम्बक शक्ति (Animal Magnatism) कहा है । उसका कथन है कि प्राणशक्ति को उद्बुद्ध किया जा सकता है और हस्तस्पर्श के द्वारा उसे दूसरे व्यक्ति में स्थानान्तरित किया जा सकता है । इस हस्तस्पर्श के द्वारा स्नायुसंबन्धी रोगों को साक्षात् दूर किया जा सकता है और अन्य रोगों को असाक्षात् दूर कर सकते हैं । श्री ब्रेड (Braid) ने सन् १८४३ में हिप्राटिज्म विषय पर अपनी पुस्तक प्रकाशित की और हिप्राटिज्म की विधि तथा पारिभाषिक शब्दावली प्रस्तुत की । श्री लीबो (Liebault) ने हिप्राटिज्म को पुष्ट और परिवर्धित किया । इन दोनों विधियों के साथ ही विचार-प्रवेश और आत्म-विचार-शक्ति (Auto Suggestion) का संबन्ध श्री एम० एमिल कू (M. Emile Coue) ने किया । इन तीनों विधियों के समन्वय से यह विधि पूरी मानी जाती है ।

यह विधि संक्षेप में इस प्रकार है—लेटकर या बैठकर लम्बे सांस लेकर प्राणवायु या प्राणशक्ति को अन्दर पहुँचाना और उसी प्रकार लम्बे सांस छोड़कर दूषित अपान वायु को बाहर फेंकना । प्रतिदिन इसके अभ्यास के साथ ही किसी केन्द्र बिन्दु पर अपना ध्यान एकाग्र करने का अभ्यास करना । हाथों को रगड़कर उनमें विशेषरूप से अंगुलियों के अग्रभाग में, कम्पन या झनझनाहट अनुभव करना । जिस व्यक्ति की चिकित्सा करनी हो, उसे बैठाकर या लिटाकर दोनों आँखों के मध्यभाग में नाक की जड़ में अपना ध्यान एकाग्र करते हुए देखना, दोनों हाथों को रगड़कर कम्पन अनुभव करते हुए उसके शरीर पर शिर से पैर तक धीरे-धीरे छूते हुए या बिना छुए हाथ फेरना । साथ ही उसे नींद आने का विचार बार-बार देना । थोड़ी देर में रोगी को नींद आ जाती है और उस अवस्था में हाथ फेरते हुए तीव्र निद्रा आने

का आदेश दिया जाता है । पुनः हाथ फेरते हुए यह विचार दिया जाता है कि अब तेरा यह रोग नष्ट हो रहा है । इस कृत्रिम निद्रा की अवस्था में अन्तःकरण को भी प्रयोक्ता आदेश देता है । वह उसका पालन करता है और तदनुसार रोग दूर हो जाता है । पुनः आदेश देने पर रोगी जाग जाता है और अपने आपको रोगमुक्त पाता है । श्री कू के कथनानुसार आत्मविचार शक्ति या मनोबल के द्वारा प्रबल विचारों की सहायता से मनुष्य कठिन से कठिन रोगों से मुक्त हो जाता है ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में प्राण और अपान शक्तियों के जो गुण बताए हैं, वे मेस्मरिज्म और हिप्नाटिज्म में प्राप्त होते हैं । दोनों स्थानों पर प्राणशक्ति को बढ़ाने और अपान शक्ति के द्वारा दूषित वायु को बाहर निकालने का वर्णन है । हस्तस्पर्श, विचारों और आदेशों को देना, मन्त्र का पाठ या कथन, समान है । इससे ज्ञात होता है कि इन दोनों वर्तमान पद्धतियों में जो ढंग अपनाया गया है, उसका ही सूत्र रूप में निर्देश ऋग्वेद और अथर्ववेद में है ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में हिप्नाटिज्म को स्वप्नाभिकरण या स्वापनविद्या कहा है ।[३७] ऋग्वेद में इस सूक्त को 'प्रस्वापिनी उपनिषद्' कहा है ।[३८] इस स्वापन विद्या के प्रयोग से व्यक्ति को कृत्रिम रूप से सुलाया जाता है ।[३९] ऋग्वेद और अथर्ववेद का मत है कि इस स्वापन विद्या का प्रभाव स्त्रियों पर अधिक होता है ।[४०] कुत्तों आदि पशुओं को भी इसके प्रयोग से सुला दिया जाता है । हिप्नाटिज्म के विद्वानों का मत है कि इस विद्या का प्रभाव स्त्रियों और बच्चों पर विशेष रूप से होता है । उनकी मानसिक शक्ति न्यून होती है, अतः वे शीघ्र इसके प्रभाव में आ जाते हैं ।

रुद्र के हाथ को आरोग्यकारक, ओषधिरूप और जीवनशक्तिदाता कहा गया है ।[४१] हस्तचिकित्सक वैद्य रोगी को आश्वासन देते हुए कहता है कि मेरा दाहिना हाथ बहुत ही भाग्यशाली है और बायाँ हाथ उससे भी अधिक भाग्यशाली है । मेरे ये दोनों हाथ सब रोगों की चिकित्सा हैं और इनके स्पर्श से रोगों का शमन होता है ।[४२] ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों में हस्तचिकित्सा में दोनों हाथों की दसों अंगुलियों के प्रयोग और मंत्रपूर्वक हस्तस्पर्श का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह हस्तस्पर्श रोगनाशक है ।[४३]

इससे ज्ञात होता है कि हस्तस्पर्शचिकित्सा को दोनों वेदों में मान्यता दी गई है । पाश्चात्य जगत् में इस चिकित्सा पर बहुत अनुसन्धान कार्य चल रहा है ।

## (ञ) उपचार-चिकित्सा

परिचारकों आदि के द्वारा रोगी की सेवा-शुश्रूषा आदि के जो उपाय किए जाते हैं, उसे उपचार-चिकित्सा कहते हैं । रोगी की ठीक ढंग से देखभाल चिकित्सा

का अंग है । इसमें परिचारक के गुण और कर्तव्य, रोगी के साथ वार्तालाप, व्यवहार, रोगी को ओषधि देना आदि का समावेश है । चरक ने परिचारक के चार गुण बताए हैं—१. सेवा कार्य का पूर्ण ज्ञान, २. चतुरता, ३. रोगी के प्रति प्रेमभाव, ४. पवित्रता ।[४४] अथर्ववेद में उपचार-चिकित्सा के कतिपय तथ्यों का उल्लेख मिलता है:—

१. रोगी के समीप उसके निकट संबन्धी, दूरस्थ संबन्धी या मित्र आदि रहें ।[४५] इनके समीप रहने से उसका मनोविनोद होगा और ठीक परिचर्या होने से रोग वृद्धि नहीं होगी । रोगी बातचीत में लगा रहेगा, अतः उसे रोग के कष्ट की अनुभूति अधिक नहीं होगी ।

२. उपचार के समय रोगी को किसी दिवगंत का स्मरण नहीं कराना चाहिए ।[४६] अन्यथा उसका धैर्य नष्ट होगा और वह मूर्च्छित आदि हो सकता है ।

३. रोगी को उसके माता-पिता या भाई-बहन ओषधि-सेवन करावें ।[४७] ऐसा करने से उसे विश्वास रहेगा कि मेरे प्रियजन मुझे ठीक दवा खिला रहे हैं । ओषधि तैयार करने का काम भी संबन्धी जन ही करें ।

४. 'प्रत्यक् सेवस्व भेषजम्' कें द्वारा स्पष्ट किया गया है कि औषध सामने ही प्रेमपूर्वक खिलानी चाहिए ।[४८] रोगी इस भावना से दवा ले कि वह उसके लिए लाभप्रद है । इसके लिए ओषधि के गुणों की प्रशंसा करना भी उपयुक्त है ।

५. रोगी के मनोबल को जागृत करना ।[४९] रोगी को यह विश्वास दिलाना कि वह नीरोग हो जाएगा और रोग उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा ।

इस प्रकार उपचार-चिकित्सा जीवन-रक्षण की महत्त्वपूर्ण विधि है ।

**५. नीरोग रहने के कतिपय उपाय (गुर)**—भगवद्गीता में संक्षेप में नीरोग रहने और सर्वदुःख-मुक्ति के उपाय दिए गए हैं । ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपादेय हैं । ये हैं—भोजन पर नियन्त्रण, दैनिक कार्यों को नियमित रूप से करना, समस्त कार्यों में अनासक्ति की भावना, ठीक समय सोना और ठीक समय पर उठना ।[५०]

१. सूर्य की किरणों का सेवन । प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्य की किरणों को ५ से १५ मिनट तक छाती पर लेना । जाड़े के दिनों में सूर्य की किरणों को नग्न शरीर पर लेना और धूप-स्नान करना ।

२. जीवनी शक्ति देने वाली आक्सिजन की प्राप्ति के लिए प्रातः आधा या एक घंटा शुद्ध हवा में घूमना । साथ ही खुली हवा में १५-२० लंबे सांस लेना ।

३. हरी घास या ओस पड़ी घास पर नंगे पाँव आधा घंटा घूमना ।

४. स्वच्छ जल प्रतिदिन कम से कम २ लिटर पीना । जल में कोई दोष हो तो उसे उबालकर और ठंडा करके बर्तन में रखें और पीवें ।

५. प्रतिदिन व्यायाम, भ्रमण और योगासन रोगों को दूर करते हैं ।

६. भोजन पर नियन्त्रण रखें । भूख से कुछ कम खावें । भोजन थोड़ा और खूब चबाकर खावें । गरिष्ठ भोजन हानिकर है ।

७. प्रतिदिन स्वच्छ जल से स्नान करना ।

८. मादक द्रव्यों का सेवन न करें । ये स्वास्थ्य के सबसे बड़े शत्रु हैं । ओषधियों का सेवन भी बहुत कम करें ।

९. रहने और सोने के कमरों में शुद्ध वायु और प्रकाश की व्यवस्था करें ।

१०. दीर्घायु के लिए संयम का पालन करना अनिवार्य है । उत्तेजक पदार्थों का सेवन, कामोत्तेजक अश्लील दृश्यों का देखना या अश्लील साहित्य का पठन स्वास्थ्य के लिए हानिकर है ।

११. ईश्वर-प्रार्थना मनःशुद्धि, चारित्रिक पवित्रता, मनोबल और आत्मविश्वास देती है ।

१२. सदा प्रसन्नचित्त रहें । चिन्ता को दूर भगावें । दान, दया, परोपकार आदि के कार्य मनुष्य को प्रसन्नचित्त रखते हैं और उसकी जीवनीशक्ति बढ़ाते हैं ।

●

---

**(क) सूर्यकिरण-चिकित्सा**

१. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । ऋग्० १.११५.२
२. प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः । प्रश्न उप० १.८
३. अपामीवां सविता साविषत् । ऋग्० १०.१००.८
४. अप सेधत दुर्मतिम्, आदित्यासः । ऋग्० ८.१८.१०
५. उद्यन् सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् । अथर्व० १७.१.३०
६. उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन् उत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ।। ऋग्० १.५०.११
७. अनु सूर्यम् उदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि । अथर्व० १.२२.१
८. या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः ।
रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परिदध्मसि ।। अथर्व० १.२२.३
९. परि त्वा रोहितैर्वर्णै-र्दीर्घायुत्वाय दध्मसि ।
यथायम् अरपा असद् अथो अहरितो भुवत् ।। अथर्व० १.२२.२

१०. सं ते शीर्ष्णः कपालानि, हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन् आदित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगम् अनीनशः ।। अ० ६.८.२२
११. अथर्ववेद ६.८. १ से २२
१२. अथर्व० ६.८३. १ से ४
१३. सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके । अ० ८.१.१
१४. मा छित्थाः.... सूर्यस्य संदृशः । अ० ८.१.४
१५. अ० १.१२.२ । ८.१.५
१६. सविता नः सुवतु सर्वतातिम् ।
सविता नो रासतां दीर्घमायुः ।। ऋग्० १०.३६.१४
१७. अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरि : ।
सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ।। ऋग्० ८.७२.१६
१८. सूर्यस्त्वा.... मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ।
१९. उत् पुरस्तात् सूर्य एति, विश्वदृष्टो अदृष्टहा । ऋग्० १.१९१.८
२०. सूर्ये विषमा सजामि, सो चिन्नु न मराति, नो वयं मराम । ऋग्० १.१९१.१०
२१. सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः । ऋग्० ८.७२.१६
२२. ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । अथर्व० १.१.१

## (ख) वायु चिकित्सा एवं प्राणायाम चिकित्सा

२३. प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणिति यच्च न । अथर्व० ११.४.१०
२४. अथर्व० ११.४.१ । ११.४.१५
२५. प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते । अथर्व० ११.४.११
२६. अथर्व० ४.१३.२; ११.४.७
२७. अथर्व० ११.४.१५
२८. अथर्व० ३.११.५
२९. प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । अथर्व० ११.४.१५
३०. अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे । अथर्व० ११.४.९
३१. प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ।। अथर्व० ११.४.१२
३२. दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।। मनु० ६.७१
३३. यददो वात ते गृहे, अमृतस्य निधिर्हितः । ऋग्० १०.१८६.३
३४. वातात् ने प्राणम् अविदम् । अथर्व० ८.२.३
३५. वात आ वातु भेषजम्० । ऋग्० १०.१८६.१
३६. ऋग्० १०.१३७.३
३७. ऋग्० १०.१८६.२
३८. आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् । ऋग्० १.३४.७
३९. मरुतो यस्य हि क्षये.... स सुगोपातमो जनः । ऋग्० १.८६.१

## (ग) अग्नि चिकित्सा

४०. अग्निर्हिमस्य भेषजम् । यजु० २३.१०

४१. अग्निं च विश्वशंभुवम् । ऋग्० १.२३.२०
अग्निष्कृणोतु भेषजम् । अथर्व० ६.१०६.३
४२. अग्निर्विषम् अहेर्निरधात् । अथर्व० १०.४.२६
४३. सर्वेषां च क्रिमीणां.... दहाम्यग्निना मुखम् । अथर्व० ५.२३.१३
अग्नी रक्षोहाऽमीवचातनः । अथर्व० १.२८.१
प्रति दह यातुधानान्... सं दह यातुधान्यः । अथर्व० १.२८.२
अग्ने हंसि न्यत्रिणम्० । ऋग्० १०.११८.१
४४. न तं यक्ष्मा अरुन्धते.... ।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते । अथर्व० १६.३८.१
४५. त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि ।
तान्यग्निः प्र ददातु मे । अथर्व० १६.३७.१
४६. इदं वर्चो अग्निना दत्तम्,
आगन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् । अथर्व० १६.३७.१
४७. अग्निः प्राणान् सं दधाति । अथर्व० ३.३१.६
४८. देवममीवचातनम् । ऋग्० १.१२.७
४६. अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः । ऋग्० १.१८६.३
५०. शमग्निरग्निभिः करत् । ऋग्० ८.१८.६

**(घ) जल-चिकित्सा**

१. प्रथमो दैव्यो भिषक् । यजु० १६.५
२. रुद्रं जलाषभेषजम् । ऋग्० १.४३.४
३. वरुणं भिषजां पतिम् । यजु० २१.४० । वरुणो भिषज्यन् । यजु० १६.८०
४. अप्सु मे सोमो अब्रवीद् अन्तर्विश्वानि भेषजा ।
आपश्च विश्वभेषजीः । ऋग्० १.२३.२०
५. अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम् । ऋग्० १.२३.१६
६. आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ऋग्० १.२३.२१
७. आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि । ऋग्० १.२३.२३
८. आपो विश्वस्य भेषजीः, तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् । अथर्व० ३.७.५
६. आपः.... भिषजां सुभिषक्तमाः । अथर्व० ६.२४.२
१०. आपो ..... हृद्द्योतभेषजम् । अथर्व० ६.२४.१
११ अथर्व० ६.२४.१
१२. अथर्व० ६.२३. १ से ३
१३. आ पर्जन्यस्य वृष्ट्या० । अथर्व० ३.३१.११
१४. अथर्व० १.५.१
१५. अथर्व० १.५.२
१६. अथर्व० १.५.४
१७. भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो० । अथर्व० १६.२.३
१८. अथर्व० १६.१. १०-११
१६. अयक्ष्मंकरणीरपः । अथर्व० १६.२.३
२०. जीवा स्थ... सर्वमायुः जीव्यासम् । अथर्व० १६.६६.१
२१. आपो रुद्रा घृतमिद् आपः० । अथर्व० ३.१३.५

२२. अथर्व० १०.५.७
२३. शिवान् अग्नीन् अप्सुसदः० । अ० १६.१.१३
२४. अमूर्या उप सूर्ये० । अ० १.४.२
२५. अ० १.४.१; अ० ६.२३.१
२६. आपो धन्वन्याः, अनूप्याः, खनित्रिमाः, वार्षिकीः । अ० १.६.४
२७. आपो हैमवतीः, उत्स्याः, सनिष्यदाः, वर्ष्याः । अ० १६.२.१
२८. पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् । अ० १.३.१
२६. अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् । अ० ११.८. २६ से ३२
३०. यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे । अ० ३.७.६
३१. इदं रुद्रस्य भेषजम् । अ० ६.५७.१
३२. रुद्र जलाषभेषज० । अ० २.२७.६
३३. जालाषमुग्रं भेषजम् । जालाषेणाभि षिञ्चत० । अ० ६.५७.२
३४. चरक०, सूत्रस्थान, अध्याय २७, जलवर्ग
सुश्रुत०, सूत्रस्थान, अध्याय ४५, जलवर्ग
अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान, अध्याय ५, तोयवर्ग
३५. जालाषेणाभि षिञ्चत । अथर्व० ६.५७.२

**(ङ) मृत्-चिकित्सा**

३६. उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ।। अथर्व० २.३.४
३७. अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् । अथर्व० २.३.५
३८. यद् वो देवा उपजीका.. इदं दूषयता विषम् । अथर्व० ६.१००.२
३६. पाययेतागदांस्तांस्तान् क्षीरक्षौद्रघृतादिभिः ।
तदभावे हिता वा स्यात् कृष्णा वल्मीकमृत्तिका । सुश्रुत, कल्पस्थान ५.१७
४०. मृत्तिके देहि मे पुष्टिं, त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । नारायणोपनिषद् १.८

**(च) यज्ञ-चिकित्सा**

१. वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः । यजु० ३०.१४
२. तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे । अ० ७.७६.५
३. मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि । अ० ६.८३.४
४. न तं यक्ष्मा अरुन्धते....
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते । अ० १६.३८. १ और २
५. ऋग्० १०.१६१. १ से ५; अथर्व० ३.११. १ से ८
६. ऋग्० १०.१६१.१
७. ऋग्० १०.१६१.२
८. शतायुषा हविषाहार्षमेनम् । ऋग्० १०.१६१.३
६. सर्वमायुश्च तेऽविदम् । ऋग्० १०.१६१.५
१०. प्र विशतं प्राणापानौ... व्यन्ये यन्तु मृत्यवः० । अथर्व० ३.११.५

**(छ) मानस चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक चिकित्सा**

११. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । मैत्रायणी उप० ४.११

१२. त्रयो रोगा इति-निजागन्तुमानसाः । चरक० सूत्रस्थान ४५
१३. रजस्तमश्च मानसौ दोषौ । चरक० विमानस्थान ५
१४. त्वं मनसा चिकित्सीः । अथर्व० ५.११.१
१५. यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यजु० ३४.३
१६. मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म । शतपथ ब्रा० १४.६.१०.१५
१७. मनो वां.... येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः । अ० १६.६.४
१८. यमादहं वैवस्वतात् सुबन्धोर्मन आभरम् ।
जीवातवे न मृत्यवे, अथो अरिष्टतातये ।। ऋग्० १०.६०.१०
१६. सोऽरिष्ट न मरिष्यसि, न मरिष्यसि मा बिभेः । अथर्व० ८.२.२४
मा बिभेर्न मरिष्यसि, जरदष्टिं कृणोमि त्वा । अथर्व० ५.३०.८
२०. प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा । अ० ५.३०.५
२१. यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि । अथर्व० ८.२.३
२२. तं ते सत्यस्य हस्ताभ्याम् उदमुञ्चद् बृहस्पतिः । अ० ३.११.८
२३. करुणार्द्रं मनः शुद्धं सर्वज्वरविनाशनम् । अष्टांग० चिकित्सित० १.१७३

**(ज) मंत्र-चिकित्सा**

२४. द्युमदमीवचातनं रक्षोहा । ऋग्० ७.८.६
२५. यस्मिन् इन्द्रो वरुणो.. देवा ओकांसि चक्रिरे । ऋग्० १.४०.५
२६. अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे । अथर्व० १३.३.२०
२७. स्तुता मया वरदा वेदमाता... आयुः प्राणं० । अथर्व० १६.७१.१
२८. येनासुराँ अभि देवा असाम । ऋग्० १०.५३.४
२६. अग्निष्टं ब्रह्मणा सह, निष्क्रव्यादमनीनशत् । ऋग्० १०.१६२.२
३०. तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः । अथर्व० १०.२.२७
३१. अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि । अथर्व० २.१०.१

**(झ) हस्त-चिकित्सा या हस्तस्पर्श-चिकित्सा**

३२. ऋग्वेद १०.१३७. १ से ७; अथर्व० ४.१३. १ से ७
३३. द्वाविमौ वातौ वातः० । ऋग्० १०.१३७.२
३४. त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे । अथर्व० ४.१३.३
३५. अथर्व० ४.१३. ५ से ७
३६. अथर्व० ४.१३.१
३७. स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम् । अथर्व० ४.५.७
३८. ऋग्वेद ७.५५. २ से ८
३६. ऋग्० ७.५५.७, अथर्व० ४.५.१
४०. ऋग्० ७.५५.८, अथर्व० ४.५. २ और ३
४१. क्व स्य ते रुद्र मृडयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः । ऋग्० २.३३.७
४२. अयं मे हस्तो भगवान्, अयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ।। अथर्व० ४.१३.६
४३. हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ।। अथर्व० ४.१३.७, ऋग्० १०.१३७.७

**(ञ) उपचार चिकित्सा**

४४. उपचारज्ञता दाक्ष्यमनुरागश्च भर्तरि ।
शौचं चेति चतुष्कोऽयं गुणः परिचरे जने ।। चरक० सूत्र० ६.८
४५. आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः । अथर्व० ५.३०.१
४६. मा पूर्वान् अनु गाः । अ० ५.३०.१
४७. यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः । अ० ५.३०.५
४८. प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा । अ० ५.३०.५
४९. इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह । अ० ५.३०.६
५०. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।। गीता ६.१७



अध्याय ६

# शल्य-चिकित्सा

१. शल्य-चिकित्सा
२. मधुविद्या, अपिकक्ष्य विद्या और प्रवर्ग्य विद्या
३. छिन्न अंगों को जोड़ना
४. अपचित् (गंडमाला) की चिकित्सा
५. मधुविद्या और प्रवर्ग्य विद्या
६. मूढगर्भ-चिकित्सा
७. मूत्राघात-चिकित्सा
८. मूत्रनाडी-चिकित्सा
९. सुख-प्रसूति
१०. प्रसूति-ज्ञान
११. बाण-विद्ध अंग की चिकित्सा
१२. पशु-चिकित्सा
१३. शल्य-चिकित्सा के आठ प्रकार

अध्याय ६

# शल्य-चिकित्सा

**१. शल्य-चिकित्सा**—वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों मे शल्य चिकित्सा से संबद्ध महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं । इनमें भी विशेष सामग्री ऋग्वेद और अथर्ववेद में ही प्राप्त होती है । शल्य चिकित्सा से संबद्ध जितने मंत्र हैं, वे प्रायः अश्विनी और इन्द्र से संबद्ध हैं । अश्विनी देवताओं के वैद्य हैं और वे कायचिकित्सा और शल्य-चिकित्सा में प्रवीण हैं ।[१] असंभव से असंभव कार्यों को भी अश्विनी सद्यः कर देते हैं, अतः ऋग्वेद में अनेक सूक्तों में उनके महत्त्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख है ।[२]

चरक के अनुसार आयुर्वेद का उद्भव ब्रह्मा से हुआ है । ब्रह्मा से सारी विद्या प्रजापति (दक्ष प्रजापति) ने ग्रहण की और प्रजापति से अश्विनी कुमारों ने और अश्विनी से इन्द्र ने, इन्द्र से भरद्वाज ने और उनसे अन्य ऋषियों ने ।[३]

अश्विनी कौन हैं ? इसकी अनेक प्रकार से निरुक्त, ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में व्याख्या की गई है—द्यावापृथिवी, अहोरात्र, सूर्य-चन्द्र, दो आँख, दो नाक, दो तारे आदि । परन्तु रोगचिकित्सा की दृष्टि से इनकी संगति ठीक नहीं बैठती है । शास्त्रीय सिद्धान्त है कि 'अग्नीषोमीयं जगत्' यह सारा संसार अग्नितत्त्व (Oxygen) और सोमतत्त्व (Hydrogen) से बना है । इन दोनों का समीकरण ही जीवन तत्त्व है । दोनों में से एक तत्त्व की आपेक्षिक न्यूनता या वृद्धि से सारे रोग होते हैं । अतः अग्नि + सोम को अश्विनी का रूप माना जा सकता है । शरीर में प्राण और अपान अग्नि-सोम के प्रतिनिधि हैं, अतः शतपथ ब्राह्मण ने दोनों नाक को अश्विनौ कहा है ।[४] 'अश्नुवाते इति अश्विनौ' अग्नि-सोम सर्वत्र व्याप्त हैं, अतः इन्हें अश्विनी कह सकते हैं । इनका सामंजस्य ही सभी रोगों का निवारक है ।

अश्विनी के लिए मंत्रों में दो विशेषण मुख्य रूप में आए हैं—दस्र और नासत्य ।[५] ये दोनों शब्द अश्विनी के कार्यों पर प्रकाश डालते हैं । दस्र शब्द का अर्थ है—आश्चर्यजनक काम करने वाले, नासत्य का अर्थ है—जिनका कहीं अभाव नहीं है, अर्थात् सर्वत्र विद्यमान । इस दृष्टि से अग्नि-सोम और प्राण-अपान अर्थ सुसंगत प्रतीत होता है ।

**२. मधुविद्या, अपिकक्ष्य विद्या और प्रवर्ग्य विद्या**—जैमिनीय ब्राह्मण में मधुविद्या और प्रवर्ग्य विद्या का उल्लेख मिलता है ।[६] सायण ने भी मधुविद्या और

प्रवर्ग्य विद्या का उल्लेख किया है ।[७] प्रवर्ग्य विद्या को अपिकक्ष्य विद्या भी कहा जाता था ।[८] ये विद्याएँ इन्द्र ने दधीचि को और दधीचि ने अश्विनी कुमारों को दीं ।[९] इस मंत्र में मधुविद्या और अपिकक्ष्य विद्या दोनों का उल्लेख है । अथर्ववेद में मधुविद्या का वर्णन है ।[१०] इसमें जीवन में माधुर्य, मधुर वचन, तेजस्विता, वाक्तत्त्व का महत्त्व आदि वर्णित है । आध्यात्मिक अर्थ में यह विद्या आनन्दरूप ब्रह्म की ओर ले जाती है, परन्तु भौतिक अर्थ में यह विद्या आयुर्वेद से संबद्ध है और इसके तीन रूप हैं—१. रसायन शास्त्र (Science of Rejuvenation), २. संधान शास्त्र (Plastic and Orthopaedic Surgery) ३. मृतसंजीवनी शास्त्र (Science of Reviving Dead) । रसायन शास्त्र के द्वारा पुरुष में नवशक्ति-संचार का प्रयोग है, संधान शास्त्र में क्षत-विक्षत अंगों को जोड़ना और मृतसंजीवनी में मृत को भी पुनर्जीवित करने का प्रकार बताया गया है ।

प्रवर्ग्यविद्या और अपिकक्ष्य विद्या शल्य क्रिया के अतिविशिष्ट रूप हैं । इनमें सिर को काटकर अलग रखना और किसी दूसरे जीव का सिर उसके स्थान पर धड़ से जोड़ देने की विधि बताई जाती है । यह अतिरहस्यात्मक विद्या है ।

उक्त मंत्र में कहा गया है कि अश्विनी कुमारों ने अथर्वा के पुत्र दधीचि का सिर काटकर एक ओर रख दिया और उसके स्थान पर घोड़े का सिर धड़ से जोड़ दिया । तब दधीचि ने अश्विनी कुमारों को मधुविद्या और अपिकक्ष्य विद्या सिखाई ।

शल्य-चिकित्सा के विशेष उल्लेखनीय चमत्कार ये हैं :—

**दृष्टिदान**—अश्विनी कुमारों ने अन्धे राजर्षि ऋज्राश्व को नेत्रज्योति प्रदान की ।[११] उन्होंने ऋषि कण्व को नेत्रज्योति देकर चलने-फिरने के योग्य बनाया ।[१२] अश्विनी कुमारों ने अंधे और पंगु परावृज ऋषि को देखने के लिए नेत्र और चलने के लिए पैर दिए ।[१३] अश्विनी कुमारों के लिए कहा गया है कि वे अन्धे, निर्बलों और घायलों की चिकित्सा के विशेषज्ञ हैं ।[१४]

**श्रवणशक्ति दान**—अश्विनी कुमारों की प्रशंसा में ही लिखा गया है कि उन्होंने नृषद् के पुत्र बहरे नार्षद ऋषि को श्रवणशक्ति प्रदान की ।[१५]

**युवा बनाना**—वृद्धों को युवा बनाने के अनेक उदाहरण दिए गए हैं । वृद्ध च्यवन ऋषि को अपनी दक्षता से अश्विनी कुमारों ने पुनः युवा बना दिया ।[१६] इसी प्रकार वृद्ध ब्राह्मण कलि और वन्दन ऋषि को उन्होंने युवा बनाया ।[१७]

**३. छिन्न अंगों को जोड़ना**—असुरों ने श्याव ऋषि के शरीर को तीन टुकड़ों में काट दिया था । अश्विनी कुमारों ने उसके कटे तीनों भागों को जोड़कर उसे स्वस्थ और नीरोग बनाया ।[१८] असुरों ने रेभ ऋषि को काटकर कूप में डाल दिया

था। अश्विनी कुमारों ने उसे कूप से निकाला और उसके छिन्न-भिन्न अंगों को फिर चिकित्सा के द्वारा ज़ोड़ दिया।[१९] ऋग्वेद और सामवेद में अश्विनी के अतिरिक्त इन्द्र को भी महान् चिकित्सक बताया गया है। वह किसी प्लास्टर की सहायता लिए बिना गर्दन (हँसली) आदि की टूटी हड्डियों को जोड़ देता है और सभी अंग-भंग को ठीक करके जोड़ों का मिला देता है।[२०]

अथर्ववेद में शल्य-चिकित्सा से संबद्ध कुछ ओषधियों का भी उल्लेख है। रोहणी ओषधि के विषय में कहा है कि यह घाव, चोट, हड्डी टूटने आदि की चिकित्सा है।[२१] इस सूक्त में भद्रा ओषधि का भी उल्लेख है। रोहणी को अरुन्धती कहा गया है। क्षत एवं मर्मस्थलों को अरुस् कहते हैं, उनके घावों आदि को ठीक करने के कारण रोहणी को अरुन्धती कहा है। इस सूक्त में शल्य-चिकित्सा से संबद्ध कुछ बातें विस्तार से दी हैं। भद्रा ओषधि घाव, चोट, जले हुए अंग एवं आघात से पिस गए हुए अंगों को ठीक करके जोड़ से जोड़ मिला देती है।[२२] आरे से कट गया हो, पत्थर से घाव हुआ हो तो भी यह ओषधि जोड़ से जोड़ मिला देती है।[२३] इस सूक्त में यह भी बताया गया है कि शल्य-चिकित्सा इस प्रकार होनी चाहिए कि मज्ज्ञा से मज्ज्ञा, जोड़ से जोड़ ठीक बैठ जाए। मांस के कटे हिस्से जुड़ जाएँ और हड्डियाँ ठीक बैठ जाएँ।[२४] इससे ज्ञात होता है कि शल्य-चिकित्सा में नस नाड़ियों और हड्डियों आदि का ठीक बैठाना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

रोहणी और भद्रा के विषय में निघण्टु आदि में यह वर्णन मिलता है। रोहणी ओषधि मांसरोहणी है। आयुर्वेद में इसे घाव आदि ठीक करने वाला कहा गया है। रोहणी सात ओषधियों के समूह का नाम भी है :—मंजीठ, कटुकी, हरड़, गंभारी, ब्राह्मी, नन्दा और हल्दी। ये घाव भरती हैं, अतः इन्हें रोहणी कहा जाता है। आयुर्वेदिक निघण्टु में मंजीठ, ब्राह्मी और हल्दी को रुधिर रोकने वाला, सूजन हटाने वाला और घाव भरने वाला कहा गया है। यहाँ पर रोहणी से मांसरोहणी ओषधि लेना उचित है। अथर्ववेद में घाव, अंग का छिल जाना, नीला पड़ जाना आदि की ओषधि भद्रा दी गई है।[२५] भद्रा ओषधि को सारिवा या अनन्तमूल कहते हैं। सारिवा दो प्रकार की है :—काली और सफेद। काली सारिवा को कैयदेव निघण्टु में भद्रा कहा गया है, अतः यहाँ काली सारिवा लेना चाहिए। अथर्ववेद में हड्डियाँ आदि के टूटने का वर्णन है। रोहणी और भद्रा ओषधियों से टूटी हुई हड्डियों आदि को जोड़ने का उल्लेख है।[२६] संभवतः इन ओषधियों का चूर्ण आदि दवा के रूप में लिया ज़ाता था और इनकी लकड़ियों आदि को कूट-पीस कर लेप आदि किया जाता था। अथर्ववेद में शरीर में बाण के लगने, उससे विष फैलने आदि का उल्लेख है। अंगों में चुभे हुए बाण आदि को चीर-फाड़ आदि के द्वारा बाहर निकाला जाता था और उस स्थान को पूर्णतया नीरोग किया जाता था।[२७]

अथर्ववेद में डंडे, रगड़ या बाण आदि से होने वाले घाव का इलाज लाक्षा बताया गया है ।[२८] लाक्षा (लाख) का गुण बताया गया है कि यह रक्षक और आरोग्यप्रद है । इसको पीने वाला सदा स्वस्थ रहता है और जीता है ।[२६] यह लाक्षा इन वृक्षों से प्राप्त होती हैं—भद्र (चीड़), प्लक्ष (पाकड़), अश्वत्थ (पीपल), खदिर (खैर), धव, न्यग्रोध (बड़) ।[३०] लाक्षा के नाम दिए हैं—सिलाची, स्परणी, अरुन्धती ।[३१]

अथर्ववेद में घाव, चोट, फोड़े, फुन्सी, चर्मरोग, काँख आदि की गिल्टियों के रोग, आँख, कान आदि के फैलने वाले चर्मरोगों आदि के लिए चीपुद्रु (चीड़) के स्राव (लीसा, लाक्षा) का उपयोग बताया गया है ।[३२] चीपुद्रु के लीसे का इतना अधिक महत्त्व बताया गया है कि इससे घाव, चोट आदि से लेकर हृदय की बीमारियों तक को ठीक किया जा सकता है ।[३३] यह गिल्टियों को तथा अंडकोष आदि के रोगों को भी ठीक करता है ।[३४] चीड़ के लीसे का मलहम बनाकर चोट घाव आदि पर उपयोग किया जाता है ।

**४. अपचित् (अपची, गंडमाला) की चिकित्सा**—अथर्ववेद में अपचित् अर्थात् गंडमाला रोग की चिकित्सा का उल्लेख मिलता है । अपचित् रोग गले के ऊपर की नसों में, ग्रीवा की नाड़ियों में और कन्धों की नाड़ियों में होता है ।[३५] इसके ५५, ७७ और ६६ भेद बताए गए हैं ।[३६] अन्यत्र इसके स्थान ग्रैव्य (ग्रीवा में होने वाला), उपपक्ष्य (कक्ष या बगल में होने वाला) और विजामन् (उरुसंधि या गुह्य अंगों में होने वाला) बताए हैं और इसे बहने वाला रोग कहा है ।[३७] अथर्ववेद के एक सूक्त में अपचित् के आठ भेदों का उल्लेख है:—१. एनी, २. श्येनी, ३. कृष्णा, ४. रोहिणी, ५. असूतिका, ६. रामायणी, ७. ग्लौ, ८. गलुन्त ।[३८]

इसकी चिकित्सा में सूर्यकिरण-चिकित्सा और चन्द्रकिरण-चिकित्सा का भी उल्लेख है ।[३६] सूर्य और चन्द्रमा की किरणों को विधिवत् अपचित् के स्थान पर डालने से अपचित् की गिल्टियाँ पक कर बह जाती हैं या सूखकर बैठ जाती हैं ।

अथर्ववेद में मुनिवृक्ष के मूल से इसको छेदकर इसका पीव निकालने का उल्लेख है ।[४०] वर्तमान निघण्टु ग्रन्थों में अगस्त्य वृक्ष को मुनिद्रुम लिखा है । इससे ज्ञात होता है कि मुनिवृक्ष की जड़ से कोई शस्त्र बनाया जाता था और उससे शल्यक्रिया की जाती थी ।

**५. मधुविद्या और प्रवर्ग्यविद्या**—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि मधुविद्या में सन्धानशास्त्र (अंग-प्रत्यारोपण) और मृतसंजीवनी विद्या भी आती है । प्रवर्ग्य या अपिकक्ष्य विद्या में दूसरे जीव-जन्तु का अंग मनुष्य में जोड़ देने की शिक्षा है । राजा खेल की पत्नी विश्पला की टाँग युद्ध में कट गई और अश्विनी

कुमारों ने धातु लौह की बहुत हल्की टाँग उसे लगा दी, जिससे वह चलने के योग्य हो गई ।[४१]

प्रवर्ग्यविद्या संबन्धी एक उल्लेख प्राप्त होता है कि अश्विनी कुमारों ने अथर्वन् (अथर्वा) के पुत्र दध्यङ् (दधीचि) का सिर काटकर अलग रख दिया और उसके स्थान पर एक घोड़े का सिर लगा दिया । तब दधीचि ने अश्विनी कुमारों को मधुविद्या, जो कक्ष्यविद्या और अपिकक्ष्यविद्या के नाम से प्रसिद्ध है, सिखाई ।[४२] तैत्तिरीय संहिता में वर्णन आया है कि रुद्र ने यज्ञ का सिर काट दिया । देवता अश्विनी कुमारों के पास पहुँचे कि तुम वैद्य हो, यज्ञ के इस कटे हुए सिर को फिर जोड़ दो । उनकी प्रार्थना पर अश्विनी कुमारों ने यज्ञ का सिर जोड़ दिया । इसके बदले में देवों ने अश्विनी कुमारों को भी यज्ञ में अंश देना प्रारम्भ किया ।[४३]

**६. मूढगर्भ-चिकित्सा**—जब गर्भस्थ बालक के अंग-प्रत्यंग विकसित हो चुके हैं और वह मन-बुद्धि आदि से युक्त हो गया है, किन्तु विगुण अपान वायु के कारण मार्ग में अवरुद्ध हो गया है तो उसे मूढगर्भ कहते हैं । अथर्ववेद में मूढगर्भ की चिकित्सा शल्यकर्म बताई है । गर्भाशय को चीर कर गर्भ को बाहर निकालने और रुके हुए मूत्र को मूत्राशय से बाहर निकालने का उल्लेख है । अथर्ववेद का कथन है कि हे गर्भिणी, मैं तेरे मूत्र-प्रवाहण द्वार का विदारण करता हूँ, तेरी योनि को भी विदीर्ण करता हूँ, जिससे गर्भ बाहर आ जाए ।[४४] मूढगर्भ रोग में मूत्राशय और गर्भाशय का विदारण अनिवार्य हो जाता है ।

**७. मूत्राघात-चिकित्सा**—मूत्रकृच्छ्र एवं अश्मरी रोगों में मूत्राशय में, मूत्राशय की पार्श्ववती गवीनी (Uterus) में या वृक्कों में मूत्र रुक जाता है । शल्यक्रिया आदि के द्वारा यह बाहर किया जाता है । अथर्ववेद में कहा गया है कि आंतों में जो मूत्र रुका है, गवीनियों या वस्ति (मूत्राशय) में जो मूत्र रुका है, उसे मैं बाहर निकालता हूँ । जैसे झील में रुके हुए जल को बाँध तोड़कर बाहर निकाला जाता है, इसी प्रकार मेहन (पौरुषग्रन्थि, Prostate Gland) में रुके हुए मूत्र को मैं बाहर निकालता हूँ ।[४५] जब पौरुषग्रन्थि बढ़ जाती है तो मूत्र रुक जाता है । उस समय पौरुषग्रन्थि को काटकर मूत्र निकालने का मार्ग बनाया जाता है । मेहन शब्द शिश्न का वाचक है । यहाँ पर पौरुषग्रन्थि अर्थ अभिप्रेत है ।

**८. मूत्रनाडी-चिकित्सा**—अथर्ववेद में मूत्रनाडी के शोधन के लिए शर (सरकंडा) का उपयोग बताया गया है । शर या इषीका को मूत्रमार्ग में प्रविष्ट करके मूत्र निकालते थे ।[४६] आधुनिक समय में इसी के विकसित रूप वस्तियंत्र (Catheter कैथेटर) का प्रयोग करके रुके हुए मूत्र को बाहर निकालते हैं । अथर्ववेद के वर्णन से ज्ञात होता है कि कुछ मूत्रल ओषधियों का लिंग में इषीका द्वारा प्रवेश किया जाता था, जिससे मूत्र शीघ्र बाहर आ जाता था ।[४७] आयुर्वेदिक ग्रन्थों में उल्लेख

मिलता है कि कपूर का चूर्ण मूत्रनली (लिंग) में प्रविष्ट किया जाए तो मूत्र सरलता से बाहर आ जाता है ।[४८] यह चूर्ण दूर्वा (दूब) या इषीका (सरकंडा) के द्वारा प्रविष्ट किया जाता है ।

**९. सुख-प्रसूति**—ऋग्वेद में वर्णन है कि अश्विनीकुमारों ने वध्रिमती की व्यथा सुनी और उन्होंने सुख-प्रसव कराया ।[४९] अथर्ववेद के एक सूक्त में नारी-सुख-प्रसूति का ही वर्णन है ।[५०] किस प्रकार दसवें मास में शिशु का सुखपूर्वक जन्म हो तथा आवश्यकतानुसार शल्यक्रिया के द्वारा शिशु को गर्भाशय से निकाला जाए ।[५१]

**१०. प्रसूति-ज्ञान**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में कुछ मन्त्रों में गर्भाशय और योनि के रोगों को दूर करने के लिए अग्नि तथा अन्य साधनों के उपयोग की आवश्यकता बताई गई है ।[५२] मन्त्र का कथन है कि गर्भाशय और योनि में जो दुर्णामन् कृमि (दुष्ट कृमि) घुस गए हैं, उनको अग्नि के द्वारा नष्ट करता हूँ ।[५३] इस प्रकार गर्भाशय और योनि के सभी हानिकारक कृमियों के नाश का उल्लेख है । चरक और सुश्रुत में गर्भाधान से लेकर शिशु-जन्म तक भ्रूण की स्थिति का विस्तृत विवरण दिया गया है और गर्भनाशक भावों को दूर करने की विधि बताई है ।[५४]

**११. बाण-विद्ध अंग की चिकित्सा**—ब्राह्मण ग्रन्थों में भी शल्यचिकित्सा के कुछ प्रयोग मिलते हैं । रुद्र का बाण प्रजापति को लग गया था । देवों ने उस बाण को निकालने के लिए पहले जल-चिकित्सा की । बाद में कुछ स्थान काट कर उस तीर को निकाला।[५५] शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ के द्वारा शल्य-चिकित्सा का वर्णन है । वृत्र के साथ युद्ध में जिन देवों को बाण लगे थे, उनको त्र्यम्बक यज्ञ के द्वारा बाहर निकाला गया और वे स्वस्थ हुए ।[५६]

**१२. पशु-चिकित्सा**—यजुर्वेद में रुद्र को महान् चिकित्सक बताया गया है । वह केवल मनुष्यों के ही रोगों को दूर नहीं करता, अपितु गाय, घोड़े और भेड़ बकरी आदि के भी रोगों को नष्ट करता है ।[५७] यजुर्वेद रुद्राध्यायी में कहा गया है कि वह रुद्र समस्त प्रजाओं की और पशुओं की रक्षा करता है । उन्हें रोगों और अंग-भंग आदि से सुरक्षित रखता है ।[५८] अतएव पुरुषों के साथ ही पशुओं को भी निर्भय रखने की वेद में प्रार्थना की गई है ।

अथर्ववेद में बताया गया है कि गाय के दोनों कानों को गर्म किए हुए लोहे से दाग देने से उसके अधिक बच्चे होते हैं ।[६०] दूसरे मंत्र में अश्विनी कुमार और रुद्र को पशुओं का चिकित्सक बताते हुए कहा गया है कि गायों के कानों को गर्म लोहे से दाग देने से उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है और उनकी पशुसन्तति अच्छी और अधिक होती है ।[६१]

अथर्ववेद में अरुन्धती ओषधि को पशुओं के लिए बहुत लाभप्रद बताया गया

है । इस ओषधि के सेवन से गाय का दूध बढ़ जाता है और जिस गाय को दूध नहीं होता, वह दूध देने लगती है । पशुओं का दूध बढ़ाने के लिए यह उत्तम ओषधि है । यह ओषधि गाय बैल सभी के लिए लाभकारी है । यह उनको नीरोग रखती है ।[६२]

**१३. शल्य-चिकित्सा के आठ प्रकार**—सुश्रुतसंहिता में शल्य-चिकित्सा अर्थात् शस्त्रकर्म के आठ प्रकार बताए हैं । ये हैं:—

१. छेदन (Excision)—काटकर अलग कर देना । जैसे- अर्श, चर्मकील, भगन्दर आदि ।

२. भेदन (Incision)—चीरना, जैसे- फोड़ा, विद्रधि आदि ।

३. लेखन (Scraping)—खुरचना, जैसे- मांसकन्द आदि ।

४. वेधन (Puncturing)—नोकदार शस्त्र से छेद करना, जैसे- सिरावेध आदि ।

५. एषण (Probing, Exploration)—शलाका द्वारा नाड़ीव्रण आदि का पता लगाना ।

६. आहरण (Extraction)—बाहर खींचकर निकालना, जैसे- बाण, कांटा आदि निकालना ।

७. विस्रावण (Drainage)—रक्त, पीब आदि को बाहर निकालना ।

८. सीवन (Stitching)—सीना या टांके लगाना ।

वाग्भट ने अष्टांगहृदय में उत्पाटन, कुट्टन, मन्थन, ग्रहण और दहन ये पाँच कर्म अधिक मानकर शस्त्रकर्म के तेरह भेद माने हैं । कुट्टन को Pricking (सूई द्वारा त्वचा में छेद करना), मन्थन को Drilling (मथते हुए छेद करना), ग्रहण को Catching (पकड़ना) तथा दहन को Cautery (यन्त्र, शस्त्रादि से दाह करना) कहते हैं । आजकल Cautery Knife का प्रचलन अधिक है । सुश्रुत ने इसको कहा है—'अग्नितप्तेन शस्त्रेण छिन्द्यात्' अर्थात् अग्नि में तपाए हुए शस्त्र से काटे ।

पूर्वोक्त वर्ण से ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्य में शल्यक्रिया के प्रायः सभी कर्मों का उल्लेख मिलता है ।

अथर्ववेद में बलास आदि के प्रसंग में छेदन क्रिया का उल्लेख आया है ।[६४] मूत्ररोध में भेदन क्रिया का वर्णन है ।[६५] इसी प्रकार मूढगर्भचिकित्सा में भेदन क्रिया द्वारा सुख-प्रसव का विधान है ।[६०] अपचित् और विद्रधि को वेधने का वर्णन है ।[६७] रक्तस्राव को रोकने के लिए धमनी-बन्धन का उल्लेख है ।[६८] बाण आदि लगने से यदि खून निकल रहा है तो उसके लिए जल-चिकित्सा का विधान है ।[६९] यह सद्योव्रण या आशुघात की चिकित्सा है । एक मंत्र में व्रण को पकाकर उससे पूय-स्राव

कराने का वर्णन है ।[७०] जलोदर में शल्यक्रिया द्वारा जल बाहर निकालने के द्वारा विस्रावण क्रिया का वर्णन है ।[७१] अथर्ववेद के एक सूक्त में टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने, कटे हुए अंग को ठीक करने तथा मांस मज्जा चर्म आदि को जोड़कर ठीक करने के लिए रोहणी वनस्पति के प्रयोग का विधान है ।[७२] यजुर्वेद में ओषधि द्वारा इन चार रोगों की चिकित्सा का वर्णन है—बलास (कफ, क्षय, कैन्सर), अर्शस् (मस्से), उपचित् (अपचित्, अपची, शोथ वाले रोग), पाकारु (मुखव्रण, मन्दाग्नि) ।[७३] अपचित् (गंडमाला) रोग में गर्दन में फोड़े से बहुत अधिक पीब निकलता रहता है । उसको साफकर ठीक करने का उल्लेख है ।[७४]



---

**शल्य-चिकित्सा**

१. देवानां भिषजौ । यजु० २१.५३
दैव्या भिषजा... अश्विना । ऋग्० ८.१८.८
२. ऋग्वेद १.११२. १ से २५; १.११६. १ से २५; १.११७. १ से २५ आदि ।
३. ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तम् आयुर्वेदं प्रजापतिः ।
जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः ।।
अश्विभ्यां भगवान् शक्रः प्रतिपेदे ह केवलम् । चरक० सूत्र० ४-५
४. नासिके अश्विनौ । शत० १२.९.१.१४
५. नासत्या... दस्रा भिषजौ० । ऋग्० १.११६. १६
६. जैमिनीय ब्रा० ३.६४. १२६-१२७
७. युवाभ्यां प्रवर्ग्यविद्यां मधुविद्यां च वक्ष्यामि । सायण० ऋग्० १.११७.२२
८. संधानभूतं प्रवर्ग्यविद्याख्यं रहस्यं तदपि वां युवाभ्यां प्रावोचत् । सायण, ऋग्० १.११७.२२
९. आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचद् ऋतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ।। ऋग्० १.११७.२२
१०. अथर्व० ९.१. १ से २४
११. आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं
ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे । ऋग्० १.११७.१७
१२. महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय । ऋग्० १.११७.८
१३. परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः । ऋग्० १.११२.८
१४. अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्
युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चिद् । ऋग्० १०.३९.३
१५. नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् । ऋग्० १.११७.८
१६. युवं च्यवानमश्विना जरन्तं
पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।। ऋग्० १.११७.१३
१७. युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः
पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः । ऋग्० १०.३९.८
युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया... करणा समिन्वथः । ऋग्० १.११९.७

१८. त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तम् ।
उज्जीवस ऐरयतं सुदानू ।। ऋग्० १.११७.२४
१९. अश्वं न गूढमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिः० । ऋग्० १.११७.४
२०. य ऋते चिदभिश्रिषः, पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ।। ऋग्० ८.१. १२; साम० २४४
२१. रोहण्यसि रोहणी- अस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी ।
रोहयेदमरुन्धति । अथर्व० ४.१२.१
२२. यत्ते रिष्टं यत्ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः ।। अ० ४.१२.२
२३. अथर्व० ४.१२.७
२४. सं ते मज्ञा मज्ज्ञा भवतु, समु ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं, समस्थि-अपि रोहतु ।। अ० ४.१२.३
२५. यत् ते रिष्टं... भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः । अ० ४.१२.२
२६. अथर्व० ४.१२. ३ से ७
२७. यां ते रुद्र इषुम् आस्यद् अङ्गेभ्यो हृदयाय च ।
... त्वद् विषूचीं वि वृहामसि । अ० ६.९०.१
२८. यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम् । अ० ५.५.४
२९. यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् । अ० ५.५.२
३०. भद्रात् प्लक्षात् निस्तिष्ठसि-अश्वत्थात् खदिराद्धवात् । अ० ५.५.५
३१. अ० ५.५. १ से ९
३२. विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ।। अ० ६.१२७.१
३३. वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् । अ० ६.१२७.३
३४. यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ ।
वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ।। अ० ६.१२७.२
३५. मन्याः, ग्रैव्याः, स्कन्ध्याः । अ० ६.२५. १ से ३
३६. अ० ६.२५.१-३
३७. या ग्रैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्याः ।
विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः ।। अ० ७.७६.२
३८. अथर्व० ६.८६. १ से ४
३९. सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोपोच्छतु । अ० ६.८३.१
४०. अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम ।
मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ।। अ० ७.७४.१
४१. सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै
धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ।। ऋग्० १.११६.१५
४२. आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचद् ऋतायन्, त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ।। ऋग्० १.११७.२२
४३. यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यत, ते देवा अश्विनावब्रुवन्, भिषजौ वै स्थः ।
इदं यज्ञस्य शिरः प्रति धत्तमिति... तौ यज्ञस्य शिरः प्रत्यधत्ताम् । तैत्ति० सं० ६.४.९
४४. वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पितरं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् । अ० १.११.५

४५. यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संभृतम् ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ।
प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव । अ० १.३.६-७ •
४६. विद्मा शरस्य पितरं... बहिष्टे अस्तु बालिति । अ० १.३.१
४७. यथेषुका परापतद्... एवा ते मूत्रं मुच्यताम् । अ० १.३.६
४८. मूत्रे विवृद्धे कर्पूर-चूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत् । आयुर्वेदसंग्रह
४९. युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः० । ऋग्० १०.३९.७
५०. अथर्व० १.११. १ से ६
५१. वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके । अ० १.११.५
५२. ऋग्वेद १०.१६२. १ से ४, अथर्व० २०.९६. ११ से १६
५३. यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ।। ऋग्० १०.१६२.२
५४. चरक, शारीर० अध्याय ४ । सुश्रुत, शारीर० अ० ३
५५. सं वै यावन्मात्रमिवैवावचेत्, तथा शल्यः प्रच्यवते । शतपथ ब्रा० १.७.४.१०
५६. तानेतैरेव शल्यान् निरहरन्त... यत् त्र्यम्बकैरयजन्त । शत० ब्रा० २.६.२.१
५७. भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् ।
सुखं मेषाय मेष्यै । यजु० ३.५९
५८. एषां पशूनां मा भेर्मा रोक् मो च नः किंचनाममत् । यजु० १६.४७
५९. अभयं नः पशुभ्यः । यजु० ३६.२२
६०. लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ।। अ० ६.१४१.२
६१. एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना । अ० ६.१४१.३
रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु । अ० ६.१४१.१
६२. अथर्व० ६.५९. १ से ३
६३. तच्च शस्त्रकर्माष्टविधम् । यद्यथा- छेद्यं, भेद्यं, लेख्यं, वेध्यम्, एष्यम्, आहार्यम्, विस्राव्यं, सीव्यम् इति । सुश्रुत० सूत्र० ५.५
६४. छिनद्म्यस्य बन्धनम्० । अ० ६.१४.२
६५. प्र ते भिनद्मि मेहनम् । अ० १.३.७
६६. वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके । अ० १.११.५
६७. अ० ६.२५.१; ७.७४.१
६८. अ० १.१७. १ से ४
६९. अ० ६.५७. १ से ३
७०. तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् । अ० २.३.५
७१. अप्वामन्तरोदरात्... बहिर्निर्मन्त्रयामहे । अ० ६.८.६
७२. अस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी । अ० ४.१२. १ से ७
७३. नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि ।
अथो..... पाकारोरसि नाशनी ।। यजु० १२.९७
७४. या ग्रैव्या अपचितः.... स्वयंस्रसः । अ० ७.७६.२

●

अध्याय ७

# विष - चिकित्सा

१. रोग-कृमि-नाशन
२. उदर-कृमि-नाशन
३. विष-चिकित्सा
४. सर्पविष-चिकित्सा
५. वृश्चिक-विष-चिकित्सा

अध्याय ७

# विष-चिकित्सा

**१. रोग-कृमि-नाशन**—वेदों में रोगोत्पादक सूक्ष्म जीवाणुओं को कृमि कहा गया है। अथर्ववेद में कृमियों के दो रूप बताए गए हैं:—दृष्ट (दीखने वाले), अदृष्ट (न दीखने वाले)।[१] ये रोग के कृमि शरीर के किसी भी भाग में हो सकते हैं। उदाहरणार्थ इनके निवास-स्थान बताए गए हैं:—आंत, सिर, पसली आदि।[२]

अथर्ववेद के एक पूरे सूक्त में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है कि किस प्रकार रोग के कृमि खाने-पीने की वस्तुओं के साथ शरीर में प्रवेश करते हैं। दूध, दही, कच्चा एवं पका भोजन, कृषि के अन्न, पानी आदि के साथ ये रोग के जीवाणु शरीर में प्रवेश करते हैं।[३] कुछ रोग के कृमि परस्त्री-संपर्क आदि कारणों से शरीर में प्रविष्ट होते हैं। ऐसे रोगों को 'जायान्य' या 'जायेन्य' कहा गया है।[४] ये संसर्गजन्य या छूत वाले रोग हैं। इसी प्रकार गन्दे या नीच मनुष्यों के बिस्तर पर सोने से भी संसर्गजन्य रोग-कृमि शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।[५]

अथर्ववेद में रोग-कृमियों को नष्ट करने का मुख्य साधन अग्नि को बताया गया है और इसे उत्कृष्ट चिकित्सक कहा है।[६] इससे ज्ञात होता है कि खाने-पीने की वस्तुओं को आग पर गरम करने से उनके दूषित कृमि नष्ट हो जाते हैं। गरम खाना खाना भी रोगकृमि-निवारण के लिए उत्तम है।

अथर्ववेद में कई स्थानों पर सूर्य को कृमिनाशक कहा है। उदय होता हुआ सूर्य दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकार के कृमियों को नष्ट करता है।[७] इसी प्रकार अस्त होता हुआ सूर्य भी कृमियों को नष्ट करता है।[८]

सूर्य के लिए कहा गया है कि वह सभी प्रकार के कृमियों को नष्ट करता है। सूर्य की किरणें कृमियों को इसी प्रकार नष्ट करती हैं, जैसे पत्थर से चनों को पीसा जाता है।[९] सूर्य की किरणें जहाँ पर पड़ती हैं, वे वहाँ से कृमियों को नष्ट कर देती हैं। शरीर पर सूर्य की किरणें पड़ने से शरीर में रोग के कृमि उत्पन्न नहीं होते। अतएव उदय होते हुए सूर्य की किरणें को सर्वरोग-नाशक बताया गया है।[१०] रोग-कृमि-नाशन के लिए आवश्यक है कि गृह आदि में भी सूर्य की किरणों के प्रवेश का पूरा प्रबन्ध हो।

यज्ञ को रोगकृमिनाशन का उत्तम साधन बताया गया है । यज्ञ की समिधाओं को कृमिनाशक कहा गया है ।[११] यज्ञ में डाली जाने वाली आहुति को इतना प्रबल बताया गया है कि यह आहुति रोगकृमियों को इसी प्रकार दूर फेंक देती हैं, जैसे नदी फेन को ।[१२]

अथर्ववेद में वचा (वच) ओषधि को कृमिनाशक बताया है ।[१३] वच का नाम उग्रगन्धा भी है ।[१४] यह अग्नि में डालने पर अपनी उग्रगन्ध से कीटाणुओं को नष्ट करती है ।

अथर्ववेद में कृमिनाशन की चार विधाओं का उल्लेख है । कहा गया है कि अत्रि, कण्व, जमदग्नि और अगस्त्य की विधाओं से कृमियों को नष्ट करें ।[१५] इससे ज्ञात होता है कि इन चार ऋषियों ने कृमिनाशन की कुछ असाधारण विधाओं का अविष्कार किया था । इन्होंने कुछ जड़ी-बूटियों का पता लगाया था, जो कृमियों को शीघ्र नष्ट कर देती थीं ।

अथर्ववेद में इस बात पर भी बल दिया गया है कि रोग-कृमियों के विष-स्थानों को नष्ट किया जाए ।[१६] इस प्रकार कृमि निर्विष हो जाते हैं । विष की थैली को कुषुम्भ कहा गया है । इस विधि को अपनाने से रोगकृमियों का विस्तार रुक जाता है ।

अथर्ववेद में ये ओषधियाँ कृमिनाशक कहीं गई हैं:—गुल्गुलु (गूगल), पीला (पिप्पली, पीपर), नलदी (जटामांसी), औक्षगन्धि (वृष्यगन्धा, बला), प्रमन्दनी (धातकी या धाम के फूल, धवई के फूल) ।[१७] अथर्ववेद में अजशृङ्गी (मेषशृंगी या मेढ़ासिंगी) को भी रोग-कृमिनाशक कहा गया है ।[१८] मेषशृंगी का ही नाम अजशृंगी भी है । इसका फल रोग-कृमिनाशक, कफ, खांसी और विष का नाशक है ।[१९]

अथर्ववेद में आञ्जनमणि (शब्द ३०), जङ्गिड मणि (शब्द ९२), प्रतिसर मणि (शब्द १५३), शतवार मणि (शब्द २३१) को रोग-कृमि-नाशक बताया गया है । इनकी मणि या माला धारण करने से रोगकृमि नष्ट होते हैं ।

अथर्ववेद में इन ओषधियों को भी रोगकृमिनाशक कहा गया है:—करीर (करीर या करील, शब्द ५७) । इसकी जड़ और शाखा कृमिनाशक हैं । कुष्ठ (कूठ, शब्द ६९), गुल्गुलु (गूगल, शब्द ८५), तार्ष्टाघ (सरसों की डंडी, शब्द १०२), शमी (छोकर, जण्ड, सफेद कीकर, शब्द २३४), सर्षप (सरसों, शब्द २५९) । पृश्निपर्णी (चित्रपर्णी, पिठवन), यह गर्भनाशक रोगकृमियों को नष्ट करती है ।[२०]

**२. उदर-कृमिनाशन (पेट के कीड़े)**—मैत्रायणी आदि संहिताओं में उपवाक या उपवाका ओषधि का उल्लेख है ।[२१] यह इन्द्रयव (इन्द्र जौ) है । इसको ही कुटज और कुटज बीज कहते हैं । यह पेट के कीड़ों की उत्तम दवा है ।[२२]

भावप्रकाश निघण्टु में भृंगराज (भांगरा, भंगरा) को कृमिनाशक बताया गया है । इस विषय में पाश्चात्त्य मत है कि भांगरा के रस को एरण्ड (अंडी) के तेल के साथ सेवन करने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं ।[२३] महानिम्ब (वकायन) के विषय में पाश्चात्त्य चिकित्सकों का मत है कि वकायन की छाल थोड़ी मात्रा में सेवन करना बच्चों के कृमिरोग (Round Worms) को दूर करता है ।

**३. विष-चिकित्सा**—अष्टांगहृदय का कथन है कि विष तीन प्रकार के होते हैं । फल-फूल आदि कन्दों में होने वाला विष स्थावर विष है । यह कालकूट, हालाहल आदि है । सर्प, बिच्छू, मकड़ी आदि की दाढ़ों में रहने वाला विष जंगम विष है । ये दोनों विष अकृत्रिम हैं । विभिन्न ओषधियों से बनाया गया विष कृत्रिम है । उसको 'गर' कहते हैं । यह तीक्ष्ण गुणों के कारण ओज को नष्ट करता है और वात-पित्त-प्रधान होने से जीवन को नष्ट करता है ।[२४] इसकी चिकित्सा के रूप में कहा है कि विष का प्रभाव होते ही तुरन्त वमन (कै) करावे और शीतल जल डाले । साथ ही घी (गाय का घी) और शहद-मिश्रित दवा तुरन्त पिलावे । मुलहठी के क्वाथ (काढ़ा) और मधु के साथ दवा दे ।[२५]

अष्टांगहृदय का यह भी कथन है कि विषों में और विष की सभी अवस्थाओं में घी (गाय का घी) के समान लाभकारी कोई दूसरी ओषधि नहीं है । घी वायु की प्रबलता को नष्ट करता है ।[२६] इसका अभिप्राय यह है कि विष का प्रभाव होने पर अधिक से अधिक गाय का घी उस रोगी को पिलाया जाय । घी विष के प्रभाव को शान्त कर देता है ।

विष के प्रभाव के निवारण, प्रतिकार और नष्ट करने के उपायों को विष-चिकित्सा कहते हैं । अथर्ववेद में सोम-पान को विषनाशन का उपाय बताया गया है । सोम-पान करने वाले पर विष का प्रभाव नहीं होता ।[२७] दूसरे मन्त्र में मंत्र-चिकित्सा का वर्णन है । मंत्रशक्ति से विष का प्रभाव उतर जाता है ।[२८] इसको झाड़-फूंक भी कह सकते हैं । बाण से, फाल से, सींग आदि के लगने से जो विष उत्पन्न होता है, उस विष को भी मंत्रशक्ति से दूर किया जा सकता है ।[२९]

अथर्ववेद में इस प्रसंग में यह भी कहा गया है कि गरुड़ साँपों को खाता है । गरुड़ के लिए विष भोजन है । अतः अनुसंधान किया जाना चाहिए कि किन कारणों से गरुड़ पर विष का प्रभाव नहीं होता है ।[३०] इस सूक्त में यह भी कहा गया है कि विष के पर्वत को भी निर्विष किया जा सकता है ।[३१] इसकी विधि गवेषणीय है ।

अथर्ववेद में मंत्र-चिकित्सा द्वारा नस-नाड़ियों में पहुँचे हुए बाण के विष को दूर करने का वर्णन प्राप्त होता है ।[३२]

अथर्ववेद आदि में कतिपय ओषधियों का उल्लेख है । ये ओषधियाँ विषनाशक हैं । ये हैं:—

अलाबू (लौकी, लम्बा कद्दू या मीठी तुम्बी, शब्द २०), अवघ्नती (शब्द २२), इन्द्राणी (इन्द्रायण, इनारुन, शब्द ४०), ऋतजात (मधुला, वच, कुलिंजन, शब्द ५१), कान्दाविष (कन्द विष, शब्द ६१), तौदी (शब्द १०६), दर्भ (कुश, शब्द ११३), बभ्रु (सहस्रपर्णी, शंखपुष्पी, शब्द १६१), मधुक, मधू (त्वचा या कुलंजन, शब्द १७४), मधुला (वच या कुलंजन, शब्द १७७), घृताची (बड़ी इलायची, शब्द ८७), विषदूषण, विषदूषणी (तौदी और घृताची, बड़ी इलायची, शब्द २१०)।

**४. सर्प-विष-चिकित्सा**—अथर्ववेद में १८ प्रकार के सर्पों की जातियों का उल्लेख है ।[३३] १. कैरात (जहाँ भील रहते हैं, उन जंगलों में रहने वाले सर्प), २. पृश्नि (धब्बों वाला या चितकबरा सर्प), ३. उपतृण्य (घास में रहने वाले), ४. बभ्रु (भूरे रंग वाले), ५. असित (काले), ६. अलीक (निर्विष साँप), ७. तैमात (जलीय स्थान में रहने वाले), ८. अपोदक (मरुस्थल में होने वाले), ९. सत्रासाह (आक्रमणकारी साँप), १०. मन्यु (क्रोध करने वाले साँप), ११. आलिगी (शरीर पर लिपट जाने वाली सर्पिणी), १२. विलिगी (शरीर पर न लिपटने वाली), १३. उरुगूला (बड़ी कटि वाली सर्पिणी), १४. असिक्नी (काली सर्पिणी), १५. दद्रुषी (जिससे काटने से दाद हो जाता है), १६. कर्णा (कानों वाली सर्पिणी, सल्लु साँप), १७. श्ववित् (जिनको कुत्ते ढूँढ़कर लाते हैं, ऐसे साँप), १८. खनित्रिमा (भूमि के अन्दर बिल बनाकर रहने वाली सर्पिणी) । इनमें से कुछ सर्पों की जातियाँ महाविष वाली हैं, कुछ कम विष वाली हैं और कुछ निर्विष साँपों की जातियाँ हैं ।

सुश्रुत में सर्पों की जातियाँ, सर्पविष, सर्पविषचिकित्सा आदि का बहुत विस्तार से वर्णन है ।[३४] साँपों के दर्वीकर आदि ५ भेद माने गए हैं । साँपों की संख्या ८० दी गई है । आधुनिक जीवशास्त्रियों ने साँपों के ९ बड़े गण बनाए हैं और उसमें ३२६ सर्पों की जातियाँ बताई हैं । इन ९ गणों में वैज्ञानिकों ने लगभग १००० प्रकार के सर्प रखे हैं । इनमें से लगभग ३३० प्रकार के सर्प भारतवर्ष में पाए जाते हैं ।

साँप के काटने के तीन रूप माने गए हैं:—१. खात—जिसमें साँप के दाँत गहरे गड़े हों, २. अखात—जिसमें साँप के दाँत थोड़े गड़े हों, ३. सक्त—साँप की केवल रगड़ लगी हो ।[३५] सुश्रुत में इन भेदों के लिए ये नाम दिए हैं:—१. सर्पित—अर्थात् खात, साँप के गहरे दाँत लगना, २. रदित—अर्थात् अखात, कम गहरे दाँत लगना, ३. निर्विष या सर्पाङ्गाभिहत—अर्थात् सक्त, साँप की रगड़ मात्र लग जाना ।[३६] चरक ने भी इसका विस्तृत वर्णन किया है ।[३७]

साँप के काटने पर कटे हुए स्थान से चार अंगुल ऊपर बन्धन या गाँठ लगानी चाहिए । गाँठ इस प्रकार कसकर लगाई जाए कि विष का प्रभाव ऊपर न जाने पावे । इस प्रकार उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकार का विष रुक जाता है ।[३८] अथर्ववेद में वाद्ययन्त्र अर्थात् ढोल, नगाड़ा आदि के तीव्र स्वर से सर्प-विषनाशन का उल्लेख है ।[३९] इससे साँप से दष्ट व्यक्ति बेहोश नहीं होने पाता और वह बचा लिया जाता है ।

साँप के विष को उतारने के लिए बाहरी विष के प्रयोग का भी उपदेश दिया गया है ।[४०] ऐसा करने से बाहरी विष सर्प के विष को नष्ट कर देता है । इस मंत्र में इस बात की ओर भी संकेत है कि काटने वाले साँप को मार देना चाहिए । इससे साँप के विष का प्रभाव साँप पर लौट जाता है ।[४१] यह प्रयोग परीक्षा की अपेक्षा रखता है । सुश्रुत और अष्टांगहृदय में काटने वाले साँप को काटने से भी विष उतर जाने का उल्लेख है, अथवा साँप के काटते ही तुरन्त मिट्टी के ढेले को दाँत से काटने से साँप का विष उसमें चले जाने का उल्लेख है ।[४२]

अष्टांगहृदय, उत्तरस्थान में विस्तारपूर्वक सर्पविष-चिकित्सा का उल्लेख है ।[४३] सुश्रुत और अष्टांगहृदय का मत है कि सर्प ने जिस स्थान पर काटा हो, उससे ऊपर ४, ८ और १२ अंगुली की दूरी पर तीन बन्धन बाँधे । जिस स्थान पर साँप ने काटा है, उस स्थान को चाकू या तेज औजार से काटकर वहाँ से खून दबाकर बाहर निकाल दें और उस स्थान को गरम लोहे आदि से जला दें । चूसना, काटना और जलाना, यह सभी प्रकार के साँपों के काटने में उपयोगी है ।[४४]

अथर्ववेद में ताबुव और तस्तुव ओषधियों को सर्पविष-नाशक बताया गया है ।[४५] ताबुव और तस्तुव ओषधियों के जो गुण बताए गए हैं, वे कटु तुम्बी (कड़वी लौकी) और तिक्त कोशातकी (कड़वी तोरई) में पाए जाते हैं। भावप्रकाश निघण्टु में कटु तुम्बी (कड़वी लौकी) को कड़वी, विषनाशक, ठंडी और हृदय को शक्ति देने वाला बताया गया है ।[४६] राजनिघण्टु आदि में इसको वमनकारक अर्थात् कै करानी वाली कहा गया है । यह कै या उल्टी के द्वारा विष के प्रभाव को बाहर निकाल देती है, अतः सर्पविषनाशक कही जाती है । कामरत्न ग्रन्थ में कहा गया है कि कटुतुम्बी (कड़वी लौकी) की बारीक जड़ को गोमूत्र में पीसकर वटी या गोली बना ले और उसको छाया में सुखा ले । फिर उसको गोमूत्र आदि के साथ घिसकर एक हाथ भर लेप करने से सर्पविष का नाश हो जाता है ।[४७] सपेरे कटुतुम्बी की वीणा (बीन) रखते हैं । इसका कारण यह संभव है कि कटुतुम्बी सर्पविषनाशक है और इसके अन्दर से निकलने वाली ध्वनि सर्प को अपने वश में कर लेती है ।

तस्तुव ओषधि के जो गुण बताए गए हैं, वे तिक्त कोशातकी (कड़वी तोरई)

के गुणों से मिलते हैं । कामरत्न ग्रन्थ के सर्पविष-चिकित्सा अध्याय में वर्णन है कि कड़वी तोरई के काढ़े को शहद और घी के साथ मिलाकर पिलाने से कै हो जाती है और इस प्रकार विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है ।[४८] निघण्टु ग्रन्थों में भी कड़वी तोरई को विषनाशक कहा गया है । सुश्रुत का भी कथन है कि सर्पदंश की अवस्था में तुरन्त मदनफल (मैनफल), कटुतुम्बी (कड़वी तुम्बी या लौकी), कड़वी तोरई आदि फलों से वमन करावे ।[४९]

अथर्ववेद में सर्पविष दूर करने के लिए जल-चिकित्सा का वर्णन किया गया है । नदी के जल में नहाने, तैरने आदि से सर्प का विष नष्ट होने का उल्लेख है ।[५०] नदी के जल से विष कम हो जाता है, अतएव पानी वाले साँपों में भी विष कम होता है । नदी या झरने के जल में स्नान से विष का प्रभाव कम होता है । जल-चिकित्सा की दृष्टि से सर्पविष उतारने के लिए योग की कुंजल क्रिया भी विशेष लाभप्रद है । सर्पदष्ट व्यक्ति को अधिक से अधिक पानी, दो से चार लिटर तक पानी पिलावें और खड़े होकर मुँह में अंगुली डालकर उससे कै करवावें । पेट का सारा पानी ३-४ बार में बाहर आ जाएगा और विष का प्रभाव कम हो जाएगा । यदि आवश्यक हो तो दो या तीन बार भी यह क्रिया करवाई जा सकती है । जल के द्वारा विष का प्रभाव बाहर आ जाएगा ।

अथर्ववेद में नदियों और पर्वतों के झरने आदि के जल से सर्पविष दूर होने का उल्लेख है ।[५१] इसका अभिप्राय यह है कि नदी में बहुत देर तक स्नान किया जाय । झरने के जल के नीचे बैठकर जलधारा को सिर और शरीर पर लें । इस प्रकार विष का प्रभाव कम होगा ।

अथर्ववेद में इन पाँच ओषधियों को सर्पविषनाशक कहा गया है:—१. दर्भ (कुश या कुशा), २. शोचिः (अग्नि), ३. तरूणक (रोहिष तृण, सुगंधतृण या कत्तृण), ४. अश्ववार या अश्ववाल (कास नामक तृण), ५. परुषवार (मुंज या मूंज) ।[५२] अथर्ववेद में ही श्वेत ओषधि को सर्पविषनाशक कहा गया है ।[५३] धन्वन्तरि निघंटु में सफेद अर्क या आक (मदार) का नाम श्वेत दिया गया है ।[५४] राजनिघंटु में सफेद आक को सर्पविषनाशक कहा गया है । कामरत्न में कहा गया है कि आक की जड़ को पीस कर जल के साथ पीने से सर्पविष नष्ट होता है ।[५५] चरक में कहा है कि आक के फूल का रस पिलाने से सर्पविष नष्ट होता है ।[५६] सुश्रुत में भी सर्पविषनाशन के लिए आक का खाना उपयोगी बताया गया है ।[५७] ऐन्द्रजालिक कामरत्न का कथन है कि आक की जड़ को घिसकर, सर्पदंश के स्थान को थोड़ा खुरचकर, उस पर लेप करना चाहिए । यह विष के प्रभाव को पूर्णतया नष्ट करता

है ।[५८] पाश्चात्त्य विद्वानों का मत है कि बिच्छू या अन्य कीटों द्वारा काटे जाने पर आक के दूध का लेप वहाँ पर करने से दाह और वेदना दोनों शान्त होती हैं ।[५९]

अथर्ववेद में अरंघुष और पैद्व ओषधि को सर्पविषनाशक कहा गया है ।[६०] ये दोनों शब्द सफेद आक के बोधक समझने चाहिएं । सफेद आक सर्पविषनाशक है । अथर्ववेद का ही कथन है कि पैद्व अर्थात् सफेद आक के जड़ और फूल के चूर्ण को डाल देने से सर्प का भय नहीं रहता है और रास्ते में यदि साँप होगा तो वह हट जाएगा ।[६१] आक के फूलों के रस और चूर्ण का इतना प्रभाव बताया गया है कि यदि वह साँप के मुँह में डाल दिया जाये तो वह खुले मुँह को बन्द नहीं कर सकता है और यदि मुँह बन्द है तो उसे खोल नहीं सकता ।[६२]

अथर्ववेद में इन्द्र को सर्पविषनाशक कहा गया है ।[६३] कैयदेव निघण्टु में इन्द्रायण ओषधि का नाम इन्द्र दिया है । भावप्रकाश में इसे ऐन्द्री और इन्द्रवारुणी कहा है । साथ ही इसे विषनाशक कहा है ।[६४] कामरत्न ग्रन्थ में कहा है कि चावल के पानी के साथ इन्द्रायण की जड़ को पिलाने से सर्पविष का प्रभाव नष्ट होता है ।[६५] अथर्ववेद में कुमारिका ओषधि को भी सर्पविषनाशक कहा है ।[६६] वंध्या कर्कोटकी (बांझ ककोड़ा, बांझ खेखसा) को धन्वन्तरि निघण्टु में कुमारिका और भावप्रकाश में कन्या कहा गया है । इसके लिए स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह सर्प का दर्प नष्ट करती है और विषनाशक है ।[६७] कामरत्न ग्रन्थ के सर्पविष-चिकित्सा प्रकरण में लिखा है कि चावल के जल के साथ वन्ध्या कर्कोटकी के सेवन से सर्प का विष नष्ट हो जाता है ।[६८]

अपराजिता ओषधि को भी विषनाशक कहा गया है ।[६९] अपराजिता ओषधि को हिन्दी में कोयल, विष्णुकान्ता आदि कहते हैं । अपराजिता ओषधि विषनाशक है ।[७०] अथर्ववेद में इसे सर्प और बिच्छू दोनों का विष नष्ट करने वाला कहा गया है । ऐन्द्रजालिक कामरत्न में इसका गुणगान किया गया है कि शरीर के किसी भी भाग में पहुँचे सर्पविष को यह नष्ट कर देती है । अपराजिता की जड़ को घी के साथ देने से त्वचागत, दूध के साथ रक्तगत, कुष्ठ (कूठ) के चूर्ण के साथ मांसगत, हल्दी के साथ अस्थिगत, अंगूर के रस के साथ मेदगत और पिप्पली (पीपर) के साथ अपराजित का मूल देने से मज्जागत सर्पविष नष्ट हो जाता है ।[७१]

अथर्ववेद में तौदी, घृताची और कन्या नामक ओषधि को सर्पविषनाशक कहा गया है ।[७२] राजनिघण्टु में बड़ी इलायची का नाम कन्या और घृताची दिया गया है, अतः ये तीनों नाम बड़ी इलायची के समझने चाहिएं ।[७३] भावप्रकाश निघंटु में बड़ी इलायची को विषनाशक बताया गया है ।[७४]

अथर्ववेद के एक सूक्त में मधुला, मधू, मधुजाता और मधुश्चुत् ओषधि का

गुणगान है । इसे सर्प और बिच्छू आदि के विष का नाशक बताया गया है । इसे मच्छर मारने की भी दवा कहा है ।[७५] भावप्रकाश निघण्टु में यष्टीमधु (मुलहठी) के मधु और मधूलिका नाम दिए हैं और इसे विषनाशक कहा गया है ।[७६] चरक और सुश्रुत में विषचिकित्सा के लिए मुलहठी का उपयोग बताया गया है ।[७७] ऐन्द्रजालिक कामरत्न में बिच्छू का विष उतारने के लिए मुलहठी की धूनी देने का उल्लेख है ।[७८] अथर्ववेद में बाण के विष को दूर करने के लिए मुलहठी का उपयोग बताया गया है ।[७९]

अथर्ववेद में वरणावती या वरण को विषनाशक कहा गया है । वरण वृक्ष की अधिकता के कारण नदी का नाम भी वरणावती पड़ा है । इसके जल को विषनाशक कहा गया है ।[८०] वरण को ही वरुण भी कहते हैं । इसको हिन्दी में वरना या वरुण कहते हैं । यह विष का प्रभाव भी नष्ट करता है । विविध रोगों ज्वर, राजयक्ष्मा आदि को दूर करने के लिए इसकी मणि (माला) गले में बाँधने का विधान है । (देखो वरण, शब्द २०१)

अथर्ववेद में करम्भ को विषनाशक कहा गया है ।[८१] दही मिले हुए सत्तू को करम्भ कहते हैं । वैद्यक-ग्रन्थों में दही के सेवन से विषनाश का वर्णन है । अथर्ववेद में वच या वचा ओषधि को विषनाशक कहा गया है ।[८२] इसके लिए मंत्र में कहा गया है कि यह विष को ऐसे ही दूर फेंक देता है, जैसे धनुष से फेंका हुआ बाण । (देखो वचा शब्द १९८)

उपजीका को विषनाशक कहा गया है ।[८३] दीमक को उपजीका कहते हैं । दीमक जो वल्मीक (वमी या बांबी) बनाती हैं, उसकी मिट्टी विषनाशक है । सुश्रुत का कथन है कि अन्य ओषधि न मिले तो काली मिट्टी या वल्मीक (बांबी) की मिट्टी को दूध, घी या मधु के साथ मिलाकर पिलावें ।[८४]

वेदों में इन ओषधियों का भी उल्लेख है । ये ओषधियाँ सर्पविषनाशक हैं:—

अजशृंगी (मेषशृंगी, मेढ़ासिंगी, शब्द ३) । इसकी मूलत्वक् (जड़ की छाल) एरण्ड-स्नेह (अंडी के तेल) के साथ मिलाकर सर्प या अन्य कीट के दष्ट भाग पर लेप करें । अलाबू (लम्बा कद्दू, शब्द २०), वृष (वासा, शब्द २१९), शीपाल या शीपाला (शैवाल या सेवार, शब्द २४५), शोचि (कुशा या कुश, शब्द २४८), सदंपुष्पा, सदंपुष्पी (सदापुष्प, कुन्द, शब्द २५४), सैर्य (अश्ववाल, कास, शब्द २७४) ।

**५. वृश्चिक-विष-चिकित्सा (बिच्छू काटना)**—अष्टांगहृदय में बिच्छू आदि के काटने की कुछ सरल चिकित्साएँ दी गई हैं । संक्षेप में ये हैं:—१. बिच्छू के दंश को तुरन्त निकले तेल से सेंके, २. सेंधा नमक मिले घी से बार-बार सेंके,

३. हींग और हरताल को बिजौरे नीबू के रस में मिलाकर गोली बना लें । दंश वाले स्थान पर उसका लेप कर दें । यह उत्तम विषनाशक है । ४. सोंठ, कबूतर की बीट, बिजौरे नीबू का रस, हरताल और सेंधा नमक को मिलाकर लेप करें । यह सभी बिच्छुओं के विष को शीघ्र नष्ट करता है । ५. शिरीष के बीजों को आक (मदार) के दूध में तीन बार आग पर गरम पिप्पली (पीपर) के चूर्ण के साथ मिलाकर दवा बना लें । यह साँप बिच्छू, मकड़ी, कीट और चूहे के विष को नष्ट करता है ।[८५]

अथर्ववेद में अर्क (आक, मदार, शब्द १७) का उल्लेख है । बिच्छू या अन्य कीटों द्वारा काटे जाने पर अर्क के दूध का दंश वाले स्थान पर लेप करने से दाह और वेदना दोनों शान्त होते हैं ।[८६] बिच्छू एवं विषधर कीटों के काटने में पुनर्नवा (शब्द १४५) का लेप महौषधि है । पाश्चात्य मत है कि जहरीले कीड़े के काटने में बदर (बेर, शब्द १६०) या गूलर के पत्ते को सिल पर पीस कर लगाने से विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है ।



---

१. दृष्टम् अदृष्टम् अतृहम् । अ० २.३१.२
२. अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् । अ० २.३१.४
३. अथर्व० ५.२६. १ से १५
४. पक्षी जायान्यः पतति । अ० ७.७६.४
५. यातूनां शयने शयानम् । अ० ५.२६.६
६. त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता । अ० ५.२६.१
७. सूर्य एति.... दृष्टान्... अदृष्टांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् । अ० ५.२३.४
८. उद्यन् आदित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः । अ० २.३२.१
६. अ० २.३१.१
१०. अथर्व० ६.८. १ से २२
११. एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः । अ० ५.२६.१४
१२. इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् । अ० १.८.१
१३. क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि । अ० २.३१.२
१४. भाव० हरी० ६८-१०० । पृष्ठ ३२-३३
१५. अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववद् जमदग्निवत् । अ० २.३२.३
१६. भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः । अ० २.३२.६
१७. गुल्गुलूः पीला नलदी-औक्षगन्धिः प्रमन्दनी । अ० ४.३७.३
१८. अजशृंगी-अज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय । अ० ४.३७.२
१६. भाव० गुडू० २५७-२५६ । पृष्ठ २५६-२५७
२०. गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च । अ० २.२५.३

२१. बदरैरुपवाकाभिर्भेषजम् । मैत्रा० ३.११.२
२२. भाव० हरी० १५०-१५२ । पृष्ठ ४८ से ५१
२३. भावं० गुडू० २४३-२४५ । पृष्ठ २४६-२५०
२४. अष्टांगहृदय, उत्तरस्थान, अध्याय ३५. श्लोक १ से १०
२५. वही, श्लोक १७ से २०
२६. सर्वेषु सर्वावस्थासु विषेषु न घृतोपमम् ।
विद्यते भेषजं किंचिद् विशेषात् प्रबलेऽनिले ।। अष्टांग० उत्तर० ३५.६६-७०
२७. स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् । अ० ४.६.१
२८. वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् । अ० ४.६.२
२९. शल्याद् विषं निरवोचम्० । अ० ४.६.५
३०. सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् । अ० ४.६.३
३१. वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् । अ० ४.६.८
३२. यास्ते शतं धमनयः .. निर्विषाणि ह्वयामसि । अ० ६.९०.२
३३. कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र० । अ० ५.१३. ५ से ६
३४. सुश्रुत, कल्पस्थान प्रकरण, अध्याय ४ और ५
३५. खातम् अखातम् उत सक्तम् अग्रभम् । अ० ५.१३.१
३६. सर्पितं रदितं चापि तृतीयमथ निर्विषम् । सुश्रुत० कल्पस्थान ४.१४
३७. चरक, चिकित्सास्थान, अध्याय २३
३८. गृह्णामि ते मध्यमम् उत्तमं रसमुतावमम्० । अ० ५.१३.२
३९. उग्रेण ते वचसा बाध आदु ते । अ० ५.१३.३
४०. विषेण हन्मि ते विषम् । अ० ५.१३.४
४१. अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् । अ० ५.१३.४
४२. स दष्टव्योऽथवा सर्पो लोष्ठो वापि हि तत्क्षणम् ।
सुश्रुत कल्पस्थान ५.६ । अष्टांगहृदय, उत्तरस्थान ३६.४०-४१
४३. अष्टांग० उत्तर० अ० ३६
४४. सुश्रुत, कल्पस्थान ५. ३ से ५
४५. ताबुवेनारसं विषम् । अ० ५.१३.१०
तस्तुवेनारसं विषम् । अ० ५.१३.११
४६. कटुतुम्बी हिमा हृद्या पित्त-कास-विषापहा । भाव० शाक० ५८-५९
४७. कटुतुम्ब्युद्भवं मूलं सूक्ष्मं गोमूत्रपोषितम् ।
छायाशुष्कां वटीं मूत्रैः पाणिलेपो विषापहा ।।
ऐन्द्रजालिक, कामरत्न, सर्पविषचिकित्सा १०
४८. तिक्तकोशातकीक्वाथं मध्वाज्यसंयुतं पिबेत् ।
तत्क्षणाद् वमयेद् यस्तु विषयोगाद् विमुच्यते ।।
ऐन्द्रजालिक, कामरत्न, सर्पविषचिकित्सा, १७
४९. तत्राशु मदनालाबु चिम्बी कोशातकीफलैः ।
छर्दनम्० । सुश्रुत, कल्प० १.४१
५०. सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् । अ० १०.४.१९
अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः । अ० १०.४.२०
५१. मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु । अ० ६.१२.३
५२. दर्भः शोचिस्तरूणकम् अश्वस्य वारः परुषस्य वारः । अ० १०.४.२

५३. अव श्वेत पदा जहि । अ० १०.४.३
५४. शुक्लार्कस्तपनः श्वेतः । धन्वन्तरि नि०
५५. कामरत्न, सर्पविषचिकित्सा, ६
५६. चरक, चिकित्सा० २३.५६
५७. कोविदारशिरीषार्क-कटभीर्वापि भक्षयेत् । सुश्रुत, कल्प० ५.१८
५८. अर्कमूलेन संलेप्य दंशं विषहरं महत् । ऐन्द्र० कामरत्न, सर्पविष० १५
५९. भाव० गुडू० ६५-७० । पृष्ठ १६६
६०. अरंधुषः० । पैद्वो हन्ति कसर्णीलं० । अ० १०.४. ४ और ५
६१. अ० १०.४.६
६२. संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् । अ० १०.४.८
६३. इन्द्रो मे अहिम्.... अरन्धयत् । अ० १०.४. १० और १२
६४. ऐन्द्री-इन्द्रवारुणी..... विषापहम् । भाव० गुडू० १९६-१९९ । पृष्ठ २२८
६५. कामरत्न, सर्पविष० ७
६६. कैरातिका कुमारिका० । अ० १०.४.१४
६७. वन्ध्याकर्कोटकी... सर्पदर्पहरी तीक्ष्णा विसर्प-विषहारिणी । भाव० गुडू० २६१-२६२ । पृष्ठ २६८
६८. कामरत्न, सर्पविष० ७
६९. पृश्निहापराजितः । अ० १०.४.१५
७०. व्रणविषापहे । भाव० गुडू० १०६-१०७ । पृष्ठ १८८-१९०
७१. कामरत्न, सर्पविषचिकित्सा ३४
७२. तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि । अ० १०.४.२४
७३. स्थूलैला.... कन्या कुमारिका चैन्द्री ।
कायस्था.... घृताची गर्भसंभवा । राजनिघण्टु १-२
७४. भाव० कर्पूरादि० ५६-५७ । पृष्ठ ११६-११८
७५. इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुद् मधुला मधूः ।
सा विह्रुतस्य भेषजी-अथो मशकजम्भनी । अ० ७.५६.२
७६. भाव० हरी० १३८-१३९ । पृष्ठ ४२-४४
७७. चरक, विषचिकित्सा २३.१९६ । सुश्रुत, कल्प० ५.६१
७८. ऐन्द्रजालिक कामरत्न, वृश्चिकविषचिकित्सा ८
७९. कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुद् अनीनशत् । अ० ७.५६.१
८०. वारियं वारयातै वरणावत्यामधि ।
तेना ते वारये विषम् । अ० ४.७.१
८१. अथेदम् अधराच्यं करम्भेण वि कल्पते । अ० ४.७.२
८२. वचसा स्थापयामसि । अ० ४.७.४
८३. उपजीकाः तेन... दूषयता विषम् । अ० ६.१००.२
८४. तदभावे हिता वा स्यात् कृष्णा वल्मीकमृत्तिका ।। सुश्रुत, कल्प० ५.१७
८५. अष्टांग० उत्तर० अध्याय ३७ श्लोक २९ से ४३
८६. भाव० गुडू० ६५ से ७० । पृष्ठ १६६

अध्याय ८

# पशु चिकित्सा

१. पशु-चिकित्सा
२. पशुरोगों के कारण
३. पशु-संरक्षण
४. पशुओं को क्लीब या बन्ध्या करना



अध्याय ८

# पशु-चिकित्सा

**१. पशु-चिकित्सा**—मनुष्यों के तुल्य पशुओं को भी रोग होते हैं। उनकी चिकित्सा का वेदों में उल्लेख है। अथर्ववेद में सहदेवी ओषधि का उल्लेख है। इसको अरुन्धती भी कहते हैं।[१] इसके अन्य दिए गए हैं—विश्वरूपा, सुभगा एवं जीवला।[२] हिन्दी में इसको सहदेई या सहदेइया कहते हैं।

सहदेवी की कई किस्म हैं, जिनमें पीत, बैंगनी, गुलाबी पुष्पकी सहदेवी प्रसिद्ध है। इनमें पीतपुष्पा सहदेवी अधिक गुणकारी है, इसके सेवन से गाय आदि पशुओं का दूध बढ़ता है। पारस्कर गृह्यसूत्र में इसके मूल का भी प्रयोग बताया गया है। इसका मूल शीतल, बलकारक और ज्वरनाशक है।

अथर्ववेद में अरुन्धती (सहदेवी, Sida Cordifolia, सिडा कोर्डिफोलिया) ओषधि के विषय में कहा गया है कि यह गाय, बैल आदि सभी पशुओं को नीरोग रखती है। गाय आदि का दूध बढ़ाती है और जो गाय दूध नहीं देती है, उसका रोग दूर करके उसे भी दूध वाली बनाती है।[३]

अथर्ववेद में संकेत है कि मनुष्यों के चिकित्सालय के तुल्य पशुओं के भी चिकित्सालय हों, जहाँ पर गाय, घोड़े एवं अन्य पशुओं की जीवनरक्षा की व्यवस्था हो।[४]

अथर्ववेद में विश्वरूपा, सुभगा और जीवला ओषधियों का उल्लेख है।[५] आयुर्वेद के निघण्टु गन्थों में विश्वरूपा से काला अगर, सुभगा से शालपर्णी और जीवला से सैंहली पिप्पली अर्थ लिया गया है।[६] ये ओषधियाँ कटु, पाचन शक्ति बढ़ाने वाली, कोष्ठशोधक, कृमिनाशक और त्रिदोषनाशक हैं, अतः पशुओं को नीरोग रखती हैं। लंका, सिंगापुर आदि द्वीपों से आने वाली पीपर को सैंहली पीपर कहा जाता है।

अथर्ववेद में 'आञ्जन मणि' का उल्लेख है। इसे गाय, घोड़े आदि पशुओं का रक्षक एवं स्वास्थ्यप्रद बताया है।[७] 'औदुम्बर मणि' पशुओं को सन्ततिशक्ति देती है और उनका दूध बढ़ाती है।[८] इसका अभिप्राय यह है कि आंजन (अंजन वृक्ष)

और उदुम्बर (गूलर) की मणि या माला पशुओं के गले में बाँधने से वे स्वस्थ रहते हैं ।

**२. पशुरोगों के कारण**—अथर्ववेद में एक सूक्त पशु-संरक्षण पर है ।[९] इसमें ६ मन्त्रों में पशुरोगोत्पत्ति के कारण और उनके निवारण के कुछ उपाय दिए गए हैं । पशुओं में रोगों की उत्पत्ति के कुछ कारण ये दिए गए हैं[१०] :—

**क. अपर्तु (अप + ऋतु)**—ऋतु के विरुद्ध आचरण करने से कतिपय रोग उत्पन्न होते हैं । पशुओं को ऋतु के अनुकूल भोजन देना चाहिए । ऋतु के प्रतिकूल भोजन से रोग होते हैं । ऋतु-परिवर्तन के समय भी रोग होते हैं । समय से पूर्व बच्चा होने से भी पशु रोगी हो जाते हैं ।

**ख. यमिनी विजायते**—जुड़वे बच्चे को जन्म देना । इससे प्रसूति की रीति में बिगाड़ होने से विविध रोग होते हैं । गाय जिस समय प्रसूत होती है, उसके बाद गर्भस्थान से कुछ भाग गिरते हैं । यदि वह गाय उक्त भाग को खा जाती है तो वह रोगी हो जाती है । योनि आदि स्थान में जुड़वे बच्चे होने से कुछ व्रण आदि हो जाते हैं और वहाँ प्रसूतिस्थान का विष लगने से गाय रोगी हो जाती है । इस प्रकार प्रसूति समय में गाय के रोगी होने की बहुत संभावना रहती है । अतः गोपति को पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए ।

ये रोग बहुत घातक होते हैं । मंत्र का कथन है कि यदि उस समय सावधानी न बरती गई तो यह रोग संसर्ग में आने वाले अन्य पशुओं को भी लग जाते हैं ।

**ग. क्रव्याद् भूत्वा**—गाय का मांसाहारी होना । गाय प्रकृति से मांसाहारी जीव नहीं है । यदि वह मांसाहार करने लगती है तो उसे विविध रोग लग जाते हैं ।[११]

**घ. व्यद्वरी**[१२]—गाय का अधिक खाऊ या पेटू होना । गाय यदि उचित मात्रा से अधिक खाने लगती है या पेटू हो जाती है तो उसे अजीर्णता के कारण विविध रोग लग जाते हैं । मंत्र का कथन है कि इससे अन्य पशुओं का भी नाश होता है ।

**३. पशु-संरक्षण**—अथर्ववेद में पशु-चिकित्सा संबन्धी कुछ अन्य उपयोगी बातें भी कही गई है । संक्षेप में ये हैं :—

१. रोगी पशुओं को तुरन्त चिकित्सक के पास ले जाना चाहिए, जिससे रोग दूसरे पशुओं को न लगने पावे ।[१३] वेदों में वैद्य के लिए भिषक्, ब्रह्मन् और विप्र शब्द आए हैं ।[१४]

२. पशु-चिकित्सालय में प्रतिदिन अग्निहोत्र या हवन की व्यवस्था होनी

चाहिए ।[१५] इससे गोशाला और चिकित्सालय का वातावरण शुद्ध रहेगा और रोगों का संक्रमण नहीं हो सकेगा ।

३. चिकित्सक के लिए निर्देश है कि वे 'सुहार्दः' अर्थात् सहृदय हों और मित्रवत् रोगी से व्यवहार करें । वे 'सुकृतः' उत्तम कर्म करने वाले हों, आचारवान् हों और कर्तव्यदक्षता के साथ ही कर्तव्यनिष्ठ हों ।[१६]

४. चिकित्सालय में ऐसी व्यवस्था हो कि पशुओं के सभी रोगों की चिकित्सा हो सके और वे सर्वथा रोगमुक्त हो जाएँ ।[१७]

५. पशुओं के रोग अन्य पशुओं को न लगने पावें तथा चिकित्सालय के कर्मचारियों पर भी उन रोगों का प्रभाव न हो सके ।[१८]

६. अथर्ववेद में गायों आदि की चिकित्सा के साथ ही घोड़ों की चिकित्सा का भी उल्लेख है ।[१९]

**४. पशुओं को क्लीब या बन्ध्या करना**—अथर्ववेद में क्लीब या बन्ध्या करने की तीन विधियों का उल्लेख है ।

**क. शल्य चिकित्सा**—वृषण के ऊपर जो दोनों शुक्रवाहिनी नाड़ियाँ हैं, उनको शम्या (चाकू या तीक्ष्ण औजार) से छेदन या भेदन करना ।[२०] इन नाड़ियों का छेदन कर देने से शुक्र का संबन्ध-विच्छेद हो जाता है । आधुनिक शल्य-चिकित्सक भी इसी विधि को अपनाते हैं ।

**ख.** पशुओं को बधिया बनाने के लिए पत्थर आदि से उनके दोनों अंडकोशों को तोड़ देना ।[२१] इससे वीर्य बनना बन्द हो जाता है ।

**ग. ओषधि-चिकित्सा**—क्लीबकरणी (शब्द ७६) ओषधि के द्वारा बैल आदि पशुओं को बधिया बनाना ।[२२] वेद में ओषधि का स्पष्ट नाम नहीं दिया है । इसके सेवन से पुरुष एवं पशु क्लीब अर्थात् वीर्यहीन हो जाते हैं ।



---

**पशु-चिकित्सा**

१. शर्म यच्छत्वोषधिः सहदेवीररुन्धती ।
करत् पयस्वन्तं गोष्ठम् अयक्ष्मान् उत पूरुषान् । अ० ६.५९.२

२. विश्वरूपां सुभगाम् अच्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः । अ० ६.५९.३

३. अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वम् अरुन्धति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे । अ० ६.५९.१

४. सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ।। अ० ८.२.२५
५. विश्वरूपां सुभगाम् अच्छावदामि जीवलाम् । अ० ६.५६.३
६. सैंहली.... जीवला । सैंहली.... कोष्ठशोधनी । राजनिघण्टु
अगरु प्रवरं.... विश्वरूपकम् । धन्वतरि निघण्टु
शालपर्णी.... सुभगा देवी । राजनिघण्टु
७. परिपाणं गवामसि । अश्वानां.... परिपाणाय तस्थिषे । अ० ४.६.२
८. औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् । अ० १६.३१.१
६. अथर्व० ३.२८. १ से ६
१०. यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः
सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती । अ० ३.२८.१
११. क्रव्याद् भूत्वा । अ० ३.२८.२
१२. सा पशून् सं क्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी । अ० ३.२८.२
१३. उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् । अ० ३.२८.२
१४. विप्रः स उच्यते भिषक्० । यजु०१२.८०
१५. अग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः । अ० ३.२८.६
१६. यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति । अ० ३.२८.५
१७. विहाय रोगं तन्वः स्वायाः । अ० ३.२८.५
१८. मा नो हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च । अ० ३.२८.५
१६. शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा । अ० ३.२८.३
२०. ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् ।
ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ।। अ० ६.१३८.४
२१. इन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्तु-आण्ड्यौ । अ० ६.१३८.२
२२. त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमा... पूरुषं क्लीबं... कृधि । अ० ६.१३८.१

अध्याय ९

# विविध रोग-चिकित्सा एवं अन्य विषय

१. वाजीकरण
२. वीर्यवर्धक ओषधियाँ
३. मेधावर्धक ओषधियाँ
४. वशीकरण और संमोहन
५. सौभाग्यवर्धक ओषधियाँ
६. ईर्ष्या, क्रोध और कुस्वप्ननाशन
७. रसायन चिकित्सा
८. सांमनस्य
९. दिव्यदृष्टि
१०. पर्यावरण-शोधन
११. विष्कन्ध या अंगविकार
१२. बधिरता (बहरापन)
१३. स्वरतन्त्रीदोष (गला बैठना)
१४. सिर की रूसी हटाना
१५. चर्मरोग
१६. शिशु को पुष्ट करना
१७. बिच्छू मारना
१८. मच्छर मारना
१९. चूहा और घुन मारना
२०. जल के कीड़े मारना
२१. कुत्ते और शृगाल का काटना
२२. बाल काला करना
२३. बाल उड़ाना
२४. लोहे की कील, कांटा निकालना
२५. दही जमाना
२६. दूध जमाना
२७. कुत्ते का चर्मरोग ठीक करना
२८. खेत के घास-पात नष्ट करना
२९. रोग-निवारण और भैषज्यकर्म

अध्याय ६

# विविध रोग-चिकित्सा एवं अन्य विषय

**१. वाजीकरण**—वाजीकरण का अभिप्राय है मनुष्य में सन्तान उत्पन्न करने की क्षमता। धातुदोष, वीर्यक्षय और शक्तिक्षीणता के कारण मनुष्य सन्तानोत्पादन में असमर्थ रहता है। वाजीकरण ओषधियाँ मनुष्य के वीर्यदोषों को नष्ट करती हैं, उसकी शक्ति बढ़ाती हैं और सन्तानोत्पादन के योग्य बनाती हैं।

अष्टागहृदय का कथन है कि ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम रसायन और वाजीकरण ओषधि है।[१] चरक का भी कथन है कि 'ब्रह्मचर्यम् आयुष्कराणां श्रेष्ठतमम्' ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम जीवनी शक्ति है।

अथर्ववेद में वृषा ओषधि को वाजीकरण बताया है।[२] वैद्यक शब्दसिन्धु में कपिकच्छु (केवांच, कौंच, कवाछु) को वृषा कहा है। भावप्रकाश निघण्टु में केवांच के बीजों को अत्यन्त वाजीकरण कहा है।[३] इसके बीजों की खीर बनाकर खाने से शुक्रक्षीणता रोग नष्ट होता है। कैयदेव निघण्टु में अश्वगन्धा (असगंध) को भी वृष कहा है। भावप्रकाश में असगंध को भी शुक्रवर्धक कहा है।[४]

अथर्ववेद में अर्क (आक, मदार) को वाजीकरण बताया है।[५] भावप्रकाश में सफेद और लाल दोनों प्रकार के आक के फूलों को वीर्यवर्धक कहा है।[६] कामरत्न में लिखा है कि पुष्य नक्षत्र में सफेद आक की जड़ उखाड़ कर उसे गाय के दूध के साथ सात रात्रि तक पीने से वृद्ध भी युवक हो जाता है।[७]

अथर्ववेद में कल्याणी ओषधि को वाजीकरण कहा है।[८] राजनिघण्टु में माषपर्णी (जंगली उड़द या वन उड़द) को कल्याणी कहा है। भावप्रकार में इसे शुक्रवर्धक कहा है।[९]

अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ, शब्द ६६) और शेपहर्षणी (कैथ या केवांच, शब्द २४६) को वाजीकरण ओषधि बताया है। ये दोनों वीर्यवर्धक हैं।

**२. वीर्यवर्धक ओषधियाँ**—वेदों में कतिपय ओषधियों का उल्लेख है, जिन्हें वीर्यवर्धक, शक्तिवर्धक और ओजवर्धक माना गया है। ये ओषधियाँ हैं :—

इक्षु (ईख, शब्द ३८), उदुम्बर (गूलर, शब्द ४५), उर्वारुक (ककड़ी, खरबूजा, शब्द ४८), खदिर (खैर, शब्द ८०), खर्जूर (खजूर, शब्द ८१), गवीधुक या गवेधुक

(जंगली गेहूँ, शब्द ८४), गोधूम (गेहूँ, शब्द ८६), जीवला (सहदेवी या पाठा ओषधि, शब्द ६७), यव (जौ, शब्द १८८), शंखपुष्पी या न्यस्तिका (शंखपुष्पी, शब्द २२६), सहमाना (सहदेवी या पाठा ओषधि, शब्द २६२), सोमावती (शब्द २७६) ।

## ३. मेधावर्धक ओषधियाँ

**मेधाशक्ति की वृद्धि**—अथर्ववेद में कतिपय ओषधियों का उल्लेख है । ये मनुष्य की बुद्धि को बढ़ाती हैं और उसकी धारणा शक्ति को पुष्ट करती हैं । ये ओषधियाँ हैं :—

अतस या अतसी (शब्द ४) की समिधा से हवन करने से मेधावृद्धि होती है । उत्तानपर्णा (पाटा या पाठा, पाढ़, शब्द ४४), पलाश (ढाक, शब्द १३४), पाटा या पाठा (पाढ़, शब्द १३६), पिप्पली (पीपर, शब्द १४०), बभ्रु (सहस्रपर्णी, शंखपर्णी, शब्द १६१), वातीकृतभेषजी (पिप्पली, पीपर, शब्द २०३), शंखपुष्पी, न्यस्तिका (शंखपुष्पी, शब्द २२६) ।

**स्मरणशक्ति बढ़ाना**—स्मरणशक्ति बढ़ाने के लिए निम्नलिखित ओषधियाँ विशेष लाभप्रद हैं । वचा (वच, शब्द १६८) । यह स्मरणशक्ति और वाक्शक्ति बढ़ाती है । शंखपुष्पी (शंखपुष्पी, शब्द २२६) । यह मेधावर्धक, स्मरणशक्तिवर्धक, मनोरोगनाशक और रसायन है ।

## ४. वशीकरण और संमोहन

अथर्ववेद में अनेक सूक्त हैं, जिनका उद्देश्य है विविध क्रियाओं के द्वारा अपनी प्रजा आदि को वश में करना, अपनी अभीष्ट वस्तु को या व्यक्ति को मन्त्रमुग्ध करके अपनी ओर आकृष्ट करना । स्वजातीय बन्धुओं आदि को अपने वश में करना, उनका प्रेम प्राप्त करना और उनका सहयोग उपलब्ध करना (अ० ३.८) । राजा के द्वारा असन्तुष्ट प्रजा को सन्तुष्ट करना और उसे अपने वश में करना (अ० ६.६४) । राजा के द्वारा प्रजा का सहयोग प्राप्त करना (अ० ६.७४) । अपनी प्रेयसी को वश में करना (अ० १.३४) । अपनी प्रिया को अपनी ओर आकृष्ट करना, उसके मन पर अधिकार करना और उसको अपने वश में करना (अ० २.३० । ३.२५ । ५.६ । ६.८ । ६.८६ । ६.१०२) । अपनी प्रिया को मन्त्रमुग्ध करके सुलाना और उसको अपने वश में करना (अ० ४.५) । पत्नी का पति को मन्त्रमुग्ध करके उसे अपने वश में करना (अ० ६.१३० । ६.१३१ और ६.१३२) । पति को वश में करके सौभाग्यवती होना (अ० ६.१३६) । पत्नी का ओषधि के द्वारा मन्त्रविद्या करके पति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना (अ० ७.३८) । व्याघ्र, भेड़िया, चोर एवं

अन्य हिंसक जीवों को मन्त्रविद्या के द्वारा वश में करना (अ० ४.३) । आथर्वण विद्या के द्वारा व्याघ्र आदि हिंसक जीवों को वश में करना (अ० ४.३.७) ।

वेदों में कतिपय ओषधियों का वर्णन है, जो वशीकरण में प्रयुक्त होती हैं । ये हैं :—अभिरोरुद (सौवर्चल, सूर्यवेला पुष्प, शब्द १०) । इसको आसुरी ओषधि कहते हैं । पति को वश में करने के लिए इसका प्रयोग बताया गया है । उत्तानपर्णा (पाठा या पाढ़ा ओषधि, शब्द ४४) । यह सपत्नीबाधन, वशीकरण और प्रतिवादी पर विजय के लिए प्रयुक्त होती हैं । नलद (उशीर या खसखस, शब्द १२३) वशीकरण और सांमनस्य के लिए प्रयुक्त होता है । पाटा या पाठा (पाठा या पाढ़ा, शब्द १३६), इसके ही नाम सुभगा, सहमाना, सहस्वती आदि हैं । सपत्नी पर विजय और प्रतिवादी पर विजय के लिए इसका प्रयोग होता है । वीरोदीक (शब्द २१७), हिरण्यपुष्पी या सुवर्णपुष्पी (शब्द २८५) पति को वश में करने के लिए प्रयुक्त होती है । शंखपुष्पी, न्यस्तिका (शंखपुष्पी, शब्द २२६) और संवननी (शंखपुष्पी, शब्द २५१) । यह सौभाग्यप्रद और वशीकरण ओषधि है । सौभाग्य के लिए इसकी जड़ हाथ में बाँधने का विधान है ।

## ५. सौभाग्य-वर्धक ओषधियाँ

**सौभाग्य एवं सौन्दर्य-वर्धक ओषधियाँ**—अथर्ववेद आदि में निम्नलिखित ओषधियों का उल्लेख है । ये ओषधियाँ स्त्रियों के सौभाग्य और सौन्दर्य की वृद्धि के लिए हैं :—

न्यस्तिका (शंखपुष्पी, शब्द १३०), शंखपुष्पी (शब्द २२६), संवननी (शंखपुष्पी, शब्द २५१) । ये तीनों शब्द शंखपुष्पी के पर्याय हैं । शंखपुष्पी के अन्य नाम हैं:— सुभगंकरणी, सहस्रपर्णी, समुष्पला, बभ्रु, कल्याणी आदि । यह सौभाग्यप्रद और वशीकरण ओषधि कही गई है । सौभाग्य के लिए इसकी जड़ हाथ में बाँधने का विधान है । यह मानसिक शान्ति, कान्ति और मेधा को बढ़ाती है । यह पति-पत्नी के प्रेम को सुदृढ़ करती है । पर्णमणि (पलाश, ढाक, शब्द १३३) समृद्धि और लोकप्रियता के लिए है । प्रेणी (शब्द १५७) यह सौभाग्यकारक ओषधि कही गई है ।

अथर्ववेद में स्त्री के सौन्दर्य की वृद्धि के लिए आसुरी ओषधि (शब्द ३६) का उल्लेख है । यह राजिका (राई, सफेद सरसों) के लिए है । राजनिघण्टु का कथन है कि सफेद सरसों देह की कान्ति बढ़ाती है, सुकुमारता लाती है और शरीर की अशोभा दूर करती है । इसका अभिप्राय यह है कि सफेद सरसों का उबटन शरीर पर लगाने से सौन्दर्य की वृद्धि होती है । इसके प्रयोग से स्त्री पति को अपने वश

में कर लेती है । अथर्ववेद में आंजन (अंजन, शब्द ३०) को सौभाग्य, सौन्दर्य और तेज का वर्धक बताया गया है ।

## ६. ईर्ष्या, क्रोध और कुस्वप्न-नाशन

**ईर्ष्यानाशन**—अथर्ववेद आदि में दर्भ (कुश, कुशा, शब्द ११३) को मन्युशमन अर्थात् क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या आदि का नाशक बताया गया है ।[१०] अथर्ववेद में ईर्ष्या को अग्नि की तरह दाहक और मन की प्रसन्नता को नष्ट करने वाला बताया है । यह हृदयस्थ शोक है । इससे मनुष्य मृतप्राय हो जाता है ।[११] इसकी ओषधि समुद्र से लाई जाती है और वह ईर्ष्याभाव को नष्ट करती है ।[१२] अथर्ववेद में ही दर्भ (कुशा) को समुद्र में उत्पन्न होने वाली ओषधि कहा है । अतः ईर्ष्या की ओषधि दर्भ ही समझनी चाहिए । यह मानसिक शान्ति देती है, अतः ईर्ष्या का भाव नष्ट करती है । निघंटु रत्नाकर में सिन्धुफल को ईर्ष्या का नाशक बताया है ।[१३]

**क्रोधनाशन**—अथर्ववेद में क्रोध को शान्त करने के लिए दर्भ (कुशा, शब्द ११३) का उल्लेख है । इसको 'मन्युशमन' क्रोधनाशक कहा गया है ।[१४]

**कुस्वप्ननाशन**—अथर्ववेद में बुरे स्वप्न आना, नींद न आना के लिए वरणमणि (वरना, वरुण, शब्द २०१) और आंजन मणि (अंजन, शब्द ३०) को उपयोगी बताया गया है । जल-चिकित्सा भी इसके लिए अत्यन्त उपयोगी है ।[१५] इसके लिए रात्रि में सोने से पूर्व जल से स्नान, मूत्रेन्द्रिय को शीतल जल से धोने तथा मुख-प्रक्षालन उपयोगी है । कुस्वप्न के निवारण के लिए ये ओषधियाँ भी उपयोगी हैं :—अपामार्ग (चिरचिटा, शब्द ६), चिति या चित्ति (शब्द ८६), दर्भ (कुश, शब्द ११३) और विषाणा, विषाणका (शब्द २१२) ।

## ७. रसायन-चिकित्सा

अष्टांगहृदय में रसायन और उसके गुण ये बताए हैं :—रसायन के सेवन से मनुष्य दीर्घायु, स्मृति, मेधा, आरोग्य, यौवन, प्रभा, वर्ण, स्वर की निर्मलता, शरीर-इन्द्रिय में बल, वाक्-सिद्धि (जो कहता है, वह अवश्य होता है), वीर्य की अधिकता और कान्ति प्राप्त करता है । जिससे श्रेष्ठ रस-रक्त आदि धातुओं की प्राप्ति होती है, वह रसायन है ।[१६]

मेधा-वृद्धि के लिए ये चार रसायन बताए हैं :—१. भूख के अनुसार मण्डूकपर्णी का रस पिये । २. मुलहठी के चूर्ण को दूध से पिये । ३. गिलोय का रस पिये । ४. मूल और फूल के साथ शंखपुष्पी का रस पिये ।[१७]

अष्टांगहृदय में शिलाजतु (शिलाजीत) को सभी रोगों की चिकित्सा बताया गया है ।[१८] सौ वर्ष की आयु के लिए कुछ सरल योग (नुस्खे) दिए हैं । जैसे—

(१) दो-दो हरड़ प्रतिदिन गुड़, शहद, पीपर या सेंधा नमक से खाते रहने से मनुष्य शतायु होता है । हरड़ को उक्त चार चीजों में से किसी एक चीज के साथ खाना चाहिए । (२) हरड़ को घी में भूनकर खाने से और घी को पीने से शरीर में बल चिरस्थायी होता है । (३) नई पुनर्नवा का कल्क (पिट्ठी) दो चम्मच कम से कम १५ दिन दूध के साथ पीने से वृद्ध शरीर भी नवीन हो जाता है ।[१९]

ये गुण स्वयं में रसायन हैं:—सत्यभाषण, अक्रोध, आत्म-चिन्तन, शान्तचित्तता और सत्कर्म ।[२०]

अथर्ववेद में सूर्यकिरणों को आयुदाता और रसायन ओषधि कहा गया है ।[२१] जल को भी रसायन, अमृत, भेषज कहा गया है ।[२२] जीवन्ती ओषधि रसायन है । यह जीवनी शक्ति देने वाली और जीवनरक्षक है ।[२३] भावप्रकाश में भी इसे रसायन, त्रिदोषनाशक, शक्तिवर्धक और नेत्रों के लिए हितकारी कहा गया है । यह शुक्रक्षयजन्य दुर्बलता को दूर करती है ।[२४] अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ) ओषधि (शब्द ६६) को रसायन और वाजीकरण कहा गया है ।[२५]

इन ओषधियों को भी रसायन माना गया है :—अपामार्ग (चिरचिटा, शब्द ६), खदिर (खैर, शब्द ८०), गुल्गुलु (गूगल, शब्द ८५), पर्ण (पलाश, ढाक, शब्द १३३) पिप्पली (पीपर, शब्द १४०), बभ्रु (शंखपुष्पी, शब्द १६१), बला (बला, शब्द १६२), बिल्व (बेल, शब्द १६६), वातीकृतभेषजी (पीपर. शब्द २०३), शाल्मलि (सेमर, शब्द २३६) ।

## ८. सांमनस्य

पति-पत्नी आदि के अन्दर प्रेमभाव को सुदृढ़ करने के लिए कुछ ओषधियों का उल्लेख है । न्यस्तिका (सहस्रपर्णी, शंखपुष्पी, शब्द १३०) को सौभाग्यवर्धक और सांमनस्य-जनक कहा गया है । संवननी (शंखपुष्पी, शब्द २५१) वशीकरण और सौभाग्यवर्धक ओषधि है ।

## ९. दिव्यदृष्टि

अथर्ववेद में सदंपुष्पा या सदंपुष्पी को सहस्रचक्षु, गरुड़ की पुतली और सरमा का नेत्र कहा गया है । इसकी मणि को दिव्य दृष्टि का साधन बताया गया है ।[२६] भावप्रकाश में कुन्द को 'सदापुष्प' कहा गया है । इसके फूल सदा खिले रहते हैं ।[२७] (देखो सदंपुष्पा, शब्द २५४)

## १०. पर्यावरण-शोधन

वेदों में वातावरण की शुद्धि के लिए कुछ ओषधियों का उल्लेख है । अथर्ववेद

में उल्लेख है कि पर्यावरण की शुद्धि तीन चीजों पर निर्भर है :—जल, वायु और ओषधि या वनस्पति ।[२८] ये तीन चीजें ही पूरे संसार को नियन्त्रित कर रही हैं । इनका संतुलन रखने से ही पर्यावरण शुद्ध रह सकता है । वनस्पतियाँ (वृक्ष और लता आदि) वातावरण को शुद्ध रखती हैं । ये वातावरण के दोषों को नष्ट करती हैं ।[२९] वनस्पतियाँ मानवमात्र को जीवनी शक्ति देती हैं ।[३०] अतएव ओषधियों को माता कहा गया है ।[३१]

गूगल की गन्ध वायुमंडल को शुद्ध करती है ।[३२] अश्वत्थ (पीपल) सदा आक्सीजन (Oxygen) देता है, अत: उसे देवों का निवास कहा जाता है ।[३३] सूर्य की किरणों को पर्यावरण का शोधक और दूषित तत्त्वों का नाशक कहा गया है ।[३४] अग्नि को भी वायुशोधक और दोषनाशक कहा गया है ।[३५] ऋग्वेद में कहा गया है कि वृक्षों को मत काटो, क्योंकि ये वातावरण को शुद्ध करते हैं ।[३६] वायु, जल, आकाश और पृथ्वी को दूषित न करने का आदेश वेदों में प्राप्त होता है ।[३७] मैत्रायणी संहिता में काष्मर्य वृक्ष (शब्द ६२) को प्रदूषण-नाशक बताया गया है ।

## ११. विष्कन्ध या अंगविकार

अंगविकार एवं शारीरिक कुरूपता को दूर करने के लिए इन ओषधियों को उपयोगी बताया गया है । जंगिड मणि (अर्जुन वृक्ष, शब्द ६२), विष्कन्धदूषण (जंगिड, शब्द २१४), विशफ (शब्द २०८), शण (सन, शब्द २२८) । जंगिड और शण की मणि धारण करने का विधान है ।

## १२. बधिरता (बहरापन)

अथर्ववेद में शाल (शाखू वृक्ष, शब्द २७०) का उल्लेख है । यहं बहरापन, कर्णरोग एवं योनिरोगों को दूर करता है ।[३८]

## १३. स्वरभेद, स्वरतंत्रीदोष (गला बैठना)

अथर्ववेद में मदुघ या मधूलक (मुलहठी, जेठीमध, शब्द १७३, १७६) का उल्लेख है । यह मुलहठी के लिए है । इसकी जड़ मीठी होती है । यह कफनि:सारक है । यह स्वरभेद, गला बैठना और स्वरतन्त्री-दोष में लाभप्रद है । मुलहठी के सत को रब्बलसूस या रबेसूस कहते हैं । यंह गले का खरखराना, सीने की खुश्की, सूखी खांसी और मुँह से खून आना के लिए लाभप्रद है ।[३९]

अथर्ववेद में मधुक, मधू, मधुला और मधुजाता ओषधि का उल्लेख है (शब्द १७४, १७७) । यह वचा, कुलंजन या कुलिंजना है । यह कफनाशक है, स्वर को उत्तम करता है, कण्ठ तथा मुख का शोधक है ।[४०]

## १४. सिर की रूसी हटाना

अथर्ववेद में भङ्ग या भङ्गा का उल्लेख है (शब्द १६८) । यह भांग है । इसका लेप करने से सिर की रूसी (रूक्षिका, सफेद पपड़ी) दूर होती है ।[४१]

## १५. चर्मरोग

शरीर के चमड़े पर दाग होना एवं शरीर पर झुर्रियाँ होना । नक्तमाल (करंज, कंज, घियाकरंज) ओषधि का तेल शरीर पर लगाने से लौहित्य (लाल धब्बा) नहीं पैदा होता और शरीर में कोई दाग नहीं रहता । सम अंश में नीबू के रस के साथ यह तेल विविध चर्मरोगों में लाभप्रद है । डा० गिब्सन का कथन है कि सम अंश में नीबू के रस के साथ करंज का तेल मलना चर्मरोगों की महौषधि है ।[४२]

यजुर्वेद और अथर्ववेद में अर्क (आक, मदार, शब्द १७) का उल्लेख है । सफेद आक का दूध चमड़े पर लगाने से वहाँ की झुर्रियाँ और दाग दूर हो जाते हैं ।[४३]

## १६. शिशु को पुष्ट करना

अश्वगन्धा (असगंध) के मूल का चूर्ण दूध या मक्खन के साथ सेवन कराने से कमजोर बच्चे पुष्ट हो जाते हैं । उनकी शारीरिक शक्ति बढ़ जाती है । यह रसायन है । असगंध का खांड का लड्डू आदि बनाकर देने से क्षय रोगी की तथा वृद्ध व्यक्ति की दुर्बलता दूर होती है ।[४४]

## १७. बिच्छू मारना

पैप्पलाद संहिता में वृश्चिकजम्भन (शब्द २१८) ओषधि का उल्लेख है । यह बिच्छू को मारने की और बिच्छू के विष का प्रभाव नष्ट करने की ओषधि हैं ।

## १८. मच्छर मारना

अथर्ववेद में मधुला ओषधि को मशकजम्भनी अर्थात् मच्छर मारने की दवा कहा है ।[४५] यह सर्पविष को भी नष्ट करती है । सायण इसे मदुघ ओषधि का पर्याय मानते हैं । इसके अन्य नाम हैं:—मदुग, मधुदुघ, मधू । यह ज्येष्ठी मधूक, जेठी मध या मुलहठी है । इसकी जड़ मीठी होती है । यह विषघ्न ओषधि है । इसको इंग्लिश् में लाइकोरिस रूट (Liquorice Root) कहते हैं ।

भावप्रकाश परिशिष्ट में लोबान को मच्छर और कीड़ों को भगाने की दवा बताया गया है ।[४६] यह वृक्ष का सूखा गोंद है । इसको अग्नि में जलाने से मच्छर आदि कीड़े भाग जाते हैं ।

## १६. चूहा और घुन मारना

अथर्ववेद और पैप्पलाद संहिता में तृष्टा या तृष्टिका (शब्द १०६) ओषधि का उल्लेख है ।[४७] घुणजम्भनी, आखुजम्भनी, विषा, विषातकी इसके पर्याय हैं । यह बाणापर्णी या शरपुंखा (सरफोंका) ओषधि है ।[४८] यह चूहा और घुन मारने की दवा है । यह विषैली दवा है । तृष्टा से ज्ञात होता है कि इसको खाने से जलन होती है और प्यास बढ़ती है । इसको खाकर चूहा प्यास से पीडित होता है और पानी की ओर भागता है । वहीं मर जाता है । घुन इसकी गंध से मर जाते हैं ।

## २०. जल के कीड़े मारना

कठ और काठक संहिता में वृष (शब्द २१६) ओषधि का उल्लेख है । यह वासा या अडूसा है । परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि वासा के पत्ते का क्वाथ (काढ़ा) मेंढक, जोंक आदि जलस्थित छोटे जीवों के लिए विषवत् है । डॉ० वाट का कथन है कि पीने के जल को कीटरहित या शुद्ध करने के लिए इसका प्रयोग होता है । इससे जल के सभी कीड़े नष्ट हो जाते हैं ।[४६]

## २१. कुत्ते और शृगाल का काटना

अष्टांगहृदय में पागल कुत्ते के काटने का यह इलाज बताया है—(१) धतूरे के फल को पुनर्नवा के साथ पीये । (२) तिलकल्क (तिल की पिट्ठी), तिल का तेल, आक का दूध और गुड़, ये चारों जल के साथ पीने से कुत्ते का विष नष्ट हो जाता है ।[५०]

नीलिनी (नील) के पत्तों का रस पीने से और कुत्ते आदि के काटे हुए स्थान पर लगाने से पागल कुत्ते, गीदड़ और सर्प के काटने का प्रभाव नष्ट हो जाता है ।[५१] यह इनके विष को नष्ट कर देता है ।

## २२. बाल काला करना

अथर्ववेद में सफेद बालों को काला करने के लिए रजनी (शब्द १६१) ओषधि का उल्लेख है । केशव ने इसका अर्थ हरिद्रा (हल्दी) लिया है । भृंगराज, इन्द्रवारुणी और नीली के साथ हल्दी के प्रलेप से सफेद बाल काले हो जाते हैं ।

अथर्ववेद में रामा (शब्द १६२) ओषधि का उल्लेख है । सायण ने इसका अर्थ भृंगराज लिया है । भावप्रकाश में भृंगराज (भांगरा, भंगरा) को केशराज, केशरंजन कहा है । सफेद बालों को काला करने के लिए इसका प्रयोग होता है । इसके पत्तों को पीसकर सिर पर लगाने से बाल काले होते हैं ।[५२]

## २३. बाल उड़ाना

अर्क (आक, मदार, शब्द १७) के दूध के लेप से शरीर के अवांछित बाल साफ हो जाते हैं ।[५३] यह बाल सफा साबुन के तुल्य कार्य करता है । इसमें सफेद आक का दूध अधिक उपयोगी है ।

यजुर्वेद और अथर्ववेद में शमी (शब्द २३४) का उल्लेख है । इसको हिन्दी में छोकर, जण्ड या सफेद कीकर कहते हैं । इसके क्षार को हरताल के साथ लगाने से बाल झड़ जाते हैं । अतः इसे केशहन्त्री (बालों का नाशक) कहते हैं ।[५४]

## २४. लोहे की कील कांटा आदि निकालना

अथर्ववेद में नक्तम् ओषधि का उल्लेख है ।[५५] यह नक्तेन्दुपुष्पिका है । इसे इन्द्रपुष्पी, अग्निशिखा, विशल्या आदि कहते हैं । इसको हिन्दी में कलिहारी या कलियारी कहते हैं । शरीर के भीतर कोई शल्य (लोहे की कील, कांटा या तीर आदि) घुस जाने पर ऊपर यदि इसका लेप किया जाय तो वह लोहे का कांटा कील आदि अपने आप ऊपर आ जाता है । अतः इसे विशल्या कहते हैं । तलवे पर लेप करने से दुःखदायक शल्य (कील, तार आदि) स्वयं बाहर आ जाते हैं ।[५६]

## २५. दही जमाना

तैत्तिरीय संहिता में पूतीक या पूतिक (शब्द १५०) का उल्लेख है । यह रोहिष तृण है । यह लाल घास है । इसको 'आदार' भी कहते हैं । यह दही जमाने के लिए प्रयुक्त होता है ।

## २६. दूध जमाना

अश्वगन्धा (असगंध) के बीज में दूध जमाने की शक्ति है । यह परीक्षण द्वारा सिद्ध हो चुका है ।[५७]

## २७. कुत्ते का चर्मरोग ठीक करना

भावप्रकाश के अनुसार निम्ब (नीम) के हरे छोटे (कच्चे) बीज कुत्ते के चर्मरोग को ठीक करते हैं । ये नीम के हरे बीज बाल धोने के काम भी आते हैं ।[५८]

## २८. खेत के घास-पात नष्ट करना

डॉ० वाट ने परीक्षण द्वारा लिखा है कि आटरूष (वासा, अडूसा) के पत्ते खेत में चारों ओर डाल देने से खेत में घास-पात नहीं जमने पाता । साथ ही यह वासा-पत्र खाद का भी काम देता है ।[५९]

## २६. रोग-निवारण और भैषज्य कर्म

अथर्ववेद में अनेक ऐसे सूक्त हैं, जिनका संबन्ध रोग-निवारण, भैषज्य कर्म और विषनाशन आदि से हैं । इन सूक्तों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जा रहा है । कांड और सूक्त का निर्देश कोष्ठ में दिया गया है ।

**रोग-निवारण—**रोगनाशन के लिए (अ० ६.४४), दुःस्वप्न-नाशन (६.४५,४६), यक्ष्मनाशन (६.६१), यक्ष्मनाशन (६.१२७), कुष्ठरोग-निवारण (६.६५), उन्मत्ततामोचन (६.१११), कुष्ठ-नाशन (१६.३६), क्लीबत्व (६.१३८), गर्भदोष-निवारण (८.६), ज्वरनाशन (१.२५), बलासनाशन (६.१४), मूत्ररोग-निवारण (१.३), श्वेत कुष्ठ-नाशन (१.२३ एवं २४), हृद्रोग-कामिला-नाशन (१.२२), क्षेत्रियरोग-निवारण (२.८) ।

**भैषज्य कर्म—**अथर्ववेद के निम्नलिखित सूक्त विविध रोगों की चिकित्सा के लिए हैं । रोगी के पुनः स्वास्थ्यलाभ के लिए (४.१३), ज्वर को रोकने और नष्ट करने के लिए (१.२५), यक्ष्मा और यक्ष्मा से संबद्ध रोगों को नष्ट करने के लिए (६.८), हृदय रोगों के लिए (१.२२), अपचित या कण्ठमाला रोग को दूर करने के लिए (६.२५), आँख के रोगों को दूर करने के लिए (६.१६), खाँसी दूर करने के लिए (६.१०५), शारीरिक क्षीणता दूर करने के लिए (७.५७), मरणासन्न और मृतप्राय को बचाने के लिए (२.६ । ३.३१ । ७.५३), आनुवंशिक रोगों को दूर करने के लिए (३.७), दस्त और पेचिश दूर करने के लिए (१.२), घाव ठीक करने के लिए जल-चिकित्सा (२.३), उन्मत्ततारोग दूर करने के लिए (६.१११), टूटी हड्डी जोड़ने के लिए (४.१२ और ५.५), रोग कृमि-नाशन के लिए (२.३१ और २.३२), गर्भपात के कारणस्वरूप कृमियों को नष्ट करने के लिए (२.२५) ।

●

---

**वाजीकरण**

१. धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम् ।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्तनिर्मलम् । अष्टांग०, उत्तर, ४०.४
२. वृषा शुष्मेण वाजिना । अ० ४.४.२
३. तद्बीजं वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम् । भाव०, गुडू० १२४-१२६ । पृष्ठ १६७-१६६
४. भाव० गुडू० १८०-१८१ । पृष्ठ २१६-२२१
५. एवा ते शेपः.... अर्कः । अ० ६.७२.१
६. भाव० गुडू० ६५ से ७० । पृष्ठ १६५-१६६ ।
७. कामरत्न, वाजीकरण २.३
८. कल्याणि सं नुद । अ० ६.१३६.३
६. भाव०, गुडू० ५२-५३ । पृष्ठ १६०-१६१

**ईर्ष्या, क्रोध और कुस्वप्न-नाशन**

१०. दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते । अ० ६.४३.२
११. अथर्व० ६.१८. १ से ३
१२. सिन्धुतस्पर्याभृतम् । ...ईर्ष्याया नाम भेषजम् । अ० ७.४५.१
१३. अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति । अ० ६.४३.२
१४. मन्युशमन उच्यते । अ० ६.४३.२
१५. आपः ....दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु । अ० १०.५.२४

**रसायन चिकित्सा**

१६. दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः ।
प्रभा-वर्ण-स्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलोदयम् ।।
वाक्सिद्धिं वृषतां कान्तिमवाप्नोति रसायनात् ।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ।। अष्टांग० उत्तर० ३९.१.२
१७. अष्टांग० उत्तर०, ३९.४४
१८. अष्टांग० उत्तर० ३९.१४२
१९. अष्टांग० उत्तर० ३९.१४६, १४७, १५४
२०. अष्टांग० उत्तर० ३९. १७९-१८०
२१. आयुर्ददं विपश्चितम्० । अ० ६.५२.३
२२. अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम् । अ० १.४.४
२३. जीवलां नघारिषां जीवन्तीम् ओषधीमहम् । अ० ८.२.६
२४. भाव० गुडू० ४८-४९ । पृष्ठ १५९-१६०
२५. अ० ५.४. १ से १० । ६.९५.१-३ । १९.३९. १ से १०

**दिव्य-दृष्टि**

२६. अ० ४.२०. १ से ९
२७. भाव० पुष्पादि० ५० । पृष्ठ २९२

**पर्यावरण-शोधन**

२८. आपो वाता ओषधयः,
तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि । अथर्व० १८.१.१७
२९. अ० ८.७.१०
३०. अ० ८.७.४
३१. ऋग्० १०.९७.४
३२. अ० १९.३८.१
३३. अ० ५.४.३
३४. यजु० ४.४ । अथर्व० ६.५२.१ ।
३५. यजु० १७.१६
३६. ऋग्० ६.४८.१७
३७. यजु० ५.४३ । ६.२२ । मैत्रा० सं० २.८.१४

**बधिरता (बहरापन)**

३८. भाव० वटादि० १६-२० । पृष्ठ ३४२

**स्वरभेद, स्वरतंत्रीदोष (गला बैठना)**

३६. भाव० परिशिष्ट, पृष्ठ ५३७-५३८
४०. भाव० हरी० १०१ । पृष्ठ ३३-३४

**सिर की रूसी हटाना**

४१. भाव० हरी० २१७-२१८ । पृष्ठ ८५-८६

**चर्मरोग**

४२. भाव० गूडू० ११३-११७ । पृष्ठ १६२ से १६४
४३. भाव० गुडू० ६५-७० । पृष्ठ १६५ से १६६

**शिशु को पुष्ट करना**

४४. भाव० गुडू० १८०-१८१ । पृष्ठ २१६-२२०

**मच्छर मारना**

४५. मधुला मधूः । ....अथो मशकजम्भनी । अ० ७.५६.२
४६. भाव० परिशिष्ट, पृष्ठ ५३८

**चूहा और घुन मारना**

४७. गन्धेनौषधिः घुणजम्भनी । पैप्प० २०.१.७
४८. भाव० गुडू० २०४-२०५ । पृष्ठ २३१-२३२

**जल के कीड़े मारना**

४६. भाव० गुडू० ८३-८५ । पृष्ठ १७७-१७६

**कुत्ते और शृगाल का काटना**

५०. अष्टांग० उत्तरस्थान ३८. ३५ से ३८
५१. भाव० गुडू० २००-२०३ । पृष्ठ २३०-२३१

**बाल काला करना**

५२. भाव० गुडू० २४३-२४५ । पृष्ठ २४६-२५०

**बाल उड़ाना**

५३. भाव० गुडू० ६५-७० । पृष्ठ १६५-१६६
५४. भाव० वटादि० ७२-७३ । पृष्ठ ३५८

**लोहे की कील कांटा आदि निकालना**

५५. नक्तंजातास्योषधे । अ० १.२३.१
५६. भाव० गुडू० ७७-७८ । पृष्ठ १७२-१७३

**दूध जमाना**

५७. भाव० गुडू० १८०-१८१ । पृष्ठ २१६-२२१

**कुत्ते का चर्मरोग ठीक करना**

५८. भाव० गुडू० ८८-६१ । पृष्ठ १८०-१८१

**खेत के घास-पात नष्ट करना**

५६. भाव० गुडू० ८३-८५ । पृष्ठ १७७-१७६

●

अध्याय १०

# मणिधारण और उसके लाभादि

१. मणि और मणिधारण
२. जंगिड मणि
३. प्रतिसर मणि
४. वरण मणि
५. अस्तृत मणि
६. दर्भ मणि
७. औदुम्बर मणि
८. शंख मणि
९. शतवार मणि
१०. अभीवर्त मणि
११. पर्णमणि
१२. फाल मणि
१३. वैयाघ्र मणि
१४. अन्य मणियाँ
१५. मणिधारण के लाभादि
१६. सुवर्णधारण के लाभ

अध्याय १०

# मणिधारण और उसके लाभादि

**१. मणि और मणिधारण**—मणि क्या है ? इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है । कुछ विद्वानों के अनुसार मणि किसी भी वस्तु की बन सकती है और यह माला या तावीज की तरह बांधी या पहनी जाती है । मणि का वास्तविक अभिप्राय प्रचलित मनका शब्द, जो मणि या मणिक का अप्रभंश है, से स्पष्ट होता है । किसी वृक्ष की शाखा आदि के छोटे-छोटे भाग करने पर उन्हें मनका कहते हैं । ये गोल दाने के ढंग से बना लिए जाते हैं और उनमें बीच में छेद करके माला के रूप में पिरो लिया जाता है । अथर्ववेद में मणि के विषय में यह भावना छिपी हुई है कि प्रत्येक वृक्ष में कुछ गुण होते हैं । ये गुण उसकी शाखा और पत्तों आदि में भी होते हैं । उस वृक्ष के फल आदि के सेवन से जो लाभ प्राप्त हो सकता है, वह उसकी शाखा आदि को पास में रखने या शरीर के किसी अंग पर बाँधने से भी प्राप्त हो सकता है । इसलिए कुछ विशेष वृक्षों के मनके बनाकर उन्हें शरीर पर तावीज की तरह बाँध लेते हैं या उन्हें गले में लटका लेते हैं । विशेष वृक्षों में विद्यमान सभी गुण उनके मणियों या मनकों के द्वारा भी प्राप्त किए जा सकते हैं । वृक्ष जिन रोगों आदि को दूर करता है, उसकी मणियाँ या मनके भी उन रोगों को दूर कर सकते हैं ।

**२. जंगिड मणि**—अथर्ववेद के तीन सूक्तों में जंगिड मणि का उल्लेख है ।[१] जंगिड मणि का दूसरा नाम अंगिरस् (अंगिरा) भी है ।[२] जंगिड मणि किस वृक्ष आदि से बनती है, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है । सायण ने जंगिड को एक वृक्ष कहा है और लिखा है कि यह वाराणसी में प्रसिद्ध है ।[३] दारिल और प्रो० कैलण्ड जंगिड का अर्थ अर्जुन वृक्ष लेते हैं । अथर्ववेद के एक मन्त्र में जंगिड मणि के साथ शण या सन का उल्लेख है ।[४] इनके विषय में कहा गया है कि इनमें से एक जंगल से लाया जाता है और दूसरा कृषि के रस से तैयार किया जाता है । जंगिड दो प्रकार का माना गया है—आरण्य (जंगली) और कृष्य (कृषिजन्य) ।

जंगिड के जो गुण वर्णन किए गए हैं, उनमें से अधिकांश वच या वचा ओषधि में मिलते हैं । भावप्रकाश में वचा के नाम दिए गए हैं—उग्रगन्धा, मंगल्या, उग्रा आदि ।[५] वचा के गुण बताए गए हैं:—यह उग्र गन्ध वाली, चरपरी या कड़वी है ।

यह अग्निवर्धक है । मल-मूत्र को शोधन करने वाली, कब्ज, अफारा और दर्द को दूर करने वाली है । यह मृगी (मिरगी), कफ, उन्माद, भूतबाधा, कृमि और वायु को हरने वाली है ।

जंगिड मणि को मणि या तावीज की तरह बाँधा या पहना जाता है ।[६] इसको दीर्घायु और सुख-शान्ति की वृद्धि के लिए पहना जाता है । इसके सहस्रों लाभ हैं । यह विश्वभेषज अर्थात् सभी रोगों की चिकित्सा है ।[७] जंगिड मणि इन रोगों को दूर करती है:—हड्डी आदि का टूटना, खांसी, कमर दर्द तथा कमर के अन्य रोग, ठंड से होने वाली सभी बीमारियाँ ।[८]

जंगिड मणि विष्कन्ध अर्थात् शरीर के अंगों में विकार आना एवं कन्धे के दर्द आदि को दूर करती है ।[९] यह अधिक जंभाई आना, सूखा रोग, क्षय रोग और शोक आदि रोगों को दूर करती है ।[१०] यह भस्मक रोग को दूर करती है ।[११] सभी प्रकार के कृत्या-प्रयोगों और अभिचार-प्रयोगों के प्रभाव को नष्ट करती है ।[१२] यह सारे राक्षसों (रोगकृमियों) को नष्ट करती है ।[१३] जंगिड मणि को धारण करने वाले पर शत्रु के कोई भी अभिचार प्रयोग सफल नहीं हो पाते ।[१४]

**३. प्रतिसर मणि**—इस मणि के आविष्कारक कश्यप ऋषि हैं और उन्होंने ही इसका प्रचार-प्रसार किया ।[१५] इस मणि को पहनने वाले पर अप्सरा, गन्धर्व और मनुष्यों का कोई भी कृत्याप्रयोग सफल नहीं हो सकता है ।[१६] प्रतिसर मणि कवच की तरह रक्षा करती है । जो इस मणि को धारण करता है, वह सिंह और व्याघ्र के तुल्य बलवान् होकर शत्रुओं का दमन करता है ।[१७] यह मणि बहुत शक्तिशाली है । यह वीर को ही बाँधी जाती है । यह मंगलकारी और रक्षक है ।[१८]

यह मणि कैसे बनती है ? इस बात का सूक्त में कोई उल्लेख नहीं है । कौशिक-सूत्र में वर्णन है कि यह प्रतिसर मणि तिलक वृक्ष से बनती है ।[१९] इसको तैयार करने की विधि दी है कि इस मणि को दही और शहद में तीन रात डुबाकर रखे और बाद में उसे मंत्र द्वारा अभिमन्त्रित करके बाँधे ।

**४. वरण मणि**—अथर्ववेद में २५ मंत्रों में इस मणि का गुणगान है ।[२०] इसको वरुण भी कहते हैं । इसको हिन्दी में वरना या वरुण कहते हैं । इसके अन्य नाम हैं—वरुण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक । भावप्रकाश में इसके ये गुण बताए हैं:—वरुण की छाल पाचक, शक्तिवर्धक और रेचक है । यह अश्मरी (पथरी रोग) को नष्ट करती है । इसकी छाल का काढ़ा पथरी को गलाकर मूत्र के द्वारा बाहर निकाल देता है । यह मूत्रदोष, मूत्रकृच्छ्र, (कष्ट से मूत्र आना) और गठिया को ठीक करता है । तपेदिक (T.B.) दूर करने के लिए इसकी मणि (माला) गले में बाँधी जाती है ।[२१]

वरण मणि सभी दुःखों और शत्रुओं को दूर करती है । वारक होने के कारण इसका नाम वरण पड़ा है । यह सभी रोगों को दूर करती है ।[२२] यह मणि इन रोगों की चिकित्सा मानी गई है:—स्वप्नदोष, कुस्वप्न आना, नींद ठीक न आना, शारीरिक निर्बलता, हृदय की निर्बलता, सभी प्रकार के भय ।[२३] यह मणि मनुष्य को पुरुषार्थी बनाती है, यशस्वी बनाती है, दीर्घायु बनाती है ।[२४]

वरण मणि के निर्माण की विधि कौशिक सूत्र में इस प्रकार दी है:—वरण वृक्ष की मणि को दही और शहद में तीन रात डुबाकर रखे और बाद में उसे अभिमन्त्रित करके बाँधे ।[२५]

**५. अस्तृत मणि**—अस्तृत का अर्थ है—अजेय या अजित । इसका अभिप्राय यह है कि इस मणि को बाँधने वाला अजेय हो जाता है । अथर्ववेद में वर्णन किया गया है कि यह मणि घी, दूध और शहद आदि से मिश्रित है ।[२६] इससे ज्ञात होता है कि यह मणि घी, दूध, शहद आदि को मिलाकर बनाई जाती है । सायण ने इसकी व्याख्या में लिखा है कि इसके बाँधने वाले को कोई जीत नहीं सकता है, अतः इसका नाम अस्तृत है, अथवा त्रिवृत् मणि का ही नाम अस्तृत है ।[२७] यह बल, वीर्य, तेज और दीर्घायु देती है ।[२८]

**६. दर्भ-मणि**—दर्भ का अर्थ कुश या कुशा है । अथर्ववेद के पाँच सूक्तों में दर्भमणि का वर्णन है ।[२९] यह मणि शरीर की रक्षक, शत्रुनाशक एवं अभिचार कर्म करने वालों की नाशक है । यह दीर्घायु और तेज देती है ।[३०] यह हृदय में शान्ति और पवित्रता का भाव देती है । इसको धारण करने वाला पापों से बचता है । अतएव ऋषि मुनि इसको धारण करते हैं ।[३१] इस मणि का यह भी लाभ बताया गया है कि इसको धारण करने वाला व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी का प्रिय हो जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि दर्भमणि धारण करने वाला व्यक्ति अपने क्रोध को वश में कर लेता है और अक्रोध के कारण सर्वप्रिय हो जाता है ।[३२]

दर्भ मणि को देवों का कवच बताया गया है ।[३३] इससे ज्ञात होता है कि दर्भ ज्ञान का प्रतीक है और ज्ञान देवों का कवच है । अतएव यह राष्ट्र का रक्षक भी कहा गया है । इसमें हजारों गुण हैं । इसको धारण करने वाला व्यक्ति दीर्घायु और जरा-मृत्यु होता है ।[३४] यह मणि घी, दूध और शहद में डालकर बनाई जाती है ।[३५]

**७. औदुम्बर मणि**—उदुम्बर गूलर को कहते हैं । यह मणि गूलर से बनती है । नक्षत्रकल्प में इसका विनियोग बताया गया है कि यह मणि कौबेरी अर्थात् कुबेर-संबन्धी महाशान्ति में काम आती है ।[३६] यह मणि धन के इच्छुक के लिए

है । यदि धन का नाश हो गया हो तो यह उसे शान्ति देती है । यह वीरता की सूचक है, अतः वीरों को ही बाँधी जाती है ।[३७]

यह मणि पुष्टि के लिए है । यह पशुसमृद्धि, धन और अन्न की वृद्धि करती है । यह प्रजा, धन और तेज की वृद्धि करती है ।[३८] यह रायस्पोष अर्थात् धन की प्राप्ति और धन की पुष्टि के लिए धारण की जाती है ।[३९]

**८. शंख मणि**—अथर्ववेद के एक सूक्त में शंख मणि का वर्णन है ।[४०] कौशिक-सूत्र में विनियोग है कि उपनयन संस्कार के बाद दीर्घायु के इच्छुक बालक को शंखमणि अभिमन्त्रित करके बाँधे ।[४१] नक्षत्रकल्प में वर्णन है कि शंखमणि वारुणी अर्थात् जल-संबन्धी महाशान्ति के लिए है ।[४२] जल के भय से रक्षा के लिए यह मणि बाँधी जाती है । शंखमणि को सर्वरोग-नाशक कहा गया है ।[४३] शंखमणि आयुवर्धक है । यह रोगकृमियों को नष्ट करती है । यह दीर्घायु, तेज और बल देती है ।[४४]

शंख यह एक समुद्री कोशस्थ जीव का अस्थिवत् रक्षक है । यह शंख के जीव के साथ बढ़ता है, यह हड्डी के तुल्य होता है । यह बात अथर्ववेद में अस्थि शब्द के द्वारा स्पष्ट की गई है ।[४५] पानी में शंख को घोलकर बच्चों को पिलाने से उनकी बहुत सी बीमारियाँ दूर होती हैं । यह विधि महाराष्ट्र में प्रचलित है । बच्चों के गले में शंख की मणि बाँधने की प्रथा आज भी वहाँ विद्यमान है । इससे लाभ देखा गया है ।

**९. शतवार मणि**—अथर्ववेद के एक पूरे सूक्त में शतवार मणि का उल्लेख है ।[४६] यह शतावर है । सायण ने शतवार का अर्थ किया है—सौ मूल या काँटों वाली ओषधि, अथवा सौ रोगों को नष्ट करने वाली ओषधि । भावप्रकाश में भी इसको शतावरी, शतवीर्या, सहस्रवीर्या, शतमूली आदि कहा गया है । नक्षत्रकल्प में सन्ततिलाभ के लिए इसके प्रयोग का विधान है ।[४७] शतवार मणि का ऋषभ (वीर्यवर्धक) ओषधि के रूप में वर्णन है ।

शतवार मणि को 'दुर्णामचातन' कहा गया है ।[४८] गुप्त बवासीर आदि रोगों को दुर्णाम रोग कहते हैं । ये गुप्त रोग हैं, इनका नाम लेना अनुचित है, अतः इन्हें दुर्णाम कहते हैं । यह सभी प्रकार के गुप्त रोगों को नष्ट करती है । यह ऋषभ ओषधि है, अतः नपुंसकता आदि रोगों को दूर करके पुत्रलाभ कराती है ।[४९]

भावप्रकाश निघण्टु में शतावरी (शतावर) के दो भेद दिए गए हैं:—छोटी शतावर और बड़ी शतावर । छोटी शतावर रसायन, बुद्धिवर्धक, अग्निवर्धक, वीर्यवर्धक, बलदायक, अतिसार, रक्तविकार आदि की नाशक है । बड़ी शतावर वीर्यवर्धक, रसायन, बुद्धिवर्धक और हृदय को शक्ति देने वाली है । यह बवासीर,

संग्रहणी और नेत्र रोगों को नष्ट करती है । पाश्चात्त्य मतानुसार यह पुष्टिकारक, बलवर्धक और दूध बढ़ाने वाली है । यह ग्रहणी और उदर रोगों में दी जाती है । यह मूत्र को कम करती है । शुक्रक्षय से होने वाली निर्बलता आदि को दूर करती है ।[५०]

**१०. अभीवर्त मणि**—अथर्ववेद में राष्ट्रीय शक्ति की वृद्धि और शत्रुनाशन के लिए अभीवर्त मणि का उल्लेख हुआ है ।[५१] अथर्ववेद का कथन है कि अभीवर्त मणि के द्वारा इन्द्र की विजय हुई और उसकी श्रीवृद्धि हुई । यह आक्रमणकारियों को नष्ट करती है और राष्ट्रीय श्री की वृद्धि करती है ।[५२]

कौशिकसूत्र में इस मणि को बनाने की विधि दी गई है कि सुवर्ण को बीच में रखकर उस पर लोहा, सीसा, चांदी और तांबा मढ़कर त्रयोदशी से तीन दिन तक दही और मधु से पूर्ण पात्र में रखे । बाद में उसे धागे में पिरोकर कुशा पर रखकर उसके लिए यज्ञ करे और बाद में उसे बाँधे ।[५३] नक्षत्रकल्प में राज्य की कामना करने वाले राजा के लिए यह माहेन्द्री महाशान्ति कही गई है ।[५४]

**११. पर्णमणि**—अथर्ववेद में पर्णमणि का ८ मंत्रों में उल्लेख है ।[५५] यह सोमलता के पत्ते या उसके रस से बनने वाली ओषधि या मणि है ।[५६] कौशिक-सूत्र और सायण आदि ने पर्णमणि से पलाश लिया है । सायण का कथन है कि पलाश या ढाक का वृक्ष सोम के पत्ते से उत्पन्न हुआ है ।[५७] तैत्तिरीय ब्राह्मण का भी कथन है कि पलाश की उत्पत्ति सोम के पत्ते से हुई है ।[५८] नक्षत्रकल्प का कथन है कि सम्पत्ति की इच्छा वाला व्यक्ति आंगिरसी महाशान्ति करावे और पलाशमणि बाँधे ।[५९] कौशिकसूत्र में पर्णमणि के निर्माण की विधि दी है कि बल आयु और धन की पुष्टि के लिए पलाश (ढाक) के वृक्ष की मणि को वासित और अभिमन्त्रित करके बाँधे ।[६०]

पर्णमणि के धारण से राजा तेजस्वी और शक्तिशाली होता है । वह राष्ट्र में सर्वोच्च पद पाता है । पर्णमणि ऐश्वर्य और क्षात्रशक्ति देती है । पर्णमणि में दिव्य तेज है । यह अपने बल से शत्रुओं को नष्ट करती है । इसके धारण से मनुष्य दीर्घायु और शतायु होता है ।[६१]

**१२. फालमणि**—अथर्ववेद में ३५ मन्त्रों में फालमणि का गुणगान किया गया है ।[६२] कौशिकसूत्र का कथन है कि फालमणि खदिर अर्थात् खैर वृक्ष की मणि सोने में जड़कर या सोने में लपेट कर त्रयोदशी से लेकर तीन दिन तक दही और मधु में डुबाकर रखी जाती है और बाद में सोने के धागे में पिरोकर तीन बार लपेट कर पहनी जाती है ।[६३] यह मणि सब कामनाओं की पूर्ति के लिए तथा शत्रुनाश के

लिए पहनी जाती है । नक्षत्रकल्प का कथन है कि यह खादिर फालमणि पृथिवी के आधिपत्य के इच्छुक राजा को पहनाई जाती है ।[६४]

यह फालमणि खैर की लकड़ी से बनती है । खैर की लकड़ी के साथ फाल अर्थात् लोहा भी इसमें लगाया जाता है ।[६५] इसके लाभों का वर्णन किया गया है कि यह कवच का काम देती है, तेज और रस प्रदान करती है, शत्रुओं को नष्ट करती है । यह तेज के लिए धारण की जाती है ।[६६] यह श्रद्धा, यज्ञ और उत्सव का प्रतीक है ।[६७]

**१३. वैयाघ्र मणि**—अथर्ववेद में वैयाघ्र मणि का उल्लेख है ।[६८] यह ओषधियों के रस से बनती है । यह सभी रोगों और रोगकृमियों को नष्ट करती है तथा विनाश से बचाती है । यह मणि व्याघ्र के तुल्य प्रभावकारी है, अतः इसे वैयाघ्रमणि कहते हैं ।

**१४. अन्य मणियाँ—(१) आत्र्जन मणि**—अथर्ववेद में आत्र्जन मणि का उल्लेख है ।[६९] इसे पीलिया, धातुरोग, ज्वर, कफरोग, हृदयरोग, अंगभेद और छूतरोगों में लाभप्रद बताया है । पैप्पलाद संहिता में इसे नेत्रज्योतिवर्धक, रक्षोनाशक, कुस्वप्ननाशक और क्षेत्रियरोग-नाशक कहा गया है ।[७०] यह अंजन है । यह वृक्ष और खनिज दोनों है । (देखो आञ्जन, शब्द ३०)

**(२) अश्वत्थ मणि**—अथर्ववेद में अश्वत्थ (पीपल) मणि से शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति का उल्लेख है ।[७१] यह उन्माद रोगनाशक है । (देखो शब्द २४) ।

**(३) पाटा मणि**—यह पाटा या पाठा है । इसको जलजमनी बूटी भी कहते हैं ।[७२] इन्द्र ने असुरों पर विजय के लिए पाटा ओषधि की मणि अपनी बाहु पर बाँधी थी ।[७३] प्रतिवादी पर विजय के लिए इसकी मणि धारण करने का विधान है ।[७४]

**१५. मणिधारण के लाभादि**—अथर्ववेद में मणि-धारण के अनेक लाभों का उल्लेख है । जंगिड मणि के धारण से दीर्घायु और समृद्धि की प्राप्त होती है । इससे अंगविकार-दोष दूर होते हैं ।[७५] अश्वत्थमणि के धारण से शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति होती है ।[७६] शंखमणि तेज, बल, दीर्घायु और शतायु के लिए बाँधी जाती है ।[७७] पाटा या पाठा ओषधि शास्त्रार्थ आदि में विजय के लिए बाँधी जाती है ।[७८] कुछ मणियाँ भूरे रंग के धागे में बाँधकर पहनी जाती हैं । इनसे सूखा आदि रोग दूर होते हैं ।[७९] दर्भ आदि मणियाँ शरीर पर कवच का काम करती हैं और अकालमृत्यु को रोककर जरामृत्यु प्रदान करती हैं ।[८०] मणि शारीरिक शक्ति बढ़ाती है, क्षात्रबल देती है और शत्रुओं का नाश करती है ।[८१] औदुम्बर मणि धन धान्य की समृद्धि,

पशु-सम्पदा, सन्तति-लाभ, तेज और ऐश्वर्य प्रदान करती है ।[८२] पर्णमणि के धारण से राजा तेजस्वी और शक्तिशाली होता है । उसे सर्वोच्चता प्राप्त होती है ।[८३]

इस प्रकार मणिधारण से तीन प्रकार के लाभ होते हैं:—(क) अलंकरण, (ख) मानसिक शान्ति और प्रसन्नता तथा वीरत्व आदि भावों का जागरण, (ग) विविध रोगों का प्रतिकार, विष-नाशन, रोग-कृमिनाशन और प्रतिपक्षी पर विजय आदि ।

सुश्रुत संहिता में मणियों के इन लाभादि का समर्थन प्राप्त होता है । सुश्रुत में कहा गया है कि मोती, प्रवाल (मूंगा), हीरा, वैदूर्य (लहसुनिया), स्फटिक आदि मणियाँ धारण करनी चाहिएं, क्योंकि ये नेत्र-ज्योति-वर्धक, शीतल, दोष-नाशक और विषनाशक हैं । ये मन में पवित्रता लाती हैं, पाप-भावना दूर करती हैं, अशोभा हटाती हैं और विविध मलों को नष्ट करती हैं ।[८४]

**१६. सुवर्णधारण से लाभ**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में हिरण्य (सुवर्ण, सोना) के धारण का बहुत गुणगान है । सुवर्ण आयु के लिए हितकर है, तेज बढ़ाता है, रायस्पोष (योगक्षेम) देता है, रोगों को नष्ट करता है, कान्ति देता है । यह रोगों पर विजय प्राप्त करता है ।[८५] जो दाक्षायण हिरण्य धारण करता है, उस पर राक्षसों पिशाचों आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । वह दीर्घायु होता है ।[८६] दाक्षायण हिरण्य के धारण से मनुष्य सौ वर्ष की आयु वाला होता है ।[८७] इसको धारण करने से मनुष्य को जल और ओषधियों का तेज, बल और शक्ति प्राप्त होती है ।[८८]

स्त्रियाँ जो हाथों में सोने का कंकण या कंगन पहनती हैं, उसके ये लाभ बताए गए हैं:—यह राक्षसों या रोगकृमियों को हटाता है, पुत्रलाभ कराता है और समृद्धि का साधन है । कंगन का धारण करना गर्भाशय को पुष्ट करता है और सन्तान का लाभ कराता है । त्वष्टा ने सोने का कंगन अदिति के हाथ में बाँधा था कि यह पुत्र को जन्म दे । अदिति ने पुत्रलाभ की कामना से इसे अपने हाथ में बाँधा था ।[८६]

चरक और सुश्रुत ने भी सुवर्ण के ये लाभ बताए हैं । चरक का कथन है कि जो व्यक्ति सुवर्ण का सेवन करता है, उस पर विष का प्रभाव नहीं होता है ।[६०] सुश्रुत का भी कथन है कि सुवर्ण रसायन, वीर्यवर्धक, नेत्र-ज्योति-वर्धक और विषनाशक है ।[६१]

अथर्ववेद में त्रिधातु अर्थात् सुवर्ण, रजत और लोहा इन तीन धातुओं से बने हुए यज्ञोपवीत को पहनने का विधान है । इससे आरोग्य की प्राप्ति होती है और व्यक्ति शतायु होता है ।[६२]

सुश्रुत में भी रजत (चांदी), ताम्र (तांबा), कांसा, लोहा, रांगा और सीसा के विविध गुणों का विस्तृत वर्णन किया है । चांदी को मलसारक, शीत, पित्त तथा

वात का नाशक बताया है । लोहे की वातकारक, पित्त एवं कफ का नाशक, शीतल और प्यास बुझाने वाला बताया है ।[६३]

●

---

**मणिधारण**

१. अथर्व० २.४; १६.३४; १६.३५
२. अ० १६.३४.६
३. अ० २.४.१ की व्याख्या
४. अ० २.४.५
५. भाव० हरीत० ६८-६६ । पृष्ठ ३२ से ३४
६. अ० २.४.१
७. अ० २.४.३
८. अ० १६.३४.१०
६. अ० १६.३४.५
१०. अ० २.४.२
११. अ० २.४.३
१२. अ० १६.३४. २ और ४
१३. अ० २.४.४
१४. अ० २.४.६
१५. अ० ८.५.१४
१६. अ० ८.५.१३
१७. अ० ८.५. १० और १२
१८. अ० ८.५.१
१६. कौशिक सूत्र ३.२
२०. अथर्व० १०.३. १ से २५
२१. भाव० वटादि० ६५-६६ । पृष्ठ ३५६-३५७
२२. अथर्व० १०.३.५
२३. अ० १०.३. ६ से ८
२४. अ० १०.३. १० और १२ तथा १८ से २४
२५. कौशिक सूत्र ३.२
२६. अ० १६.४६.६
२७. अथर्व० १६.४६.१
२८. अ० १६.४६. १ और ३
२६. अ० १६ सूक्त २८, २६, ३०, ३२, ३३
३०. अ० १६.२८. १ और २
३१. अ० १६.३३.३
३२. अ० १६.३२.८
३३. अ० १६.३०.३
३४. अ० १६.३०.२
३५. अ० १६.३३.२
३६. नक्षत्रकल्प १७ और १६
३७. अ० १६.३१.१४
३८. अ० १६.३१. १ से ३
३६. अ० १६.३१.१३
४०. अथर्व० ४.१०. १ से ७
४१. कौशिकसूत्र ७.६ और ७.६
४२. नक्षत्रकल्प १७ और १६
४३. अ० ४.१०.३
४४. अ० ४.१०. २ से ७
४५. अ० ४.१०.७
४६. अथर्व० १६.३६. १ से ६
४७. नक्षत्रकल्प १७ और १६
४८. शतवारो... मणिर्दुर्णामचातनः । अ० १६.३६.१
४६. ऋषभः शतवारो अयं मणिः । अ० १६.३६.५
५०. भाव० गुडू० १७४-१७६ । पृष्ठ २१८-२१६

५१. अथर्व० १.२६. १ से ६
५२. अथर्व० १.२६. १ और ४
५३. कौशिकसूत्र २.७
५४. नक्षत्रकल्प १७ और १६
५५. आयमगन् पर्णमणिः । अ० ३.५. १ से ८
५६. अ० ३.५.४
५७. सायण, अ० ३.५.१
५८. तैत्ति० ब्रा० १.२. १.६
५९. नक्षत्रकल्प १७ और १९
६०. कौशिकसूत्र ३.२
६१. अथर्व० ३.५. १ से ५
६२. अथर्व० १०.६. १ से ३५
६३. कौशिकसूत्र ३.२
६४. नक्षत्रकल्प १७ और १९
६५. अ० १०.६.२, ३, ६
६६. अ० १०.६. १ से ३५
६७. अ० १०.६.४
६८. वैयाघ्रो मणिर्वीरुधाम्० । अ० ८.७.१४
६९. अथर्व० ४.९. १ से १० । अ० १९. सूक्त ४४ और ४५
७०. पैप्प० १.५५. १ से ४ । पै० ८.३. १ से १३
७१. अथर्व० ३.६. १ से ८
७२. भाव० गुडू० १८२-१८४ । पृष्ठ २२१-२२२
७३. अथर्व० २.२७.३
७४. अ० २.२७.१
७५. अ० २.४. १ से ६
७६. अ० ३.६. १ से ८
७७. अ० ४.१०. १ से ७
७८. अ० २.२७. १ से ७
७९. अ० ३.६.३
८०. अ० १९.३०.१
८१. अ० १९.३०.४
८२. अ० १९.३१. १ से ८
८३. अ० ३.५. १ और २
८४. मुक्ता-विद्रुम-वज्रेन्द्र-वैदूर्य-स्फटिकादयः ।
चक्षुष्या मणयः शीता लेखना विषसूदनाः ।
पवित्रा धारणीयाश्च पाप्मालक्ष्मीमलापहाः ।। सुश्रुत, सूत्र०, ४६. ३३१-३३२
८५. यजु० ३४.५०
८६. यजु० ३४.५१ । अथर्व० १.३५.२
८७. यजु० ३४.५२ । अथर्व० १.३५.१
८८. अथर्व० १.३५.३
८९. अ० ६.८१. १ से ३
९०. चरक० चिकित्सा० २३.२४०
९१. सुश्रुत० सूत्र० ४६.३२८
९२. अथर्व० ५.२८.१
९३. सुश्रुत, सूत्र० ४६. ३२९ से ३३१

अध्याय ११

# कृत्या-प्रयोग, अरिष्ट, शकुन आदि

१. कृत्या-प्रयोग (अभिचार कर्म)
२. कृत्या-परिहार
३. रक्षोनाशन
४. यातुधाननाशन
५. अरिष्ट-नाशन
६. पापमोचन
७. पाश-मोचन
८. कुलक्षण और सुलक्षण
९. शकुन-विचार

अध्याय ११

# कृत्या-प्रयोग, अरिष्ट, शकुन आदि

**१. कृत्या-प्रयोग (अभिचार कर्म)**—अथर्ववेद में कृत्या-प्रयोग एवं अभिचार कर्मों का वर्णन है । ये प्रयोग किसी विशेष उद्देश्य को लेकर मन्त्रों आदि से या अन्य साधनों से किये जाते हैं । इनको ही जादू-टोना आदि कहते हैं । इनके कुछ विशेष उद्देश्य बताए गए हैं । जैसे—शत्रुनाश के लिए, शत्रुसेना के नाश के लिए, शत्रुओं के यज्ञों और उनके करने वाले पुरोहितों आदि को नष्ट करने के लिए ।[१]

इसी प्रकार अज्ञात चोरों का पता लगाने के लिए, जादू करने वालों को नष्ट करने के लिए, पति को वश में करने के लिए और अपनी सपत्नी या सौत को नष्ट करने के लिए ये अभिचार कर्म किए जाते हैं ।[२]

अथर्ववेद में बताया गया है कि अभिचार कर्म मुख्यतया ये लोग करते हैं:—राजा, ब्राह्मण, स्त्रियाँ और शूद्र ।[३] राजा अपने शत्रुओं को नष्ट करने के लिए, ब्राह्मण अपने गौरव एवं प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए ऐसे अभिचार कर्म करते हैं । स्त्रियाँ और शूद्र अशिक्षावश इन बातों पर विश्वास करते हैं । अथर्ववेद का कथन है कि पुरुष या स्त्री जो भी कृत्याप्रयोग करते हैं, वे अपने दुर्भावों के कारण ऐसा करते हैं । यह पाप कर्म है ।[४]

अभिचार यज्ञों के विषय में कहा गया है कि ये मन, वचन और कर्म तीन प्रकार से किए जाते हैं । इनमें असद्भावना होती है, अतएव इनकी सफलता कठिनाई से होती है । इनमें अनृत तत्व अधिक रहता है, वह इसकी सफलता को नष्ट कर देता है ।[५]

**२. कृत्या-परिहार**—अभिचार कर्मों का प्रभाव दूर करने के लिए चार विधियाँ बताई गई हैं । ये हैं:—१. ओषधि के द्वारा—अपामार्ग आदि ओषधियों से, २. ज्ञान और विद्या (ब्रह्मन्) के बल से, अर्थात् मनोबल और विचारशक्ति से, ३. ऋचा या मन्त्रपाठ से, अर्थात् मन्त्रशक्ति के द्वारा, ४. ऋषियों के द्वारा छिड़के हुए जल से ।[६] मणियों को धारण करने से कृत्या-प्रयोगों का प्रभाव नहीं होता है ।[७]

अथर्ववेद का कथन है कि अभिचार या टोना उतारने के लिए टोना किए हुए व्यक्ति के ऊपर से पत्थर, उसके चारों ओर घुमाकर, आग में डाल दें । वह पत्थर

चट-चट करके टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा और टोने का प्रभाव नष्ट हो जाएगा ।[८] अश्मन् शब्द से फिटकिरी का भी अभिप्राय लिया जा सकता है । सफेद फिटकिरी टोना किए हुए व्यक्ति पर से उतार कर आग में डाली जाती है । वह फूल कर कुछ आकृति-सी धारण कर लेती है । इस फूली फिटकिरी को आग से बाहर निकालकर पैर या जूते आदि से रगड़ दिया जाता है । इस प्रकार टोने का प्रभाव नष्ट हो जाता है । ऐसी मान्यता है । लाल या पीली सूखी साबुत मिर्चों को भी इसी प्रकार टोना किए हुए व्यक्ति पर से उतार कर आग में डाल देते हैं । मिर्चों के जल जाने से टोने का प्रभाव नष्ट हो जाता है, ऐसी भी मान्यता है ।

अथर्ववेद में लोहे के द्वारा भी इसी प्रकार टोने का प्रभाव नष्ट करने का वर्णन है ।[९] टोना किए हुए व्यक्ति पर से लोहे की कोई वस्तु या कील आदि उतार कर किसी को दे दी जाती है । अथर्ववेद में उल्लेख है कि आँख में अंजल लगाने वाले पर जादू-टोने शाप आदि का कोई प्रभाव नहीं होता है ।[१०] आजकल भी मान्यता है कि छोटे बच्चों आदि के माथे पर अंजन का टीका लगा देने से उन पर किसी की कुदृष्टि या टोना आदि नहीं लगता है ।

अथर्ववेद में वर्णन है कि अपामार्ग (चिरचिटा) सभी प्रकार के जादू-टोने के प्रभाव को नष्ट कर देता है ।[११] अथर्ववेद के एक सूक्त में नागरमोथा (मोथा या मुस्ता) के लिए कहा गया है कि सूअर अपनी नाक या थूथड़ी से खोदकर इसे प्राप्त करता है । यह कृत्या-प्रयोग करने वाले को नष्ट करता है ।[१२] नागरमोथा का इतना महत्त्व वर्णन किया गया है कि इसे टोना करने वाले के सामने रखने पर टोने का प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर नहीं होता है और वह टोना लौटकर टोना करने वाले को ही नष्ट कर देता है ।[१३]

अथर्ववेद में वर्णन किया गया है कि सत्य की शक्ति सर्वोत्तम है । वही सबसे बढ़कर रक्षक है । सत्य के सामने सभी कृत्याप्रयोग असफल हो जाते हैं ।[१४] सत्य सभी घातक प्रयोगों का निवारक है । सत्य सहस्रों घातक प्रयोगों से, निन्दा-वचनों से, रक्षा करता है ।[१५] अथर्ववेद का यह भी कथन है कि जो व्यक्ति निरपराध है, उसपर कृत्या या अभिचार का प्रभाव नहीं होता है ।[१६]

अथर्ववेद में वर्णन किया गया है कि कृत्या या अभिचार कर्म (जादू, टोना आदि) मूर्खों का काम है । मूर्खतावश लोग इसे करते हैं । धीर व्यक्ति पर इसका प्रभाव नहीं होता । कृत्या-प्रयोग करने वाला व्यक्ति स्वयं अपने आपको संकट में डाल लेता है ।[१७] कृत्या-प्रयोग को लौटाने का भी वर्णन है । यह माना जाता है कि जादू-टोने आदि का प्रभाव यदि दूसरे व्यक्ति पर नहीं पड़ता है तो वह प्रयोग लौटकर प्रयोक्ता को ही उतनी हानि पहुँचाता है ।[१८]

३. **रक्षोनाशन**—अथर्ववेद में रक्षस्, राक्षस, असुर और पिशाच शब्द पापी, अत्याचारी, अन्यायी, पर-शोषक, मांसाहारी और सामाजिक दृष्टि से गर्हित या शोषक वर्ग के लिए आया है। साथ ही ये शब्द रोगकृमियों के लिए भी हैं। इनको नष्ट करने के लिए अनेक सूक्तों में प्रार्थनाएँ हैं। राक्षसों को नष्ट करने के लिए भी प्रार्थनाएँ है। इन सूक्तों में विभिन्न रोगों का भी उल्लेख है।[१९] असुरों को नष्ट करने के लिए प्रार्थनाएँ हैं।[२०] पिशाचों को नष्ट करने के लिए भी प्रार्थनाएँ हैं।[२१]

४. **यातुधान-नाशन**—अथर्ववेद के अनुसार यातुधान शब्द जादू करने वालों के लिए है, जो असद्भावना से प्रेरित होकर दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए जादू या टोना करते हैं। यातु शब्द का ही विकृत रूप जादू है। यातुधान शब्द विभिन्न रोगकृमियों के लिए भी आया है। दोनों प्रकार के यातुधानों को नष्ट करने के लिए अनेक सूक्तों में प्रार्थनाएँ हैं। अग्नि और इन्द्र से प्रार्थना है कि वे यातुधानों को नष्ट करें।[२२] गर्भ को नष्ट करने वाले रोगकृमियों के लिए असुर, रक्षस्, किमीदिन्, यातुधान आदि शब्द आए हैं। इन्हें नष्ट करने के लिए पीली और सफेद सरसों का उल्लेख है।[२३] शतवार (शतावर) मणि को यातुधान और विभिन्न रोगों का नाशक बताया गया है।[२४] एक सूक्त में गन्धर्व और अप्सरा शब्द रोगकृमियों के लिए आया है और इन्हें नष्ट करने का विधान है।[२५]

५. **अरिष्ट-नाशन**—अरिष्ट शब्द दुर्भाग्य, अशुभ आदि अर्थों को सूचित करता है। इसी अर्थ में निर्ऋति शब्द है। दुर्भाग्य आदि की निवृत्ति के लिए विभिन्न प्रयत्न किए जाते हैं। अपामार्ग या चिरचिटा ओषधि के द्वारा शाप आदि तथा कृत्या-प्रयोगों का प्रभाव नष्ट किया जाता है।[२६] अलक्ष्मी, शारीरिक अंगविकृति आदि दुर्भाग्य सूचक चिह्नों को दूर करके सौभाग्य के लिए प्रार्थना की गई है।[२७] दुर्भाग्यसूचक या अशुभ लक्षणों को दूर करके शुभ लक्षणों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है।[२८] पशु के जुड़वाँ बच्चे होने से उत्पन्न दोषों को दूर करने के लिए एवं उसके आरोग्य के लिए भी प्रार्थना की गई है।[२९]

## पापमोचन और पाशमोचन

६. **पापमोचन**—कुछ सूक्तों में पापों से मुक्ति के लिए प्रार्थनाएँ हैं।[३०] इन सूक्तों में माता, पिता, गुरु, भाई, बहन, शत्रु आदि के प्रति किए गए शारीरिक एवं मानसिक पापों से मुक्ति के लिए प्रार्थनाएँ हैं। पवित्र जल के द्वारा पापों से मुक्त होने के लिए प्रार्थनाएँ हैं।[३१] इसका अभिप्राय यह है कि पवित्र नदियों या तीर्थों आदि में स्नान करने से शारीरिक पाप या कष्ट दूर होते हैं। पवित्र जल का अभिषेक

या छींटा मारना भी इसी प्रकार शुद्धि का साधन है। प्रायश्चित के द्वारा मन को पवित्र करने और पापों से मुक्त होने का भी वर्णन है।[३२]

**७. पाशमोचन**—अथर्ववेद में ग्राहि, निर्ऋति, अभूति, निर्भूति आदि अनेक पाशों का उल्लेख है और उनसे मुक्त होने की प्रार्थनाएँ की गई हैं।[३३] अनेक सूक्तों में वरुण के पाशों से मुक्त होने के लिए प्रार्थनाएँ हैं।[३४]

## शकुन-विचार

**८. कुलक्षण और सुलक्षण**—अथर्ववेद के एक सूक्त में कुलक्षणों को हटाने और सुलक्षणों के होने का उल्लेख है।[३५] इस सूक्त में १२ कुलक्षणों के नाम गिनाए गए हैं:—१. ललाम्यं लक्ष्मम्—सिर संबन्धी कुलक्षण—सिर का छोटा होना, बुद्धिहीन होना आदि। २. ललाम्यं विलीढ्यम्—माथे के कुलक्षण—माथे पर बाल अधिक होना आदि। ३. रिश्यपदी—हिरण के तुल्य कृश पैर होना। ४. वृषदती—बैल के तुल्य बड़े दाँत होना। ५. गोषेधा—बैल या गाय के तुल्य चलना। ६. विधमा—कर्णकटु बोलना। ऊँची और भद्दी आवाज में बोलना। ७. केशेषु घोरम्—भद्दे बाल रखना, बालों का कड़ा होना या बालों के कारण आकृति का भद्दा दीखना। ८. प्रतिचक्षणे क्रूरम्—कुदृष्टि से देखना, आँखों में क्रूरता या भयावह नेत्र होना। ९. तन्वा क्रूरम्—शारीरिक कुरूपता, अंगों में विकार। १०. आत्मनि क्रूरम्—मानसिक क्रूरता, मन या बुद्धि में क्रूरता का भाव। ११. अराति—कृपणता, उदारता का अभाव। १२. पदोः हस्तयोः अरणिः—हाथ-पैर में विकार या टेढ़ापन।

यजुर्वेद में भी आठ कुलक्षणों का उल्लेख है। ये हैं :—१. अतिदीर्घ—बहुत लम्बा होना। २. अतिह्रस्व—बहुत छोटा या नाटा होना। ३. अतिस्थूल—बहुत अधिक मोटा होना। ४. अतिकृश—बहुत अधिक पतला या दुबला होना। ५. अतिशुक्ल—बहुत अधिक सफेदी या पीलापन लिए हुए होना। ६. अतिकृष्ण—बहुत अधिक काला होना। ७. अतिकुल्व—बहुत अधिक गंजा होना या शरीर पर सर्वथा बाल न होना। ८. अतिलोमश—बहुत अधिक बाल होना, शरीर पर बालों की बहुत अधिकता। इन आठ कुलक्षणों से व्यक्ति कुरूप लगता है।[३६]

यजुर्वेद में इनके अतिरिक्त भी कुछ कुलक्षणों का निर्देश है। ये हैं:—खलति (गंजापन), हर्यक्ष (हरी आँख वाला होना), किर्मिर (चितकबरा होना, शरीर पर धब्बे या दाग होना), किलास (कुष्ठ के दाग होना), शुक्ल पिंगाक्ष (पीली आँखों वाला गौरवर्ण व्यक्ति), कृष्ण पिंगाक्ष (पीली आँखों वाला काला व्यक्ति)।[३७]

अथर्ववेद में निर्देश है कि विवाह के प्रसंग में वर-वधू में इन कुलक्षणों का ध्यान रखकर संबन्ध तय करे ।[३८]

**६. शकुन-विचार**—अथर्ववेद में कुछ मन्त्रों में शकुन (सगुन) और अपशकुन (असगुन) का भी विचार किया गया है । शुभ कार्यों में शकुन का होना लाभकर है । दिन-रात, प्रातः-सायं आदि समयों में शकुन हो, अशकुन न हों ।[३९] ये अशकुन न हों:—पृथिवी और अन्तरिक्ष के उत्पात, भूकम्प, भूस्खलन, उल्कापात आदि ।[४०] कुछ अशकुन ये गिनाए गए हैं:—पुच्छलतारा निकलना, उल्कापात, देश में विद्रोह या दंगे आदि, अभिचार और कृत्या-प्रयोग, देशद्रोह आदि के कर्म ।[४१] ये अशकुन राष्ट्र के लिए घातक हैं ।[४२]

किसी विशेष कार्य के लिए प्रस्थान करते समय हवा का प्रतिकूल बहना अशकुन है और अनुकूल बहना शुभ ।[४३] उल्लू का बोलना और कबूतर का आग के पास गिरना अशकुन माना गया है ।[४४]

काले पक्षी अर्थात् कौए आदि का मुँह देखना अशकुन माना गया है ।[४५] काला पक्षी यदि अपने घोंसले से निकलते समय या आकाश में उड़ते समय मर कर गिर जाए तो उसके स्पर्श से अपवित्रता होती है । जल में स्नान, यज्ञ करना तथा अग्नि के स्पर्श से यह दोष दूर होता है ।[४६] स्वप्न दो प्रकार के बताए गए हैं—शुभ और अशुभ । शुभ स्वप्न शकुन हैं और अशुभ अशकुन ।[४७] व्यक्ति के प्रस्थान के समय खाली घड़ा दीखना, किसी का छींकना आदि अशकुन माना गया है ।[४८]



---

**कृत्या-प्रयोग, अरिष्ट, शकुन आदि**

१. अथर्व० ७. सूक्त ७७ । ८.८ । ७.७० । ४.४० । ७.६०
२. अथर्व० ७ सूक्त ६५ और ६६ । १.८ । ६.१३६ । ७.३८ । २.३० । ७.३५
३. अ० १०.१.३
४. अ० ५.१४.६
५. अ० ७.७०. १ और २
६. मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण
ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् । अ० १०.१.१२
७. अ० २.११. १ से ५
८. अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुला फट् करिक्रति । अ० ४.१८.३
९. अयस्मयेनाङ्केन० । अ० ७.११५.१
१०. नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या.... यस्त्वा बिभर्ति-आञ्जन । अ० ४.९.५
११. अ० ४.१८. ५ और ६ ।
१२. शूकरस्त्वा-अखनत्-नसा । ....कृत्याकृतं जहि । अ० ५.१४.१, २

१३. अ० ५.१४.४
१४. अ० ४.१८.१
१५. अ० ५.१५. १ से ११
१६. मा-अस्मानिच्छो अनागसः । अ० १०.१.७
१७. अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या । अ० ५.३१. १० से १२
१८. यथा कृत्याकृतं हनत् । अ० १०.१. ५ और १५ । ४.१८.२
१९. अथर्व० १.२८ । ५.२९
२०. अथर्व० ६.७ । १९.६६
२१. अथर्व० १.१६ । ४.२० । ८.३ । ८.४
२२. अ० १.७ । १.८ । १.२८ । ६.३२
२३. अ० ८.६. १ से २६
२४. अ० १९.३६. १ से ६
२५. अ० ४.३७. १ से १२
२६. अथर्व० ४.१७. १ से ८
२७. अ० १.१८. १ से ४
२८. अ० ७.११५. १ से ४
२९. अ० ३.२८. १ से ६
३०. अथर्व० ६.४५ । ६.५१ । ६.९६ । ६.११३ । ६.११५ । ७.४२ । ७.१०२ । ७.११२
३१. अ० १६.१. १ से १३
३२. अ० ६.१९ । ६.२६ । ७.६३
३३. अथर्व० १६.८. १ से ३३
३४. अथर्व० १.१० । २.१० । ७.८३ ।
३५. निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं निररातिम्० । अ० १.१८. १ से ४
३६. अथैतान् अष्टौ विरूपान् आलभते-अतिदीर्घं चातिह्रस्वम्० । यजु० ३०.२२
३७. खलतिं, हर्यक्षम्, किर्मिरम्० । यजु० ३०.२१
३८. अथर्व० १.१८. १ से ४
३९. सुशकुनं मे अस्तु । अ० १९.८.३
४०. अ० १९.९. ७ और ८
४१. देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु । अ० १९.९.९
४२. वि दुनोति राष्ट्रम् । अ० ५.१७.४
४३. अ० १९.८.६
४४. अ० ६.२९. १ और २
४५. मा... कृष्णशकुनेर्मुखम् । अ० १९.५७.३
४६. अ० ७.६४. १ और २
४७. अ० १९.५७.३
४८. अ० १९.८.४

●

अध्याय १२

# विविध ओषधियाँ

१. ओषधियों की उपयोगिता
२. ओषधि का अर्थ
३. ओषधियों के भेद
४. ओषधियों का वर्गीकरण
५. ओषधियों के उत्पत्ति-स्थान
६. वेदों में निर्दिष्ट वनस्पतियां

अध्याय १२

# विविध ओषधियाँ

**१. ओषधियों की उपयोगिता**—ओषधियाँ मानवजीवन के लिए अमृत हैं। अनेक रूप से वे मानव को लाभ पहुंचाती हैं। काष्ठ, फल, फूल आदि के द्वारा वे मानवजाति के आच्छादन, भरण-पोषण के निमित्त हैं, वहीं मानव के लिए आरोग्यकर भैषज्य प्रदान कर उनका दुःख भी दूर करती हैं।

ऋग्वेद में एक पूरा सूक्त 'ओषधिसूक्त' है।[१] इसमें २३ मंत्रों में ओषधियों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इस सूक्त में महत्त्वपूर्ण बातें ये कही गयी हैं। ओषधियों की उत्पत्ति मानवसृष्टि से पूर्व हुई है। ये ओषधियाँ देवों से भी तीन युग पहले उत्पन्न हुई हैं, (मंत्र १)। ओषधियां संसार में सैकड़ों और सहस्रों स्थानों पर उत्पन्न होती हैं, (मंत्र २)। ओषधियाँ मानवमात्र के दुःख दूर करती हैं और उन्हें पार लगाती हैं, (मंत्र ३)। ओषधियाँ मानवमात्र की रक्षा करती हैं और उनको सरंक्षण प्रदान करती हैं, अतः वे 'मातरः' (माता के तुल्य) हैं, (मंत्र ४)। ओषधियाँ विविध दोषों को दूर करती हैं और रोगों से मुक्त करती हैं। ऐसी ओषधियों के संग्रह करने वाले को भिषग् या वैद्य कहते हैं, (मंत्र ६)। ओषधियाँ शरीर की सभी न्यूनताओं को दूर करती हैं, (मंत्र १०)। ओषधियां शरीर के प्रत्येक अंग में अपना प्रभाव पहुँचा कर उनमें से रोगों को बाहर निकालती हैं, (मंत्र १२)। ओषधियाँ जिसके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं, वह नीरोग हो जाता है, (मंत्र १७)। ओषधियाँ मनुष्य और पशु सभी को नीरोग बनाती हैं, (मंत्र २०)। ओषधियाँ चार प्रकार की हैं— फलयुक्त, फलरहित, फूलयुक्त, फूलरहित, (मंत्र १५)। ओषधियाँ मनुष्य को शक्ति, ऊर्जा और उत्साह देती हैं, जिससे मनुष्य का शरीर और मन ओजस्वी एवं वर्चस्वी होता है, (मंत्र ७)। ओषधियाँ शरीर के अन्दर से रोगों को निकालती हैं, ये रोगों का प्रवेश रोकती हैं और शरीर के सामर्थ्य को अक्षुण्ण रखती हैं (मंत्र ९)।

यजुर्वेद में भी यही भाव २७ मंत्रों में दिया गया है।[२] अथर्ववेद ओषधियों के लिए आकर ग्रन्थ है। इसमें सैकड़ों सूक्त ओषधियों और आयुर्वेद से संबद्ध हैं। इनमें अनेक ओषधियों के गुण-धर्मों का विस्तृत विवेचन है।

वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में वनस्पतियों और उनके पर्याय शब्दों का

विस्तृत उल्लेख मिलता है । इनकी संख्या इस प्रकार है—(१) ऋग्वेद (६७), (२) यजुर्वेद (८२), (३) अथर्ववेद (२८८), (४) ब्राह्मणग्रन्थ (१२६), (५) उपनिषदें (३१), (६) कल्पसूत्र (५१६), (७) पाणिनीय अष्टाध्यायी एवं वार्तिक (१५२+३१), (८) पातंजल महाभाष्य (१०६), (६) यास्ककृत निरुक्त (२६) ।[३]

एतरेय ब्राह्मण में एक महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि वनस्पतियाँ प्राण हैं ।[४] वनस्पतियां मनुष्यमात्र को प्राणशक्ति (आक्सिजन) देती हैं, अतः प्राणस्वरूप हैं । इसलिए मानवजाति की रक्षा के लिए वृक्षों और वनस्पतियों की रक्षा अनिवार्य है ।

ओषधियाँ जीवनरक्षक हैं और चिकित्सा के प्रमुख साधन हैं । इनके द्वारा विभिन्न रोगों को दूर किया जाता है, अतः इन्हें भेषज और सुभेषज (उत्तम चिकित्सा) कहा गया है ।[५] ओषधियों के रस से अनेक दवाएँ बनायी जाती हैं । इनसे रोगों की चिकित्सा होती है । ये रस आयुवर्धक बताए गए हैं ।[६] ओषधियों की उत्पत्ति और वृद्धि का आधार वर्षा है, अतः द्युलोक को ओषधियों का पिता कहा गया है और भूमि पर उत्पन्न होने के कारण भूमि को माता कहा है । समुद्री जल वर्षा का कारण है और समुद्र में नानाप्रकार की ओषधियों होती हैं, अतः समुद्र को ओषधियों का मूल कहा गया है ।[७]

**२. ओषधि का अर्थ**—ओषधि शब्द के अनेक अर्थ दिए गए हैं । सायण ने व्युत्पत्ति दी है —'ओषः पाकः आसु धीयते इति ओषधयः' जिनके फल पकते हैं, उन्हें ओषधि कहते हैं ।[८] यास्क ने इसकी निरुक्ति दी है—'ओषधयः ओषद् धयन्तीति वा । ओषत्येना धयन्तीति वा । दोषं धयन्तीति वा' जो शरीर में शक्ति उत्पन्न कर उसे धारण करती हैं या जो दोषों को दूर करती हैं ।[६]

शतपथ ब्राह्मण ने भी ओषधियों को दोष-नाशक कहा है ।[१०] ओषधियों में त्रिदोषनाशन की शक्ति है और ये वातावरण के प्रदूषण को नष्ट करती हैं । अतः मानवजीवन में और आयुर्वेद में इनका विशेष महत्त्व है ।

**३. ओषधियों के भेद**—ओषधियों के मुख्य रूप से दो भेद हैं और उनके दो-दो भेद होने से चार भेद होते हैं । ओषधि के मुख्य दो भेद हैं— वनस्पति और ओषधि । वृक्षों के लिए वनस्पति शब्द है और छोटे पौधों के लिए ओषधि । ऋग्वेद में वृक्ष और वनस्पति के लिए 'वनिन्' शब्द भी आता है ।[११] वनस्पति के दो भेद किए गए हैं— वनस्पति और वानस्पत्य । बड़े वृक्षों के लिए वनस्पति शब्द है और अपेक्षाकृत छोटे वृक्षों के लिए वानस्पत्य शब्द । इसीप्रकार ओषधि के भी दो भेद किए गये हैं—ओषधि और वीरुध् । छोटे पौधे के रूप में होने वालों को ओषधि (Herbs) और लता गुल्म आदि के रूप में होने वालों को वीरुध् (Creepers) कहा

गया । अथर्ववेद में इन चार भेदों का उल्लेख हैं ।[१२] अथर्ववेद में ओषधि के लिए 'भेषजी' शब्द का भी प्रयोग हुआ है ।[१३]

**४. ओषधियों का वर्गीकरण**—अथर्ववेद में ओषधियों का गुण-धर्मों और रूपादि के आधार पर भी वर्गीकरण किया गया है ।[१४] ये वर्गीकरण हैं—१. रंग के आधारपर वर्गीकरण—ओषधियां इन विभिन्न रंगों की होती हैं :—बभ्रु (भूरे रंग वाली), शुक्र (सफेद रंग की), रोहिणी ( लाल रंग की), पृश्नि (चितकबरी), असिक्नी (नीले रंग की), कृष्णा (काले रंग की)[१५] २. स्वरूप के आधार पर वर्गीकरण—प्रस्तृणती (चारों ओर फैलने वाली), स्तम्बिनी (एक तने वाली), एकशुंग (एक जड़ वाली), प्रतन्वती (अनेक जड़ों वाली), अंशुमती ( अनेक सूक्ष्म अवयव या रेशों वाली), काण्डिनी (पोरुओं वाली), विशाखा (अनेक शाखाओं वाली) ।[१६]

३. गुणों के आधार पर वर्गीकरण—जीवला (जीवनशक्ति देने वाली), नघारिषा (हानि न देने वाली), अरुन्धती ( मर्मस्थल भरने वाली), उन्नयन्ती ( उन्नत करने वाली), मधुमती (मधुर रस वाली), प्रचेतस् ( चेतना देना वाली), मेदिनी (स्निग्धता देने वाली), उग्र ( तीव्र गन्ध वाली), विषदूषणी ( विषनाशक), बलासनाशनी (कफनाशक या कैंसर को नष्ट करने वाली)[१७] ४. फल आदि के आधार पर—पुष्पवती ( फूलों वाली), प्रसूमती ( कली या अंकुरों वाली), फलिनी (फल वाली), अफला ( बिना फलों वाली) ।[१८]

**५. ओषधियों के उत्पत्ति-स्थान आदि**—कुछ ओषधियाँ पर्वतों पर होती हैं ।[१९] अनेक ओषधियाँ समतल भूमि पर होती हैं ।[२०] कुछ ओषधियाँ नदी तालाबों आदि में होती हैं ।[२१] समुद्र के अन्दर भी ओषधियाँ होती हैं । गहरे समुद्र के अन्दर भी ओषधियाँ होती हैं । गहरे समुद्र के अन्दर से गोताखोर ऐसी ओषधियाँ निकालते हैं ।[२२] कुछ ओषधियाँ भूमि से खोदकर निकाली जाती हैं ।[२३] कुछ खनिज ओषधियाँ भूगर्भ से निकाली जाती हैं ।[२४] कुछ ओषधियाँ प्राणिज भी हैं, जो जीवों के सींग आदि से उत्पन्न होती हैं ।[२५] प्राकृतिक तत्त्व सूर्य, चन्द्र, जल, अग्नि, वायु स्वयं ओषधिरूप हैं और ये अनेक रोगों के नाशक हैं । इनके आधार पर सूर्यकिरण-चिकित्सा, जलचिकित्सा आदि का वेदों में विस्तृत वर्णन है ।

इस प्रकार ओषधियों के हम इन रूपों में प्राप्त करते हैं :—

१. प्राकृतिक ओषधियाँ—सूर्य, चन्द्र, मिट्टी, जल, अग्नि और वायु ।

२. उद्भिज्ज या औद्भिद—पृथिवी को फाड़कर निकालने वाले वनस्पति और ओषधियाँ ।

३. खनिज द्रव्य— अंजन, सुवर्ण, रजत, सीसा आदि ।

४. प्राणिज द्रव्य— मृग का सींग आदि ।

५. समुद्रज या समुद्रिय द्रव्य— शंख आदि ।

ओषधियाँ चिकित्सक का बल हैं ।[२६] वैद्य ओषधियों का संग्रह करते हैं और इनका ठीक उपयोग करते हैं ।[२७] वैद्य ओषधियों से जीवनयात्रा के लिए धन, गाय, वस्त्रादि प्राप्त करते हैं ।[२८] ओषधियों का क्रय-विक्रय भी होता है, अतः उन्हें 'अपक्रीताः' कहा गया है ।[२९] कुष्ठ ओषधि धन से खरीदी जाती थी ।[३०] वरणावती ओषधि वस्त्र, शाल या मृगचर्म के विनिमय से प्राप्त की जाती थी ।[३१]

## ६. वेदों में निर्दिष्ट वनस्पतियां

**१. अक्ष**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[१] इसको बहेड़ा या बहेरा कहते है। इसको ही विभीदक और बिभीतक कहते हैं । मूलरूप में यह रथ के धुरे या जूए के लिए प्रयुक्त हुआ है । छान्दोय उपनिषद् में अक्ष शब्द बिभीतक के लिए आया है ।[२] यह उदरशोधक और विरेचक होता है, अतः इसे विभीदक (विभेदक) कहा जाता है । इसका चूर्ण खांसी, कफरोग, स्वरभेद और गलक्षत में प्रयुक्त होता है । यह अतीसार, शोथ, अर्श, कुष्ठ और प्लीहावृद्धि में भी सेवन किया जाता है ।[३] यह त्रिफला में प्रयुक्त तीन द्रव्यों में से एक है । अन्य दो द्रव्य हैं—आमलकी (आंवला) और हरीतकी (हरड़) ।

**२. अघद्विष्टा**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[४] यह दूर्वा (दूब) है । इस सूक्त में इसके अन्य नाम दिये गये हैं:—देवजाता, शपथयोपनी, सहस्रकाण्ड । इसके प्रत्येक पर्व से प्ररोह निकलकर फैलते हैं, अतः इसे सहस्रकाण्ड कहते हैं । यह पापनाशक है, अतः अघद्विष्टा नाम पड़ा है । इसके गुण बताए हैं— पापनाशन, शापनाशन, सभी प्रकार की कुदृष्टि आदि से जन्य कुपरिणामों का नाशन ।

**३. अजशृंगी**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५] यह मेषशृंगी या मेढ़ासिंगी है । यह वीरुध् जाति की उग्र गन्ध वाली वनस्पति है । शत्रुनाशक होने के कारण इसे 'अराटकी' और शृंगाकार फल होने के कारण अजशृंगी और 'तीक्ष्णशृंगी' कहते हैं । यह वीरुधों में शक्तिशाली है । यह विभिन्न प्रकार के रोग-कीटाणुओं को नष्ट करती है ।[६]

**४. अतस, अतसी**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इन दोनों का उल्लेख मिलता है ।[७] अतस शब्द ऋग्वेद में अनेक बार आया है । इसका स्त्रीलिंग शब्द अतसी है । सायण ने इसका अर्थ काष्ठ, उन्नतवृक्ष, वृक्षसंघ और सततगामी किया है । अथर्वपरिशिष्ट में मेधावृद्धि के लिए निर्देश है कि अतसी की समिधा से हवन करे ।

**५. अतिविद्धभेषजी**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[८] यह पिप्पली (पीपर) का पर्यायवाची शब्द है । इसी सूक्त में इसे क्षिप्तभेषजी, पिप्पली, वातीकृत-भेषजी

कहा गया है । सायण ने इसे धनुर्वात, आक्षेपक आदि समस्त वातव्याधियों में खिलाने का विधान किया है । कौशिकसूत्र में मेधावृद्धि के लिए कुछ अन्य ओषधियों के साथ इसे चटाने का विधान है तथा आक्षेपक रोगों में भी इसे खिलाने का वर्णन है । अथर्वपरिशिष्ट की गणमाला में यह भैषज्यगण में पठित है । केशवपद्धति में वातविकार में पिप्पली खिलाने का विधान है ।[६] सितोपलादिचूर्ण में भी इसका प्रयोग होता है । भावप्रकाशनिघण्टु में इसे श्वास, खांसी, ज्वर, कोढ़ प्रमेह, गुल्म, बवासीर, प्लीहाशूल और आमवात को नष्ट करने वाला बताया है ।[१०] शहद के साथ पीपल खाने से यह मेदरोग और कफ को हरती है, बुद्धि और वीर्य बढ़ाती है, श्वास, खांसी, ज्वर हरती है । जीर्णज्वर और मन्दाग्नि में पीपल गुड़ के साथ (गुड़ दुगुना) खाना चाहिए । आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह खांसी, ग्रहणी, जीर्ण कफरोग, प्लीहा-यकृत् वृद्धि, आमवात, कटिवात आदि रोगों में लाभकारी है । पाषाणभेद के साथ इसका प्रलेप स्तनों पर कर देने से दूध अत्यधिक होने लगता है ।

**६. अदृष्टदहनी**—अथर्ववेदीय पैप्पलाद संहिता में इसका उल्लेख है ।[११] यह रक्षोघ्न और कृमिघ्न बताई गयी है । व्रणों, अस्थिजन्य विकारों में लाभप्रद है । यह बलवर्धक है ।

**७. अपराजिता**—अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा में इसका उल्लेख है ।[१२] अथर्वपरिशिष्ट में रक्षोघ्न, कृत्यादूषण, यशस्य और वर्चस्य ओषधियों में इसका परिगणन दिया गया है ।[१३]

**८. अपस्कम्भ**— अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[१४] सायण ने अपस्कम्भ का अर्थ क्रमुक (कृमुक) वृक्ष किया है । यह सारवान् वृक्ष-विशेष है । इसे धनुष बनता है, अतः धनुष को कार्मुक कहते हैं । इसमें अग्नि विलीन है । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यह स्वादु और रक्तवर्ण होता है ।[१५] यज्ञ में इसकी घृताक्त समिधा डाली जाती थी । कौशिकसूत्र में इसे सर्पविषघ्न बताया गया है ।[१६]

**६. अपामार्ग**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका अनेक बार उल्लेख है ।[१७] इसको हिन्दी में चिरचिटा, लटजीरा, चिंचीड़ा कहते हैं । अथर्ववेद में इसका बहुत गुणगान किया गया है । इसका अर्थ किया है—'अपामार्गः अप मार्ष्टु' 'अप मृज्महे' इसके द्वारा शरीर के सारे दोषों को दूर करते हैं, अतः यह अपामार्ग है । यजुर्वेद में इसके लाभ बताए हैं:—पापनाशन, कृत्यानाशन, रोगनाशन, कुस्वप्ननाशन ।[१८] यजुर्वेद की विभिन्न संहिताओं में अपामार्ग का चूर्ण बनाकर हवन करने का विधान है । अथर्ववेद के तीन सूक्तों में इसके ये गुण बताए हैं:—यह अभिचार कर्मों का नाशक, भस्मक (भूख अधिक लगना), प्यास अधिक लगना, इन्द्रिय-दुर्बलता, बवासीर

आदि रोगों का नाशक, विषनाशक, कृमिनाशक, रसायनरूप में बल वीर्य और ओज का वर्धक है ।

भावप्रकाश निघण्टु में इसे दस्तावर, अग्निदीपक, पाचक और इन रोगों का नाशक बताया है— वमन, कफ, मेद, वात, हृदयरोग, अफारा, बवासीर, खुजली, शूल, उदररोग और अपची ।[१६] इसके विषय में पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि अपामार्ग संकोचक, मूत्रकारक और रसायन है । यह रजस्राव, अतिसार, शोथ, जलोदर, चर्मरोग और गलगण्ड में उपयोगी है । सूखी खांसी में सेवन से कफ बाहर निकालता है । कुत्ते, सर्प आदि का विष दूर करता है । दांतदर्द में लाभप्रद है ।

**१०. अभिरोरुद**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[२०] सायण ने इसका अर्थ 'सौवर्चल' (सूर्यवेला पुष्प) किया है । वशीकरण में इसका उपयोग होता है । इसको आसुरी ओषधि कहा गया है ।[२१] इसके द्वारा इन्द्र ने देवों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया । पति को वश में करने के लिए इसका उपयोग बताया गया है । पैप्पलादसंहिता में इसे वर्चस्य (तेजोवर्धक) और प्रियंकरण (वशीकरण) कहा गया है ।[२२]

**११. अभ्रिखाता**—अथर्ववेद और पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है ।[२३] यह कुदाल से खोद कर निकाली जाती है, अतः अभ्रिखाता नाम है । यह विषनाशक कही गयी है ।

**१२. अमूला**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[२४] कुछ लोग इससे अमरबेल या कलिहारी का ग्रहण करते हैं । इसका उपयोग बाण को विषाक्त बनाने में किया जाता था ।

**१३. अरदु**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[२५] यह एक वृक्ष का वाचक है । इसकी लकड़ी से रथ का अक्ष ( धुरी) बनाया जाता था । अथर्ववेद में अरदुपरम या अरटुपर्णः पाठ है । वहाँ अरदु या अरटु नाम दिया है ।

**१४. अराटकी**—अजशृंगी का दूसरा नाम अराटकी है । (देखो सं० ३)

**१५. अरुन्धती**—अथर्ववेद में इसका दो प्रसंगों में उल्लेख हुआ है ।[२६] एक सन्दर्भ में यह व्रण आदि ठीक करने वाली ओषधि के रूप में वर्णित है और लाक्षा (राल) अर्थ प्रकट करती है । दूसरे स्थान पर यह सहस्वती, जीवला आदि पर्यायों के साथ वर्णित है ।[२७] सायण ने इसे सहदेवी माना है ।

अरुन्धती का अर्थ है—(१) अरु (व्रण) को जोड़ने या ठीक करने वाली, (२) अ+रुन्धती, जिसके सेवन से शरीर में कोई अवरोध या बाधा उत्पन्न न हो । प्रथम अर्थ में यह घाव भरती है, जोड़ों को ठीक करती है और टूटे अंगों को जोड़कर सुदृढ़ करती है । पलाश आदि से निकलने वाली लाक्षा (राल, गोंद) है । दूसरे अर्थ में यह स्निग्ध, स्तन्यजनक (दूध बढ़ाने वाली), विषनाशक, वातनाशक और रसायन

है । यह सहदेवी है । इसके पर्याय है:— जीवला, जीवन्ती, सहमाना, सहस्वती आदि ।

**१६. अरुस्राण**—अथर्ववेद और पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है ।[२८] इसे 'आस्रावभेषज' कहा गया है । आस्राव शब्द से रक्तस्राव, अतिसार, अतिमूत्र आदि और नाडीव्रण अर्थ लिए गये हैं । इनकी यह ओषधि है । अरुस्राण का अर्थ है—अरु (व्रणको) स्राण (पकाने वाली) । कुछ इसे मुञ्ज (मूंज) का पर्याय मानते हैं ।

**१७. अर्क**—यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में इसका उल्लेख मिलता है ।[२९] इसको हिन्दी में आक या मदार कहते हैं । अथर्ववेद में अर्क के मणि को वाजीकरण बताया गया है । आक की छाल को धागे में बांधकर धारण करने से यह वाजीकरण होता है ।

इसके पत्ते, फूल और दूध का प्रयोग होता है । भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार यह दस्तावर है । वात, कोढ़, खुजली, विष, व्रण, गुल्म, बवासीर, कफ, उदररोग और मलकृमि का नाशक है । अर्कपत्र का लेप दर्द और सूजन दूर करता है । अर्कपुष्प बलकारक एवं पाचक है । यह खांसी में लाभकर है। इसका दूध अतिरेचक है और योनि में प्रयोग करने से गर्भस्राव हो जाता है । भगन्दर रोग में भी इसके दूध का प्रयोग होता है ।[३०]

**१८. अर्जुन**—यजुर्वेद, काठकसंहिता और अथर्ववेद में इसका उल्लेख मिलता है ।[३१] काठक संहिता में इसके दो भेद दिए हैं—लोहिततूल और बभ्रुतूल अर्थात् लाल और भूरी मंजरी वाला । भावप्रकाशनिघण्टु के अनुसार इसकी छाल का क्वाथ हृदयरोगों तथा अश्मरी (पथरी) में सेव्य है । अस्थिभंग और रक्तस्राव में अर्जुन की छाल को पीस कर लेप करना चाहिए । यह रुधिर-विकार, क्षत, क्षय, विष, प्रमेह, व्रण, कफ और पित्त को नष्ट करता है ।[३२]

**१९. अलसाला**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[३३] यह एक प्रकार की सस्यमञ्जरी (बाल) है । कौशिकसूत्र में इसे आल रोग (एक प्रकार की गोधूम-व्याधि, गेहूँ का एक रोग) की ओषधि कहा गया है ।[३४]

**२०. अलाबू**—यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता और अथर्ववेद में इसका उल्लेख मिलता है ।[३५] कहीं अलाबु और अलाबुक शब्द भी मिलते हैं । इसका विशेषरूप से सर्पविष में एवं सामान्यता विष के नाशन में प्रयोग होता है । कौशिक सूत्र में इसका सर्पविषनाशन में प्रयोग है । यह लौकी, लम्बा कद्दू और मीठी तुम्बी के लिए है । भावप्रकाश निघण्टु में इसे पित्त एवं कफ-नाशक, वीर्यवर्धक और धातु को पुष्ट करने वाला बताया है ।[३६]

**२१. अवक, अवका**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[३७] यह

शैवाल (सेवार, काई) का प्राचीन नाम है । यह जल में उत्पन्न होने के कारण शीतल और अग्निशामक है । अवका का भक्षण करने वाले गन्धर्व-पिशाचों को 'अवकाद' कहा गया है । यह शीतल है और दाह, तृषा, पित्त, रुधिरविकार तथा पित्तज्वर को हरने वाली है ।[३८]

**२२. अवघ्नती**—ऋग्वेद में इसका उल्लेख है ।[३९] यह ओषधि अपनी गन्ध से अनेक विषों को नष्ट करती है और काटने वाले कीड़ों को मारती है ।

**२३. अशोक**—अथर्वपरिशिष्ट में अग्नि के उपमान के रूप में अशोक का नाम आया है ।[४०] ऐसा भी निर्देश है कि अशोक के फूलों को मधु और दूध के साथ मिलाकर हवन करने से गन्धर्वपद प्राप्त होता है ।

**२४. अश्वत्थ**—ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख मिलता है ।[४१] यह पीपल है । इसको देवों का निवासस्थल कहा गया है । यह यज्ञिय वृक्ष है । इससे यज्ञ के पात्र बनते हैं । अथर्ववेद में अश्वत्थ का शत्रुनाशन के लिए प्रयोग हुआ है ।[४२] ऐतरेय ब्राह्मण में इसे वनस्पतियों का सम्राट् कहा गया है ।[४३] उन्माद रोग में इसके इन्धन से हवन करते हैं । यज्ञिय वृक्ष ये कहे गये हैं:—शमी, पलाश, खदिर, विकंकत, अश्वत्थ, काश्मर्य, उदुम्बर और बिल्व ।[४४] इसके फल, बीज, पत्ते ओषधि के रूप में प्रयुक्त होते हैं । भावप्रकाश निघण्टु में इसे रूपशोधक, योनिशोधक, पित्त कफ व्रण और रक्तविकार को नष्ट करने वाला कहा गया है ।[४५] इसका दूध बहुत शीघ्र रक्तरोधक, वेदना-शामक और शोथहर है । इसके कोमल पत्रों का लेप व्रण में हितकारक है । पुराने पीपल पर लगी लाख रक्तरोधक, रंजक और शीतल होती है ।

**२५. अश्ववार, अश्ववाल**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[४६] इसका अर्थ काश (सरकंडा) किया गया है ।

**२६. अश्वावती**—ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[४७] यह शक्तिवर्धक और श्रीवर्धक रसायन है । इसका अरिष्टनाशन और सुरक्षा के लिए प्रयोग होता है ।

**२७. असिक्नी**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[४८] सायण ने इसका अर्थ नीली ओषधि किया है । यह श्वेतकुष्ठ और शरीर पर पड़े धब्बों की ओषधि है ।

**२८. अस्तृत**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[४९] इसके मणि (तावीज) को अस्तृत मणि कहते हैं । इसके लाभ बताए हैं—शक्तिवृद्धि, ओज, बल और दीर्घायु की प्राप्ति, रक्षोनाशन और शत्रुनाशन ।

**२९. आघाट**—अथर्ववेद में अर्जुन वृक्ष के साथ इसका उल्लेख है ।[५०] यह संभवतः अपामार्ग का बोधक है ।

**३०. आञ्जन**—ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५१] यह वृक्ष और खनिज दोनों है । यह त्रिककुद् पर्वत पर तथा यमुना प्रदेश में होता था, अतः इसे त्रैककुद और यामुन कहते हैं । अथर्ववेद में इसे पीलिया, धातुरोग, ज्वर, कफरोग, हृदयरोग, अंगभेद और छूतरोग में लाभप्रद बताया है ।[५२] पैप्पलाद संहिता में इसे नेत्रज्योतिवर्धक रक्षोनाशक, दुःस्वप्ननाशक और क्षेत्रियरोगनाशक कहा गया है ।[५३] ऋग्वेद के 'आञ्जनगन्धिं सुरभिम्' से ज्ञात होता है कि अञ्जन का वृक्ष सुगन्धित होता है और इसकी सुगन्ध पूरे वन को सुगन्धित करती है ।

**३१. आण्डीक**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५४] यह अण्डाकृति कंन्द से उत्पन्न होने वाली जलज वनस्पति है । यह कुमुद है । मन्त्र में आण्डीक कुमुद का विशेषण है ।

**३२. आम्ब**—यजुर्वेद की संहिताओं में इसका उल्लेख है । तैत्तिरीय और काठक संहिता में आम्ब शब्द दिया है और मैत्रायणी में नाम्ब शब्द है ।[५५] यह एक नीवार आदि के तुल्य जंगली चावल है । सायण ने इसका अर्थ धान्यविशेष किया है । यज्ञ में डालने के लिए इसका चरु (कड़ाही में भुना आटा) बनता था ।

**३३. आयती**—ऋग्वेद में इसका उल्लेख है ।[५६] यह एक विषनाशक ओषधि है । यह अवघ्नती (सं० २२) का पर्याय है ।

**३४. आल, आलक**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५७] ऋग्वेद में आलाक्ता (आल+अक्ता) का विष में बुझा हुआ अर्थ है । अथर्ववेद में भी 'अपेहि निराल' में आल या विष को दूर करना अर्थ है । दोनों स्थानों पर आल विष अर्थ में है । कौशिकसूत्र में दारिल ने 'आल' का अर्थ गोधूमव्याधि (गेहूँ की एक बीमारी) किया है और केशव ने यव-गोधूमवल्ली (जौ-गेहूँ की मंजरी) अर्थ किया है ।

**३५. आवयु**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५८] इसका अर्थ सर्षप (सरसों) है । इसके बीजों का तेल और पत्तों का साग ओषधि के रूप में प्रयुक्त होता है । सरसों के तेल में भुना सर्षपपत्र का साग चक्षुरोगग्रस्त पुरुष को खिलाने का विधान है । इन्हीं रोगों में सरसों के तेल में भिगोई हुई सर्पषकाण्डमणि बांधने का विधान है ।

**३६. आसुरी**—अथर्ववेद में इस ओषधि का उल्लेख है ।[५९] इस सूक्त के ४ मंत्रों में इसे श्वेतकुष्ठ की ओषधि बताया गया है ।[६०] अथर्वपरिशिष्ट के आसुरीकल्प (३५) में यह स्पष्टरूप से राजिका (राई) के लिए प्रयुक्त हुआ है । भावप्रकाशनिघण्टु में राजिका (राई) का पर्याय आसुरी शब्द है ।[६१] इसमें इसे खाज-खुजली, कुष्ठ का नाशक बताया है ।

**३७. आस्रावभेषज**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[६२] यह दर्भ (कुश) का पर्याय है । पैप्पलादसंहिता में इसे रोगस्थान, असृक्स्थान और आस्रावभेषज कहा है ।[६३] यह रक्तरोधक है । यह घाव, चोट आदि पर बांधने से खून बहना रोकता है । भावप्रकाशनिघण्टु में कुश (दर्भ) को त्रिदोषनाशक, शीतल, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, मूत्राशय के रोग, प्रदर और रुधिरविकार का नाशक बताया गया है ।[६४]

**३८. इक्षु**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख मिलता है ।[६५] श्रौतसूत्रों आदि में इक्षुकाण्ड, इक्षुपर्ण, इक्षुशलाका (पुष्प) का उल्लेख है । पकी ईख रक्तपित्त तथा क्षय नाशक, वीर्यवर्धक, बलदायक, कफकारक, मूत्रवर्धक और शीतल है ।[६६]

**३९. इट**—यह वर्षा ऋतु का पौधा है । अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[६७] अस्थिभंग आदि में इसके क्वाथ से सेंकने का विधान है ।

**४०. इन्द्राणी**—पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है । यह विषघ्न ओषधि है । यह इन्द्रायण या इनारुन है ।[६८]

**४१. इषीका**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[६९] शर आदि से निकाली जाने वाली सींक को इषीका कहते है। यह एक वनस्पति का भी नाम है ।

**४२. उग्रौषधि**—अथर्ववेद में यह दर्भ का पर्याय है ।[७०] इसका मणिधारण आयुष्य बताया गया है ।

**४३. उच्छुष्मा**—पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है ।[७१] टीकाकारों ने इसका अर्थ 'कपिकच्छू' किया है । ऋग्वेद (१०.९७.८) में इसका अर्थ सायण ने अधिक शक्तिशाली, बलदायक किया है ।

**४४. उत्तानपर्णा** —ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७२] यह पाठा या पाढ़ा लता है । सुभगा, देवजूता, सहस्वती, उत्तानपर्णा ये पाठा के पर्याय हैं । इसे वीर्यवर्धक, विषघ्न, रक्षोनाशक, मेधावर्धक और गर्भस्थापक कहा गया है । यह सपत्नीबाधन, वशीकरण और प्रतिवादी पर विजय के लिए प्रयुक्त होती है । भावप्रकाश में कहा है कि यह वात, कफ, ज्वर, शूल, वमन, कोढ़, अतिसार, हृदयरोग, दाह, खुजली, विष, श्वास, कृमि, गुल्म और विषैला व्रण इन सबको दूर करती है ।[७३]

**४५. उदुम्बर**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७४] यह गूलर है । इसे ऊर्जा का प्रतीक माना गया है, अतः उदुम्बर को ऊर्जा कहा है । यह यज्ञिय वृक्ष है । इसकी समिधा आदि बनती है । बौधायन श्रौतसूत्र (१४.१८) में उन्माद रोग में इसके होम का विधान है । अथर्ववेद के १४ मंत्रों में औदुम्बरमणि का बहुत माहात्म्य वर्णित है ।[७५] इसको पुष्टिकारक, धन-धान्यदायक पशुओं के लिए बलदायक और दुग्धवर्धक कहा गया है । भावप्रकाश में इसे व्रणशोधक, पित्त

कफ और रक्तविकार का शामक कहा है । यह वायुनाशक और पाचक है । रक्तप्रदर, रक्तपित्त और रक्तवमन में हितकर है ।[७६]

**४६. उदोजस**—ऋग् यजुः और अथर्व तीनों वेदों में इसका उल्लेख है ।[७७] यह अश्वावती का पर्याय है । यह ओजोवर्धक और शक्तिवर्धक रसायन है ।

**४७. उपवाक, उपवाका**—मैत्रायणी आदि संहिताओं में इसका उल्लेख है ।[७८] मंत्र में 'भेषजम्' से स्पष्ट है कि इसका ओषधि के रूप में उपयोग होता है । यह ग्राम्य और आरण्य (जंगली) दोनों प्रकार का होता है । टीकाकारों ने इसका अर्थ इन्द्रयव (इन्द्र जौ) लिया है । इसके ही कुटजबीज, कुटज आदि नाम हैं । भावप्रकाश के अनुसार यह त्रिदोषनाशक, ज्वर, अतिसार, तथा कुष्ठ-विकारों को हरने वाला है। यह अग्निदीपक, बवासीर के मस्सों, रुधिर-विकार, वात, कफ और शूल को जीतने वाला है ।

पाश्चात्यों के मतानुसार सफेद कुटज की छाल रक्तातिसार (खूनी पेचिश) की अत्युत्तम ओषधि है । सफेद कुटज के बीज और छाल विषमज्वर हरने में सिनकोना की तरह हैं । ज्वर, ग्रहणी (दस्त), रक्तातिसार (खूनी पेचिश), रक्तपित्त, पेट के कीड़े, दमा, गुर्दों में दर्द में हितकर है । हैजा में कै रोकने के लिए छाल और बीज दोनों का प्रयोग होता है । प्रसव के बाद योनि (स्त्रीजननेन्द्रिय) को दृढ़ करने के लिए इसका प्रयोग होता है । काले कुटज के पत्ते को चबाने से दांतदर्द ठीक हो जाता है ।[७९]

**४८. उर्वारुक**—ऋग्, यजुः और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[८०] यह ककड़ी और खरबूजा के लिए है । शिवस्तुति वाले मंत्रों में मृत्यु के बन्धन से मुक्ति के लिए इसकी उपमा दी गयी है । भावप्रकाश में कच्ची ककड़ी को शीतल, मधुर, रुचिकारक और पित्तनाशक बताया है । खरबूजे के गुण हैं—यह मूत्रकारक, बलदायक, कोष्ठशोधक, स्वादिष्ट, शीतल, वीर्यवर्धक, वात तथा पित्तनाशक है।[८१]

**४९. उलप**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[८२] उलप शब्द तृणविशेष के लिए है । इसे वीरण कहते हैं ।

**५०. ऊर्जयन्ती**—ऋग्वेद और पैप्पलादसंहिता में अश्वावती के साथ इसका उल्लेख है ।[८३] यह ओजस्विता देने वाली कोई रसायन है ।

**५१. ऋतजात**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[१] यह मधुला का विशेषण है । मधुला विषनाशक ओषधि है । ऋतजात को मधुरता देने वाली ओषधि कहा गया है ।

**५२. ऋतावरी**—अथर्ववेद में ऋतजात के साथ इसका उल्लेख है ।[२] यह

मधुला का विशेषण है। एक स्थान पर ऋतावरी का शमी वृक्ष अर्थ है।[३] मन्त्र में इसे बड़े पत्तों वाला और वर्षा में बढ़ने वाला कहा है। यह बालों के लिए हितकारी है।

**५३. औक्षगन्धि**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[४] गूगल आदि के साथ इसका उल्लेख है। इसकी लकड़ी आदि सुगन्धित होती है और इसका हवन में उपयोग होता है। यह कृमिनाशक है।

**५४. कंकदन्ती**—पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है।[५] यह संभवतः कंकतिका (अतिबला) है। यह विषनाशक ओषधि है।

**५५. कनक्नक**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[६] यह सर्पविषनाशक ओषधि है। यह संभवतः धतूरे का वाचक है।

**५६. कब्रू**—पैप्पलादसंहिता में इसका वर्णन है।[७] इसके फल काले होते हैं। यह बलास (कफरोग) और विसल्पक रोगों की ओषधि है।

**५७. करीर**—तैत्तिरीय संहिता आदि में इसका उल्लेख है।[८] वर्णन है कि यह सोम्यवृक्ष होता है। इसकी आहुति देने से वर्षा शीघ्र होती है। यह वर्षा ऋतु में होता है। अवर्षण रोकने के लिए कारीरी नामक इष्टि का विधान है। यज्ञों में इसके सत्तू का प्रयोग होता है। कौशिकसूत्र में करीर के मूल और काण्ड का कृमिरोग में प्रयोग बताया गया है।

इसे करीर या करील कहते हैं। इसके फल, फूल और बीज का प्रयोग होता है। यह दस्तावर है और बवासीर, कफ, विष, सूजन और व्रण को नष्ट करता है। इसकी जड़ और शाखा कृमिनाशक हैं।[९] यह ऊसर भूमि में अधिक होता है। इसमें कांटे होते हैं।

**५८. कर्कन्धु**—यजुर्वेद में इसका उल्लेख है।[१०] यह बेर है। इसका चूर्ण सत्तू बनाकर यज्ञ में प्रयुक्त होता है। यह दस्तावर, वीर्यवर्धक और पुष्टिकारक है। यह पित्त, दाह, रुधिरविकार, क्षय तथा तृषा को नष्ट करता है।[११]

**५९. कल्मलि**—अथर्ववेद में इसकी मणि का उल्लेख है।[१२] कल्मलि का अर्थ किया गया है जो मल को दूर करे।

**६०. काकम्बीर**—ऋग्वेद में इसे एक वृक्ष बताया गया है।[१३] इसके फल कौओं को पसन्द आते हैं। इस मन्त्र में एक महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि वृक्ष वातावरण को शुद्ध करते हैं और दूषित वायु को नष्ट करते हैं।

**६१. कान्दाविष**—अथर्ववेद में इसका विषनाशक ओषधियों में उल्लेख है।[१४] यह कोई विषैली कन्द है, जो पहाड़ों पर होती है। विषकित्सा में इसका उपयोग

बताया गया है । अथर्ववेद कांड ४ में इसे विषनाशक ओषधि बताया है । इसका सेवन कराकर बधिया बनाया जाता है ।[१५]

**६२. काष्मर्य**—यजुर्वेदीय संहिताओं में इसका उल्लेख मिलता है ।[१६] यह रक्षोनाशक वृक्ष है ।यज्ञ में इसकी परिधि बनायी जाती थी, जिससे किसी दूषित तत्त्व का यज्ञ में संक्रमण न हो सके । यज्ञिय वृक्षों में यह प्रमुख है । इसकी स्रुवा आदि बनती थी ।

**६३. किंशुक**—ऋग्वेद में विवाह प्रकरण में इसका उल्लेख है ।[१७] यह पलाश (ढाक) है । इसके लाल फूल होते हैं । विवाह का रथ सजाने में इसके फूलों का उपयोग होता था ।

पलाश का पत्र रसायन है । यह अतिसार (पेचिश), रक्तप्रदर, कृमिशूल एवं शूलरोगों में प्रयुक्त होता है । पलाश का फूल मूत्रकारक है । बस्तिदेश पर पुष्पों के दलों को बिछाकर बांधने से मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात दूर होते है ।[१८]

**६४. किलासनाशन, किलासभेषज**—अथर्ववेद में ये दोनों श्वेतकुष्ठनाशक नीली आदि ओषधियां है ।[१९]

**६५. कुमुद**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[२०] यह जल में होने वाला कमल जैसा सफेद फूल है ।

**६६. कुवल**—यह आंवले जैसा बड़ा बेर है ।[२१] इसके गुण आदि कर्कन्धु के तुल्य हैं । (देखें कर्कन्धु)

**६७. कुश**—मैत्रायणी संहिता में इसका उल्लेख है ।[२२] यह कुश या दर्भ है । यह जल के तुल्य पवित्र है । इससे कुशासन बनते हैं । यह अत्यन्त पवित्र माना जाता है और पूजा आदि में प्रयुक्त होता है । यह मेधाजनक माना गया है । यह त्रिदोषनाशक एवं शीतल है और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, तृषा, वस्तिरोग, प्रदर और रुधिर-विकार का नाशक है ।[२३]

**६८. कुशर**—ऋग्वेद में शर और दर्भ के साथ इसका उल्लेख है ।[२४] सायण ने इसको छिद्र वाला सरकंडा बताया है । इसको विषनाशक कहा गया है ।

**६९. कुष्ठ**—अथर्ववेद में कुष्ठ (कूठ) ओषधि का बहुत महत्त्व वर्णित है ।[२५] कहा गया है कि हिमालय के ऊपर यह ओषधि होती है । नद्यमार, नद्यारिष और नद्याय इसके पर्याय हैं । यह सोम लता के पास ही होता है । इसे विश्वभेषज अर्थात् सब रोगों की चिकित्सा कहा है । यह विशेषरूप से ज्वर-नाशक और रक्षोनाशक (कृमिनाशक) है । वातविकार, यक्ष्मा, कासश्वास, नेत्ररोग, शिरोरोग, आम (आंव) में प्रयुक्त होता है । यह रसायन और वाजीकरण है । पैप्पलादसंहिता

में यह शूलहर और विषघ्न बताया गया है ।[२६] यह सुगन्धित है और सर्वरोग-ओषधि में पठित है । अथर्वपरिशिष्ट में धूप में भी इसका प्रयोग बताया है ।[२७] कौशिकसूत्र में इसे गर्भदृंहण (गर्भ को स्थिर करने वाला) कहा है ।[२८] केशवपद्धति में तगर आदि के साथ घी में मिलाकर वशीकरण के लिए इसका लेप विहित है ।[२९] केशवपद्धति में ही कुष्ठचूर्ण को नवनीत में मिलाकर लेप करने से शिरोरोग, राजयक्ष्मा, कोढ़ और सर्वांगवेदना में लाभ बताया है ।[३०]

भावप्रकाश के अनुसार कूठ स्वादिष्ट, वीर्यवर्धक, वातरक्त, विसर्प, खांसी, कुष्ठरोग, वात और कफ को हरने वाला है ।[३१] प्रो० खोरी (R. N. Khory) के अनुसार यह कफ, श्वास, विसूचिका और अजीर्ण में व्यवहृत होता है । पुराने चर्मरोगों में उपयोगी है । गुलाब जल में मिश्रित कूठ का लेप शोथयुक्त हाथ, पैरों और उदरशोथ में तथा शिरोरोग में प्रयुक्त होता है । कूठ का मलहम क्षत (घाव) के लिए हितकर है ।[३२]

**७०. कूदी**—अथर्ववेद में इसका वर्णन है ।[३३] यह वशीकरण में निर्दिष्ट है । इसको कुदी और कुटी भी कहते हैं । इसे बदरी (बेर) मानते हैं ।

**७१. कृष्णल**—मैत्रायणी संहिता आदि में इसका उल्लेख है ।[३४] यह गुंजा या चोंटली है । इसका सुवर्ण आदि तोलने में प्रयोग होता है । यह आयु और तेज की वृद्धि करता है ।

**७२. केशदृंहणी, केशवर्धनी**—अथर्ववेद में ये दोनों पर्यायवाची के रूप में उल्लिखित हैं ।[३५] यह बालों को बढ़ाने वाली और बालों की जड़ को मजबूत करने वाली ओषधि है । यह नितत्नी ओषधि है ।[३६] पैप्पलाद संहिता में केशवर्धनी का केश बढ़ाने के अतिरिक्त पलित (बाल सफेद होना), शीर्षरोग, खालित्य (गंजापन), जायान्य और उदररोगों में भी इसका उपयोग बताया है ।[३७]

**७३. क्याम्बू, कियाम्बु**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[३८] यह जलीय पौधा है । यह शीतवीर्य और दाहशामक है । यह शीतलता रखने के लिए लगाया जाता है ।

**७४. क्रकोष्मा**—पैप्पलाद संहिता में इसका उल्लेख है ।[३९] यह विषनाशक ओषधि है ।

**७५. क्रमुक, कृमुक**—मैत्रायणी आदि संहिताओं में इसका उल्लेख है ।[४०] यह क्रमुक और कृमुक दोनों लिखा जाता है । यह तूतड़ी वृक्ष है । इसकी लकड़ी से धनुष बनते थे, अतः धनुष को कार्मुक कहते हैं । कौशिकसूत्र में इसे सर्पविषनाशक बताया गया है ।[४१]

**७६. क्लीबकरणी**—अथर्ववेद में बैल आदि पशुओं को बधिया बनाने की ओषधि का वर्णन है ।[४२] इसका नाम नहीं दिया है ।

**७७. क्षिप्तभेषजी**—अथर्ववेद में पिप्पली (पीपर) को विक्षेप या उन्माद रोग की चिकित्सा बताया है ।[४३] भावप्रकाश में इसे भूख बढ़ाने वाली, वीर्यवर्धक, हलकी रेचक, खांसी, ज्वर, कोढ़, प्रमेह, गठिया, बवासीर, प्लीहाशूल और आमवात को नष्ट करने वाला बताया है ।[४४]

**७८. क्षुम्प**—यह बरसात में होने वाला कुकुरमुत्ता है । कृपण को क्षुम्प की तरह नष्ट करने का उल्लेख है ।[४५]

**७६. क्षेत्रियनाशनी**—अथर्ववेद में इस वीरुत् (लता) को आनुवंशिक रोगों को दूर करने वाला बताया है ।[४६] इस सूक्त में लता का नाम स्पष्टरूप में नहीं दिया है । इसमें जौ और तिल की मंजरी का ओषधि के रूप में प्रयोग लिखा है । पैप्पलाद संहिता में आनुवंशिक रोगों के अतिरिक्त इसे हृदयशूलहर, रक्षोघ्न, केशवर्धक तथा पीलिया और शीर्षरोगों में लाभप्रद बताया है ।[४७]

**८०. खदिर**—ऋग्, यजुः और अथर्व तीनों वेदों में खदिर का उल्लेख है ।[४८] यह खैर वृक्ष है । इसका सारभाग अस्थिवत् दृढ़ होता है । यह ओजवर्धक है । अथर्ववेद में इसका सारभाग मणि के तुल्य तेजस्विता के लिए बांधने का निर्देश है ।[४६] पैप्पलादसंहिता में इसका प्रयोग कुष्ठ और विष के नाशन में है ।[५०]

भावप्रकाश निघण्टु में इसके गुण बताए हैं—यह दांतों के लिए हितकारी है । खुजली, खांसी, कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, श्वेतकुष्ठ, सूजन, आम, पित्त, रुधिरविकार, पांडुरोग, कोढ़ और कफ को नष्ट करता है ।[५१]

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि खैर बलप्रद और रसायन है । बच्चों के आमातिसार (आंव आना), रक्तातिसार (खूनी पेचिश), विषमज्वर (फ्लू) और स्नायुदुर्बलता में सेव्य है । मसूड़ों में दर्द, प्रदर और रक्तस्राव में हितकर है ।[५२]

**८१. खर्जूर**—तैत्तिरीय, मैत्रायणी और काठक संहिता में इसका उल्लेख है ।[५३] यह खजूर है । इसे फलों में उत्तम माना है । वैदिक संहिताओं में इसे 'शीर्षाणि' कहकर शीर्षवत् माना है । यज्ञों में इसके सत्तू का प्रयोग विहित है । यह वीर्यवर्धक, बलदायक, वातपित्तनाशक, कफ, ज्वर, अतिसार, खांसी, श्वासरोग,दमा और मूर्च्छा के लिए हितकर है ।[५४]

**८२. खल्व**—यजुः और अथर्व वेदों में इसका उल्लेख है ।[५५] यह चना है । उबाले हुए चने पित्त और कफ को नष्ट करते हैं । भिगोये हुए चने हल्के और कफ-पित्त के नाशक हैं ।[५६]

**८३. गर्मुत्**—तैत्तिरीय संहिता आदि में इसका उल्लेख है ।[५७] यह जंगली मूंग (Wild bean) है । यज्ञ में इसका चरु बनता था । मूंग कफ और पित्तनाशक, ज्वरनाशक और नेत्रों के लिए हितकारी है ।[५८]

**८४. गवीधुक, गवीधुका, गवेधुका, गवेधुक**—तैत्तिरीय संहिता आदि में इसका उल्लेख है ।[५९] यह जंगली गेहूँ है । इसका सत्तू बनता था । यह वीर्यवर्धक, बलदायक, पित्तनाशक और आयुवर्धक है ।[६०]

**८५. गुल्गुलु, गुग्गुलु**—तैत्तिरीय संहिता, अथर्ववेद आदि में इसका उल्लेख है ।[६१] यह गूगल है । इसका यज्ञ में तथा धूप के लिए प्रयोग होता था । अथर्ववेद का कथन है कि इसकी सुगन्ध जहाँतक फैलती है, वहाँ तक यक्ष्मा आदि रोग नहीं होते हैं । यह रक्षोघ्न (कृमिनाशक) है । यह बलवर्धक रसायन, भूख बढ़ाने वाला और सूजन, बवासीर, गंडमाला, कृमिरोग, प्रमेह, पथरी और कुष्ठ को नष्ट करता है ।[६२] श्री वाट के अनुसार यह कुष्ठ, वात, फिरंगरोग में लाभप्रद है । वातव्याधि, गलगण्ड और चर्मरोगों में व्यवहृत होता है । पुराने घावों में बहुत ही हितकर है ।

**८६. गोधूम**—यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता, पैप्पलादसंहिता आदि में इसका उल्लेख है ।[६३] यह गेहूँ है । यज्ञ-कार्यों में इसके चूर्ण और सत्तू का प्रयोग होता था । इसके अपूप (पूआ) आदि पकवान बनते थे ।यह वातपित्त हरने वाला, वीर्यवर्धक, बलदायक, दस्तावर, पुष्टिकारक और आयुवर्धक है ।[६४]

**८७. घृताची**—इसका ऋग्वेद, तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में उल्लेख है ।[६५] ऋग्वेद में इसका घृतपूर्ण अर्थ है । यजुर्वेद में अप्सरा का नाम है । अथर्ववेद में यह लाक्षा का पर्याय है और सर्पविषनाशक ओषधि है । राजनिघण्टु (१.२) में कन्या और घृताची नाम बड़ी इलायची के हैं ।

**८८. चणक**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में चने के लिए खल्व शब्द है । केशवपद्धति में अरुषी, उदर और गण्डुलक (कृमिरोग) में कृष्ण चणक (काले चने) के होम का विधान है ।[६६]

**८९. चिति, चित्ति**—पैप्पलादसंहिता में उल्लेख है । यह दुःस्वप्ननाशक कहा गया है ।[६७] कौशिकसूत्र में यह शान्त वृक्षों में परिगणित है ।

**९०. चीपुद्रु**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[६८] यह चीड़ का वृक्ष है । पाठान्तर 'शीपुद्रु' है । यह विद्रधि, बलास, रक्तपित्त, विसर्प और हृदयरोग की ओषधि है ।

**९१. च्युकाकणी**—पैप्पलादसंहिता में उल्लेख है ।[६९] यह रक्षोघ्न, विषघ्न और कृमिघ्न ओषधि बतायी गयी है ।

**६२. जंगिड**—अथर्ववेद में इसका विस्तृत उल्लेख है ।[७०] इसके मणिधारण का विधान है । इसको विश्वभेषज (सब रोगों की चिकित्सा) कहा गया है । इसको आयुष्य, कृत्यानाशक और रक्षोघ्न कहा गया है । यह आशरीक, विशरीक, बलास, पृष्ट्यामय (पसली का दर्द), सालभर रहने वाले ज्वर की चिकित्सा है । विष्कम्भदूषण, सहस्रवीर्य, कृत्यादूषि, विश्वभेषज, सहस्वान् इसके पर्याय हैं । यह दो प्रकार का बताया गया है—आरण्य (जंगली) और कृष्य (कृषिजन्य) । दारिल और प्रो० कैलण्ड जंगिड का अर्थ अर्जुन वृक्ष लेते हैं । (देखो अर्जुन शब्द सं० १८)

**६३. जम्बीर, जाम्बीर, जाम्बील, जाम्बिल**—जम्बीर के ये नाम यजुर्वेद, मैत्रायणी, काठक आदि संहिताओं में मिलते हैं ।[७१] जम्बीर से जंगल को प्रसन्न रखने की कामना की गयी है । यह जंबीरी नीबू है । भावप्रकाशनिघण्टु में इसको कब्ज से पेट दर्द, खांसी, प्यास, आमसंबन्धी दोष, हृदय की पीड़ा, भूख न लगना आदि रोगों का नाशक बताया गया है । यह खट्टा है और वमन (कै) को रोकता है । कृमिनाशक है ।[७२]

**६४. जर्तिल**—तैत्तिरीय संहिता आदि में इसका उल्लेख है ।[७३] यह जंगली तिल है । इसका यवागू (लपसी) बनता था ।

**६५.जलाषभेषज**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७४] यह कोई जलीय ओषधि है । रुद्र को जलाषभेषज कहा गया है, क्योंकि वह जल से सभी रोगों को दूर करते हैं । जलाषभेषज जलचिकित्सा का पर्याय है । टब बाथ आदि जलचिकित्सा के अन्तर्गत आते हैं । निरुक्त में जल और जलाष शब्द को पर्याय माना है । रुद्र जलचिकित्सा के प्रवर्तक हैं ।

**६६. जीवन्ती**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७५] सायण ने इसका अर्थ दिया है कि यह सदा हरी-भरी सजीव रहती है, अतः इसे जीवन्ती कहते हैं । यह पाटा या पाठा ओषधि है । केशवपद्धति में केशवृद्धि के लिए इसके फल का मणिबन्धन निर्दिष्ट है ।[७६]

**६७. जीवला**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७७] जीवला का अर्थ है—जीवनी शक्ति देने वाली । सायण ने कहीं इसका सहदेवी और कहीं पाठा ओषधि अर्थ दिया है ।

**६८. तलाशा, तलाश**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[७८] यह बहुत ऊँचा पेड़ होता है, अतः उन्नति के लिए इसकी उपमा दी गयी है । इसका मणिबन्ध भी विहित है ।[७९] यह तालीश वृक्ष है । इसे तालीसपत्र भी कहते हैं । यह अरुचि, आम, अग्निमान्द्य और क्षयरोगों का नाशक है ।[८०] यह सदा हरा रहता है । सिन्धु नदी

के तीरस्थ प्रदेशों से लेकर भूटान तक पाया जाता है । प्रो० खोरी के अनुसार यह दमा, रक्तपित्त, मृगी एवं अन्य आक्षेपमूलक पीड़ाओं में प्रयुक्त होता है ।

**९९. तस्तुव**—अथर्ववेद में यह सर्पविषनाशक ओषधि है ।[८१] यह संभवतः कटुतुम्बी (कड़वी तोरई या लौकी) है ।

**१००. ताजद्भङ्ग**—अथर्ववेद में यह आसानी से टूटने वाला वृक्ष है ।[८२] सायण ने इसका अर्थ एरण्ड लिया है । यह बहुत आसानी टूट जाता है ।

**१०१. ताबुव**—अथर्ववेद में यह सर्पविषनाशक ओषधि है ।[१] यह संभवतः कटुतुम्बी (कड़वी तोरई या कड़वी लौकी) है ।

**१०२. तार्ष्टाघ**—अथर्ववेद में रक्षोनाशन (कृमिनाशन) में तृष्टाघ (सरसों की डंडी) की बनी समिधाओं से यज्ञ का विधान है ।[२]

**१०३. तिल**—यजुर्वेद की विभिन्न संहिताओं में और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[३] यह ग्राम्य और जंगली दोनों प्रकार का होता है । जंगली तिल को 'जर्तिल' कहते हैं । तिल का तेल निकाला जाता है । तिल के डंठल को 'तिलपिञ्ज' कहते हैं । अथर्वपरिशिष्ट में इसके तीन प्रकार बताए हैं—श्वेत, कृष्ण, गोमूत्रवर्ण और इनके गुण अपरिमित बताए हैं ।[४] केशवृद्धिकरण, केशदृढीकरण और केशजनन के लिए तिल माष (उड़द) आदि कृष्ण अन्न के भक्षण का विधान है ।[५] तिल के लिए 'तिर' शब्द भी मिलता है ।[६]

भावप्रकाशनिघण्टु में तिल तीन प्रकार का बताया गया है—सफेद, काला, लाल । काला तिल सर्वोत्तम और वीर्यवर्धक है , सफेद मध्यम और लाल निकृष्ट । तिल बलदायक, बालों के लिए हितकर, त्वचा के लिए हितकर, दुग्धवर्धक, व्रणरोग में हितकर, दांतों को उत्तम करने वाला, मूत्र को कम करने वाला, वातनाशक, अग्नि को दीप्त करने वाला और बुद्धिवर्धक है ।[७]

**१०४. तिल्वक**—मैत्रायणी संहिता में इसका उल्लेख है ।[८] इसकी लकड़ी वज्र के तुल्य दृढ़ एवं कठोर होती है । यज्ञ में इसका यूप बनता था । यह तिनिश वृक्ष है । इसके पेड़ बड़े होते हैं और आकृति में बबूर से मिलते-जुलते हैं । यह कफ-पित्त, रुधिर-विकार, कोढ़, प्रमेह, श्वेतकुष्ठ, दाह, व्रण, पाण्डु रोग और कृमि का नाशक है ।[९]

**१०५. तीक्ष्णशृंगी**—अथर्ववेद में यह अजशृंगी का पर्याय है ।[१०] इसके फल उग्र गन्ध वाले और सींग की तरह होते हैं । यह जल में होने वाली ओषधि है । यह संभवतः शृंगाटक (सिंघाड़ा) का बोधक है ।

**१०६ तृष्टा, तृष्टिका**—अथर्ववेद और पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख

है ।[११] विषा, विषातकी, घुणजम्भनी, आखुजम्भनी इसके पर्याय है । सायण ने इसे बाणापर्णी और दारिल ने शरपुंखा कहा है । यह चूहा और घुन मारने की दवा है । यह विषैली दवा है और वर्जित है। विषातकी से विषैली और परिवृक्ता से त्याज्य ओषधि ज्ञात होती है । तृष्टिका से ज्ञात होता है कि यह जलन पैदा करती है और प्यास बढ़ाती है ।

**१०७. तृष्टाघ**—अथर्ववेद में यह सरसों के लिए है ।[१२] सरसों के तेल में भीगी समिधाएं कृमिनाशक हैं ।

**१०८. तेजन**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में यह बांस और सरकंडे के अर्थ में आया है ।[१३] इसके डंडे से खेत आदि नापे जाते थे । बांस के पत्ते आर्तव रजःस्रावकारी हैं । इससे वंशलोचन निकलता है । यह कफरोग, खांसी, श्वास और ज्वर में प्रयुक्त होता है । बांस के कोमल पत्तों का साग बनता है । इसकी गांठों का क्वाथ लोकिया (प्रसव के बाद योनिमार्ग से निकलने वाला पदार्थ) को रोकता है । इसके पत्तों का रस खून रोकता है ।[१४]

**१०६. तौदी**—अथर्ववेद में यह विषनाशक ओषधि है ।[१५]

**११०. तौविलिका**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[१६] त्सिमर, ग्रिफिथ और ह्विटनी इसे एक ओषधि मानते हैं ।

**१११. त्रायमाणा**—अथर्ववेद में यह पाठा ओषधि के लिए है ।[१७] इसके अन्य पर्याय हैं—सहदेवी, सहमाना, सहस्वती आदि ।

**११२. त्रिवृत्**—यह त्रिगुण (तिहरा) के अर्थ में है । रक्षार्थ इसके मणिधारण का विधान है ।[१८] इस त्रिवृत् में तीन धातुओं के धागों का मिश्रण होता है । ये धातुएं हैं—सुवर्ण, रजत और लोह (सोना, चांदी, लोहा) ।

**११३. दर्भ**—ऋग्, यजुः और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[१६] ऋग्वेद में यह शर और कुशर के साथ आया है । यह कुश है । शतकाण्ड, सहस्रकाण्ड, सहस्रपर्ण, सहस्रवीर्य और दुश्च्यवन इसके पर्याय हैं । यह श्रेष्ठ ओषधि है । अथर्ववेद में इसको मन्युशमन अर्थात् क्रोधनाशक, आयुवर्धक, विषघ्न और बलवर्धक कहा है । यह रक्तस्राव और जलोदर रोग का नाशक है । पैप्पलादसंहिता मे इसे विषघ्न रक्षोघ्न और रोगनाशक कहा है तथा इसका प्रयोग सर्पविष, दुःस्वप्न, वृश्चिकविष, शिरःशूल, पर्वशूल और उदरशूल में निर्दिष्ट है ।[२०] भावप्रकाशनिघण्टु में इसे त्रिदोषनाशक, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, तृषा, वस्तिरोग, प्रदर और रुधिरविकार का नाशक बताया है ।[२१]

अथर्ववेद में तीन सूक्तों में दर्भमणि का माहात्म्य बताया गया है ।[२२] कुश की

मणि बांधने से दीर्घायु, तेज, जरामृत्यु, जीवनरक्षा, शत्रुनाश आदि लाभ बताए गए हैं। मैत्रायणी संहिता में इसे जलीय ओषधि कहा गया है।

**११४. दशवृक्ष**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[२३] सायण ने दशवृक्ष से पलाश, उदुम्बर आदि दस वृक्षों का ग्रहण किया है। इनके टुकड़ों से बनी मणि को दशवृक्षमणि कहते हैं। इस मणि को सन्धिवात या गठिया में लाभकर माना गया है।

**११५. दिप्सौषधि**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[२४] यह संभवतः मोथा या नागरमोथा है। इसके लिए लिखा है कि सूअर इसे नाक से खोद कर निकालता है। यह रक्षोनाशक और कृत्यानाशक है।

**११६. दुश्च्यवन**—यह दर्भ (कुश) का पर्याय है।[२५] इसकी मणि के धारण का विधान है। (देखो दर्भ ११३)

**११७. दूर्वा**—ऋग् यजुः और अथर्व वेद में इसका उल्लेख है।[२६] यह दूब है। अषाढा, सहमाना, सहस्रवीर्या, सहस्रकाण्डा, शतमूला, शतांकुरा, अघद्विष्टा, शपथयोपनी आदि इसके पर्याय हैं। यह 'देवजाता वीरुत्' (दिव्य लता) कही गयी है। ऋग्वेद में इसे मेधावर्धक और कुमतिनाशक कहा है। अथर्ववेद में इस पापनाशक और शापदोषनाशक कहा है।[२७] आंगन में इसे लगाने का उल्लेख है। हरी दूब कफ पित्त, रुधिरविकार, विसर्प, तृषा, दाह तथा त्वचा के रोगों को नष्ट करती है। पाश्चात्य मत है कि यह कै रोकने के लिए दी जाती है। मूत्रकारक होने से मूत्रकृच्छ्र रोग में सेवन करने योग्य है। संकोचक होने से यह नाक से रक्तस्राव और शस्त्र आदि के घाव से होने वाले रक्तस्राव को रोकने के लिए प्रयुक्त होती है।[२८]

**११८. देवमुनि**—अथर्ववेद में अपचित् (अपची, गंडमाला) की चिकित्सा में देवमुनि की जड़ के प्रयोग का विधान है।[२९]

**११९. धव**—अथर्ववेद में यह अश्वत्थ और खदिर के साथ पठित है।[३०] इसके वृक्ष से लाक्षा (गोंद) निकलती है।[३१]

**१२०. नघारिषा**—अथर्ववेद में यह पाठा का पर्याय है।[३२] (देखो जीवला ९७)

**१२१. नड**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में उल्लेख है।[३३] यह तालाब के किनारे होने वाला नरसल है। यह यक्ष्मनाशक कहा गया है।

**१२२. नद्य, नद्यमार, नद्यारिष**—अथर्ववेद में ये तीनों नाम कुष्ठ (कूठ) ओषधि के हैं।[३४] कुछ विद्वानों ने नद्यमार और नद्यारिष के स्थान पर नघमार और नघारिष पाठ माना है।

**१२३. नलद**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[३५] वशीकरण और सांमनस्य के लिए इसका प्रयोग होता है। यह उशीर या खसखस है।

**१२४. नलदी**—यह कृमिनाशक ओषधि है।[३६] गूगल आदि के साथ इसका उल्लेख है।

**१२५. नितत्नी**—यह केश बढ़ाने वाली और बालों को दृढ़ करने वाली ओषधि है।[३७] देवी, चुपुणीका इसके पर्याय हैं। यह भूमि के नीचे फैलने वाली ओषधि है। इसे खोदकर निकालते हैं।

**१२६. नीलागलसाला**—सायण ने इसका अर्थ सस्यमंजरी किया है।[३८]

**१२७. नीवार**—यजुर्वेद में उल्लेख है। यह नीवार, तिन्नी या जंगली धान है।[३९] यह शीतल और पित्तनाशक है। वात और कफ बढ़ाता है।[४०]

**१२८. नीविभार्य**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[४१] सायण ने इसका अर्थ श्वेत-पीत सर्षप (सरसों) किया है। इसको गर्भिणी नीवि अर्थात् अपने नाड़े या कमर में बांधकर रखे। यह उग्र होता है और गर्भ की रक्षा करता है।

**१२९. न्यग्रोध**—यजुः और अथर्व वेद में उल्लेख है।[४२] यह वट या बड़ है। इसकी डालियां नीचे आकर जमीन में फिर वृक्ष का रूप धारण कर लेती हैं। अतः न्यग्रोह से न्यग्रोध है। यह दाह, व्रण और योनिदोष नष्ट करता है। आमरक्तातिसार (खूनी पेचिश), सूजाक और शुक्रक्षीणता में प्रयुक्त होता है। हाथ-पैर फटने में इसके दूध का प्रलेप हितकर है। यह दांतदर्द की महौषधि है।[४३]

**१३०. न्यस्तिका**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[४४] सुभगंकरणी, सहस्रपर्णी इसके पर्याय हैं। सायण ने इसे शंखपुष्पी माना है। यह सौभाग्यवर्धक है। पति-पत्नी के प्रेम को सुदृढ़ करती है। इसके सैकड़ों पत्ते होते हैं।

**१३१. परुषवार**—अथर्ववेद में सर्पविषनाशन में इसका प्रयोग है।[४५]

**१३२. परुषाह्व**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[४६] दारिल ने इसका पलाश वृक्ष अर्थ किया है।[४७] शत्रुनाशन में इसका प्रयोग है।

**१३३. पर्ण**—ऋग्, यजुः और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है।[४८] यह पलाश वृक्ष (ढाक) के लिए है। अथर्ववेद में पर्णमणि को बल, आयु, समृद्धि और लोकप्रियता के लिए धारण करने का विधान है।[४९] पलाशपत्र रसायन है। यह अतिसार, रक्तप्रदर और कृमिशूल रोगों में प्रयुक्त होता है। पत्तों का उष्ण लेप घाव के सूजन को दूर करता है।[५०]

**१३४. पलाश**—यह पलाश (पर्ण) है। अथर्ववेद में उल्लेख है।[५१] यह यज्ञिय वृक्ष ढाक है। यज्ञ में इसकी परिधि और यूप बनाए जाते हैं। इससे गाढ़ा

निर्यास (गोंद) निकलता है । कौशिकसूत्र में इसे बुद्धिवर्धक बताया गया है । जलोदर में इसके लेप का विधान है । केशव ने इसे सर्वरोगभैषज्य कहा है ।[५२] कृमिरोग में इसका प्रयोग होता है । (देखो पर्ण १३३)

**१३५. पाकदूर्वा**—ऋग्वेद में यह परिपक्व दूर्वा के लिए है ।[५३] इसके गुण दूर्वा के तुल्य हैं । (देखो दूर्वा ११७) । अथर्ववेद में पाकदूर्वा के स्थान पर शाण्डदूर्वा पाठ है ।[५४] संभवतः दोनों का अर्थ पकी दूब ही है ।

**१३६. पाटा, पाठा**—इसके ये दोनों नाम हैं । ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५५] ऋग्वेद में सपत्नीबाधन(सौत पर विजय) और वशीकरण में इसका प्रयोग है । उत्तानपर्णा, सुभगा, देवजूता, सहमाना, सहीयसी, सहस्वती, ये इसके पर्याय हैं । यह वीर्यवती, विषघ्न, रक्षोघ्न, बुद्धिवर्धक और गर्भस्थापक कही गयी है । अथर्ववेद में प्रतिवादी पर विजय के लिए इसको धारण करने का विधान है । विवरण के लिए देखो उत्तानपर्णा (संख्या ४४) ।

**१३७. पिंग**—अथर्ववेद में पिंग और बज का उल्लेख है ।[५६] पिंग पीली सरसों है और बज सफेद सरसों । इन्हें नीविभार्य (कमर में बांधना) कहते हैं । गर्भिणी के गर्भदोष-निवारण के लिए इसे बांधा जाता है । यह गर्भनाशक कृमियों को नष्ट करता है । यह गर्भरक्षक और गर्भाशय-संकोचक है । (देखो बज १५६ और सर्षप २५६) ।

**१३८. पिंषती**—ऋग्वेद में यह सर्पविषनाशक ओषधि है ।[५७]

**१३९. पिप्पल**—ऋग्वेद में इसका उल्लेख है ।[५८] यह पीपल वृक्ष और उसके फल के लिए प्रयुक्त हुआ है । (देखो अश्वत्थ २४)

**१४०. पिप्पली**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५९] यह पीपर है । अथर्ववेद में यह रसायन, क्षिप्तभेषजी, अतिविद्धभेषजी, वातीकृतभेषजी कही गयी है । समस्त वातव्याधियों में इसे खिलाने का विधान है । यह मेधावर्धक है । भावप्रकाशनिघण्टु में इसके गुण बताए हैं—भूख बढ़ाने वाली, वीर्यवर्धक, रसायन, श्वास, खांसी, ज्वर, कोढ़, प्रमेह, गुल्म, बवासीर, प्लीहाशूल और आमवात को नष्ट करने वाली है । नवीन अनुसंधानों के अनुसार यह उष्ण, वातनाशक, मृदुरेचक और रसायन है । यह खांसी, ग्रहणी, जीर्ण कफ रोग, प्लीहा-यकृत्-वृद्धि, आमवात, कटिवात आदि रोगों में व्यवहृत होती है । पाषाणभेद के साथ इसका प्रलेप स्तनों पर देने से दूध अत्यधिक पैदा होता है ।[६०]

**१४१. पीतुदारु**—काठक, कपिष्ठल संहिताओं में इसका उल्लेख है ।[६१] इसके अन्य नाम वेदों में आए हैं—पीतदारु, पूतुद्रु, पूतद्रु, पूतुदारु । यह देवदारु है । कुछ इसे खदिर (खैर) मानते हैं । अथर्ववेद में इसे 'अमीवचातनः' (रोगनाशक भेषज)

कहा गया है । देवदारु वायुनाशक और मूत्रप्रद है । यह ज्वर, शोथ, अश्मरी आदि मूत्रपथ-संबन्धी पीडाओं में सेव्य है । देवदार का क्वाथ गोनोरिया, सिफिलिस और गठिया में सेव्य है । इसका तेल रसायन है । यह पुराने चर्मरोग और कुष्ठ में सेवन किया जाता है । चोट, घाव में भी इसका तेल लगाया जाता है ।[६२]

**१४२. पीला**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[६३] यह एक सुगन्धित वनस्पति है । गुल्गुलु (गूगल), नलदी (खसखस) आदि के साथ इसका पाठ है । गुल्गुलु, पीला, नलदी, औक्षगन्धि और प्रमन्दनी, ये पांचों सुगन्धित द्रव्य हैं और इनका यज्ञ में उपयोग होता है । यह कृमिनाशक और रक्षोनाशक है ।

**१४३. पीलु**—अथर्ववेद और पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है ।[६४] इसके फल कबूतर को बहुत अच्छे लगते हैं । पैप्पलाद संहिता में इसे रक्षोनाशक, पिशाचनाशक और कृमिनाशक बताया है । इसकी मणि दीर्घायु के लिए बांधी जाती है । भावप्रकाश में इसे शीतफल कहा है । इसके गुण बताए हैं—यह मलभेदक, गुल्मनाशक और त्रिदोषनाशक है ।[६५]

**१४४. पुण्डरीक**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में उल्लेख है ।[६६] सफेद कमल को पुण्डरीक कहते हैं । यह तालाबों में होता है । हृदय को पुण्डरीक-सदृश कहा गया है । हृदयपुण्डरीक में आत्मा का निवास बताया गया है । कमल के गुण हैं—प्यास, दाह, रुधिरविकार, फोड़ा, विष, विसर्प को नष्ट करता है । सफेद कमल शीतल, मधुर, कफ और पित्त का नाशक है ।[६७]

**१४५. पुनर्नवा, पुनर्णवा**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[६८] यह गर्मी में सूख जाती है और बरसात में पानी पड़ते ही पुनः हरी हो जाती है, अतः इसे पुनर्नवा कहते हैं । यह सफेद और लाल दो प्रकार की होती है । यह अग्निदीपक है और पाण्डुरोग, सूजन, विष, कफ और उदररोगनाशक है । पाचक, मूत्रल और कफनिःसारक है । यह सूजाक, शोथ, कामला, मूत्रकृच्छ्र में प्रयोज्य है । विषधर कीड़ों के काटने में और बिच्छू के काटने में इसका लेप महौषधि है ।[६९]

**१४६. पुष्कर**—ऋग्, यजुः और अथर्व वेद में इसका उल्लेख है ।[७०] इसका अर्थ कमल है । तालाब (पोखर) भी इसका अर्थ है । ऋग्वेद में कमल के मधु (Nectar) का वर्णन है । इसके बड़े पत्तों का भोजनादि के लिए पात्र के रूप में भी प्रयोग किया जाता है । भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार यह शीतल, वर्ण को उत्तम बनाने वाला है । यह कफ, पित्त, प्यास, दाह, रुधिर-विकार, फोड़ा, विष और विसर्प को नष्ट करता है । सफेद कमल शीतल, मधुर, कफ और पित्त का नाशक है । पुष्करमूल वात और कफ से होने वाले ज्वर को दूर करता है तथा शोथ, अरुचि,

श्वास और पसली के दर्द को दूर करता है। पुष्करमूल और कूठ के गुण प्रायः समान हैं। पुष्करमूल के अभाव में कूठ लिया जाता है।[७१]

**१४७. पुष्कला, विष्कला**—पैप्पलादसंहिता में यह गर्भप्रसावक ओषधि कही गयी है।[७२]

**१४८. पुष्पा**—अथर्ववेद में अरुन्धती आदि के साथ इसका उल्लेख है।[७३] केशवपद्धति में भृंगराज आदि के साथ कुष्ठरोग में इसके लेप का विधान है।[७४]

**१४९. पूतद्रु**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[७५] यह देवदार है। इसके पूतुद्रु, पूतुदारु, पीतदारु आदि नाम हैं। (देखो पीतुदारु १४१)

**१५०. पूतीक, पूतिक**—तैत्तिरीय संहिता आदि में उल्लेख है।[७६] इसके लिए ऊतीक शब्द भी आता है। दही जमाने के लिए इसका उपयोग होता है। यह सोमलता की प्रतिनिधि लताविशेष है। निघण्टु में इसे रोहिष तृण कहा है। यह लाल घास है। इसको ही 'आदार' भी कहते हैं।

**१५१. पूतुदारु**—यह देवदार है।[१] (देखो पीतुदारु १४१)

**१५२. पैद्व**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[२] यह विषघ्न ओर्षधि है। मन्त्र में कहा गया है कि इस ओषधि से सर्प को वश में किया गया। इससे ज्ञात होता है कि यह ओषधि सर्प का विष रोकती है और सर्प को वश में कर लेती है।

**१५३. प्रतिसर**—अथर्ववेद के २२ मन्त्रों में इस मणि का महत्त्व वर्णित है।[३] यह रोग आदि को हटाती है, अतः प्रतिसर नाम है। इसका दूसरा नाम 'स्राक्त्य मणि' है। स्रक्त तिलक वृक्ष को कहते हैं, उसकी लकड़ी से यह मणि बनती है। इसे शत्रुनाशक, बलवर्धक, रक्षोनाशक और कृत्यानाशक कहा गया है। यह तिलक वृक्ष है।

**१५४. प्रतीचीनफल**—अथर्ववेद में यह अपामार्ग (चिरचिटा) का पर्याय है।[४] इसके फल का मुंह नीचे की ओर होता है। (देखो अपामार्ग ९)

**१५५. प्रमन्दनी, प्रबन्धिनी**—अथर्ववेद में गूगल आदि पांच सुगन्धित द्रव्यों में इसका उल्लेख है।[५] अतः यह कोई सुगन्धित ओषधि ज्ञात होती है। यह होमद्रव्य है। पैप्पलादसंहिता में 'प्रबन्धिनी' ओषधि का उल्लेख है।[६] संभवतः प्रमन्दनी का ही दूसरा नाम प्रबन्धिनी है। दारिल ने इसे 'इन्दुक' कहा है।

**१५६. प्रियंगु** —यह कंगु, कंगुनी या कंगनी है।[७] यह टूटे अंगों को ज़ोड़ती है। पौष्टिक, भारी और अत्यन्त कफनाशक है। यह घोड़ों के लिए लाभप्रद है।[८]

**१५७. प्रेणी**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[९] यह सौभाग्यकारक कोई ओषधि है। यह पारस्परिक प्रेम बढ़ाती है।

**१५८. प्लक्ष**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में उल्लेख है ।[१०] यह पिलखन, पाकर या पाखर है । यह न्यग्रोध (बड़) आदि वानस्पत्य-चतुष्टय में है । अन्य तीन हैं—अश्वत्थ (पीपल), भद्र (चीड़), खदिर (खैर) । इन चारों से लाक्षा (गोंद) निकलती है । तैत्तिरीय संहिता में प्लक्ष के लिए प्रक्ष शब्द है । यह व्रण, योनिदाह, दाह, रक्तविकार, सूजन और रक्तपित्त का नाशक है ।[११]

**१५६. बज**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[१२] यह सफेद सरसों के लिए है । यह रक्षोनाशक, कुष्ठनाशक, गर्भरक्षक और गर्भाशय-संकोचक है । पिंग (पीली सरसों) के साथ इसे देने का विधान है । (देखो पिंग १३७)

**१६०. बदर**—यजुर्वेद में उल्लेख है ।[१३] यह बेर है । इसके सत्तू का भी उपयोग होता था । 'भेषजम्' कहने से स्पष्ट है कि इसका चिकित्सा में भी उपयोग होता था । यह दस्तावर, वीर्यवर्धक, पुष्टिकारक है । रुधिरविकार, क्षय और तृषा को नष्ट करता है । पाश्चात्य मत है कि बेर की छाल प्रदर और अतिसार में ताल-बीज के साथ दी जाती है । सिल पर पिसे बेर या गूलर के पत्ते जहरीले कीड़े के काटने में लाभप्रद है । इसके प्रलेप से कच्चा फोड़ा पक जाता है ।[१४] (देखो कर्कन्धु ५८)

**१६१. बभ्रु**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[१५] यह सहस्रपर्णी (शंखपुष्पी) का विशेषण है । शंखपुष्पी के तीन भेद हैं—श्वेतपुष्पी, रक्तपुष्पी और नीलपुष्पी । किन्तु शंखपुष्पी से श्वेतपुष्पी का ग्रहण होता है । यह दस्तावर, मेधा के लिए हितकर, वीर्यवर्धक, बल और अग्निवर्धक है । यह मानसिक रोगों को, कोढ़, कृमि और विष को नष्ट करती है । यह रसायन है और स्नायुतन्तुओं के लिए लाभकर है । इसका रस उन्माद, दुर्बलता और गंडमाला में लाभ देता है ।[१६]

**१६२. बला**—पैप्पलाद संहिता में उल्लेख है ।[१७] यह रसायन , बलवर्धक, विषनाशक और प्रमेहनाशक है ।

**१६३. बलासनाशनी, बलासभेषज**—अथर्ववेद में इन दोनों का उल्लेख है ।[१८] यह बलास (कफरोग) को नष्ट करती है । यह हड्डियों के, पर्वों के और हृदय के रोगों को नष्ट करती है ।

**१६४. बल्बज**—ऋग्, यजुः, अथर्व वेदों मे उल्लेख है ।[१६] यह तृणविशेष है । इससे रस्सी, चटाई, आसन, खाट, कुर्सी आदि बनते हैं । जलीय स्थल में होता है । उपनयन में मूंज के अभाव में इसकी मेखला बनती है ।

**१६५. बिभीतक, बिभीदक, विभीदक, विभीतक**—ऋग्, यजुः और अथर्व वेदों में उल्लेख है ।[२०] यह बहेरा या बहेड़ा है । ऋग्वेद में विभीदक शब्द है । आयुर्वेद में इसे बिभीतक भी लिखते हैं । यह त्रिफला में प्रयुक्त तीन द्रव्यों में से

एक है । अन्य दो द्रव्य हैं—आमलकी (आंवला) और हरीतकी (हरड़ा) । यह कफपित्तनाशक, दस्तावर और खांसी को नष्ट करता है । नेत्रों के लिए हितकर, बालों को बढ़ाने वाला और स्वरभेद को नष्ट करता है । गलक्षत में घी में भूनकर चूसना चाहिए । यह अतीसार, शोथ, अर्श, कुष्ठ और प्लीहावृद्धि में सेवन करने योग्य है ।[२१] (देखो अक्ष शब्द १)

**१६६. बिल्व**—यजुः और अथर्व वेदों में उल्लेख है ।[२२] यह बेल है । इसको पवित्र वृक्ष माना है । इसकी प्रकाश से उत्पत्ति बतायी है । पका बेल रसायन और रेचक है । इससे बवासीर के रोगियों को लाभ होता है । यह कब्ज की उत्तम दवा है । अधपके बेल का क्वाथ अतिसार (दस्त), रक्तातिसार(खूनी पेचिश) और आम (आंव) में उपयोगी है । पके बेल का शर्बत अपच या कब्ज दूर करता है । बेल का मुरब्बा दस्त और पेचिश की घरेलू दवा है ।[२३]

**१६७. बिस**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[२४] यह पद्मकन्द है । मूत्रकृच्छ्र या मूत्रावरोध में बिस का प्रयोग होता है । यह मधुर, दुग्धवर्धक, दाह और रक्तविकार का नाशक है । भसींडे में भी यही गुण होते हैं ।[२५]

**१६८. भङ्ग, भङ्गा**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[२६] यह भांग है । आयुर्वेद में इसे भङ्गा कहते हैं। इसके अन्य नाम हैं—भंगा, गंजा, मादनी, विजया, जया । पुरुष जाति के भांग के पत्ते को पीस कर पीते हैं । स्त्रीजाति के भांग से गांजा लिया जाता है । इससे चरस बनाते हैं । भांग को सूजाक और ग्रहणी में प्रयोग करते हैं । मलद्वार पर भांग का लेप करने से बवासीर की पीडा शान्त होती है । सिर पर भांग के लेप से रूसी दूर होती है । यह हैजा में विशेष लाभप्रद है ।[२७]

**१६९. भद्र**—अथर्ववेद में पांच लाक्षा (गोंद, लीसा) वाले वृक्षों में इसका उल्लेख है ।[२८] यह चीड़ है । चीड़ की लकड़ी सीधी और साफ कटती है तथा इससे लीसा निकलता है । इसकी लकड़ी यज्ञ में काम आती है ।

**१७०. भूर्ज**—मैत्रायणी और काठक संहिताओं में इसका उल्लेख है ।[२९] यह भूर्ज वृक्ष है । यह हिमालय के ऊँचे स्थानों पर होता है । इसकी छाल को भोजपत्र कहते हैं । इसकी छाल कागज तथा सूखे केले के पत्तों के तुल्य होती है । प्राचीन समय में भूर्जपत्र पर ग्रन्थ आदि लिखे जाते थे । यह कर्णरोग, पित्त, रक्तविकार तथा विष का नाशक है ।[३०]

**१७१. मण्डूकी**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[३१] यह मण्डूकपर्णी ओषधि है । यह ब्राह्मी ओषधि का ही एक भेद है । यह रसायन और मूत्रकर है । मूत्रेन्द्रिय और जननेन्द्रिय पर इसका विशेष प्रभाव होता है । मण्डूकपर्णी का मूल मुलहठी के साथ ज्वर और रक्तातिसार (खूनी पेचिश) में सेवन कराया जाता है । मण्डूकपर्णी

का मूल उष्ण और रसायन होने से खसरा आदि चर्मरोग, खुजली, कुष्ठ, गण्डमाला आदि रोगों में व्यवहृत होता है । इसकी पुलटिस या प्रलेप सिफिलिस एवं अन्य क्षतों में उपयोगी है ।[३२]

**१७२. मदावती**—अथर्ववेद में यह मदकारक ओषधि है ।[३३] यह संभवतः द्राक्षा (अंगूर) है । अंगूर की शराब मदकारी होती है ।

**१७३. मदुघ, मधूलक**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[३४] यह स्वाद में मधुर होती है । इसके अन्य नाम हैं—मदुग, मधुदुघ । यह ज्येष्ठी मधूक, जेठीमध, मुलहठी है । इसकी जड़ मीठी होती है । यह कफनिःसारक और कुछ रेचक है । यह स्वरभेद, गला बैठना, स्वरतन्त्री में दोष, मूत्रनली के दोष, जुकाम, खांसी में लाभप्रद है । यह सनाय के साथ देने से रक्तार्श (खूनी बवासीर) में लाभ करता है ।[३५]

**१७४. मधुक, मधू**—अथर्ववेद में इसे मधुजाता, मधुला, मधू आदि कहा है ।[३६] यह वचा या कुलंजन है । अथर्वपरिशिष्ट में मधुक की समिधा का उल्लेख है । विषनाशन में इसका उपयोग होता है । (देखो मदुघ १७३)

**१७५. मधुजाता**—अथर्ववेद में यह मधू या मधुक का विशेषण है ।[३७] सर्प आदि के विषनाशन में इसका उपयोग होता है । (देखो मधुक १७४)

**१७६. मधुमती**—अथर्ववेद में यह जीवला ओषधि के लिए है ।[३८] सायण ने इसे कहीं सहदेवी और कहीं पाठा ओषधि माना है । (देखो जीवला ६७)

**१७७. मधुला**—अथर्ववेद में यह सर्पविषनाशक और मच्छर मारने की दवा है ।[३९] सायण इसे मदुघ (सं० १७३) का पर्याय मानते हैं । यह वचा या कुलंजन है । यह मुखशुद्धि और मुखमाधुर्य के लिए है ।

**१७८. मधूक**—शांखायन गृह्यसूत्र में इसका उल्लेख है ।[४०] यह महुआ है । इसके फल मीठे होते हैं । महुए की शराब भी बनाई जाती है । महुए की गुठली के तेल का साबुन बनाने में उपयोग होता है । इसके फूल का रस रसायन है । गंडमाला और वातरोगों में बहुत लाभकर है । महुए के फूल का रस क्षुधावर्धक है । इसके फूल पोषक और मादक हैं । यह अतिसार और ग्रहणी में लाभप्रद है । इसके फूल के क्वाथ को शक्कर के साथ पान करने से प्यास, पेचिश, खांसी दूर होती है । इसका तेल सिरदर्द, चोट और चर्म रोगों में दिया जाता है ।[४१]

**१७९. मधूलक**—अथर्ववेद में यह मुँह में मिठास दोने वाली ओषधि है ।[४२] सायण ने इसका अर्थ जंलमधूक वृक्ष का फूल लिया है । यह मुलहठी है ।

**१८०. मशकजम्भनी**—अथर्ववेद में यह मधुला ओषधि है ।[४३] (देखो मधुला १७७)

**१८१. मसूर**—यजुर्वेद में उल्लेख है ।[४४] यह मसूर है । यह शीतल, हल्की, कफ पित्त और रुधिरविकार एवं ज्वर की नाशक है ।[४५]

**१८२. महावृक्ष**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[४६] महावृक्ष का अर्थ है फल वाला विशाल वृक्ष । खादिर गृह्यसूत्र के टीकाकार ने इसका अर्थ उदुम्बर (गूलर) किया है । यह रक्षोनाशक कहा गया है । (देखो उदुम्बर ४५)

**१८३. माष**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में उल्लेख है ।[४७] यह उड़द है । इसको अमेध्य और अयज्ञिय कहा गया है । यज्ञ में इसे नहीं डालते हैं । यह बलप्रद, वीर्यवर्धक, दुग्धवर्धक, अर्श (बवासीर) एवं श्वासरोग का नाशक है । यह भारी है, मल-मूत्र की अधिक प्रवृत्ति कराता है तथा कफ और पित्त बढ़ाता है, अतः अमेध्य (अपवित्र) माना गया है ।[४८]

**१८४. माषपर्णी, पृश्निपर्णी**—अथर्ववेद के एक पूरे सूक्त में पांच मंत्रों में पृश्निपर्णी का उल्लेख है ।[४९] पृश्निपर्णी को ही माषपर्णी और चित्रपर्णी कहते हैं । इसके पत्ते चितकबरे होते हैं । प्रो० रोठ ने इसे लक्ष्मणा ओषधि माना है। यह गर्भपात (Abortion) रोकने की दवा है । केशव ने कौशिकसूत्र में इसे गर्भस्राव (Miscarriage) से पीडित स्त्रियों के लिए बहुमूल्य ओषधि बताया है ।[५०] यह गर्भनाशक कृमियों को नष्ट करती है । अथर्ववेद में इसे चर्मरोगहर, रक्षोनाशक, रक्तशोधक, गर्भपोषक, दीपक और पाचक कहा गया है । कण्वजम्भनी, सहस्वती, सहमाना इसके पर्याय हैं । कुष्ठ आदि रोगों में इसे पीसकर लेप करने का विधान है । इसे वात, पित्त कफ तीनों दोषों का नाशक कहा गया है । भावप्रकाश में लक्ष्मणा को पुत्रजननी कहा है । पुत्रजननार्थ सफेद कंटकारी का प्रयोग अचूक पाया गया है । भावप्रकाश में लक्ष्मणा से श्वतेपुष्पा कंटकारी, जिसके पत्तों पर लाल रंग के बिन्दु हों, लिया गया है । इसके सेवन से अवश्य पुत्र-प्राप्ति होती है ।[५१]

**१८५. मुञ्ज**—ऋग्, यजुः और अथर्व वेदों में इसका उल्लेख है ।[५२] यह मूंज है । यह जलप्रधान और पित्तनाशक कहा गया है ।[५३] अथर्ववेद में रक्तस्राव (खून बहना) रोकने के लिए इसका प्रयोग बताया गया है । काठकसंहिता में इसे ऊर्जा (शक्ति) का स्वरूप माना गया है । मूंज की मेखला, रस्सी, आसन आदि बनते हैं । इसकी जड़ों में सांप आदि विषैले जीव छिपे रहते हैं । यह पवित्र घास है । इसके ही आधार पर मूजवत् पर्वत का नाम पड़ा है । उपनयन में मूंज की मेखला धारण की जाती है । यह दस्त, पेचिश, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र (मूत्र कठिनाई से उतरना) आदि रोग, नेत्ररोग, बवासीर, कुष्ठ आदि रोगों को ठीक करता है । यह शीतल, वीर्यवर्धक, दाह, तृषा, आंव, मूत्ररोग, नेत्ररोग और त्रिदोष को नष्ट करता है । यह वीर्यस्तम्भक और पौष्टिक है ।[५४]

**१८६. मुलाली**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[५५] सायण ने इसे मृणाली कहा है । संभवतः यह कोई स्वतन्त्र जलीय ओषधि है ।

**१८७. यक्ष्मनाशनी**—अथर्ववेद में यह जल (आपः) का विशेषण है ।[५६] जल रोगनाशक है ।

**१८८. यव**—ऋग्, यजुः और अथर्ववेद में उल्लेख है ।[५७] यह जौ है । अथर्ववेद में जौ और चावल को भेषज कहा है । जौ में प्राणशक्ति है और चावल में अपानशक्ति ।[५८] जौ को सर्वश्रेष्ठ अन्न माना गया है । पैप्पलादसंहिता में यव का बड़ा महत्त्व बताया गया है ।[५६] जौ वैद्य है । जौ का सत्तू पीने वाला महाबली होता है । इससे सत्तू, यवागू, मन्थ, यवौदन, पायस आदि बनते थे । यवमणि ज्वर तथा अनेक रोगों का नाशक है । जौ शीतल, मधुर, बुद्धि और अग्नि का वर्धक, बलकारी है । यह कंठरोग, त्वचारोग, श्वास, खांसी, रुधिरविकार और तृषा को नष्ट करता है ।[६०]

**१८६. यवस**—यह वन में होने वाली जौ के तुल्य वनस्पति है । यह पशुओं के चारे के रूप में काम आती है ।[६१]

**१६०. यवाष**—काठकसंहिता में उल्लेख है ।[६२] यह जवासा है । इसमें बहुत तीक्ष्ण कांटे होते हैं । इनके चुभने से बहुत कष्ट होता है । इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है, उसे मैन्ना (Manna) कहते हैं । इसके पेड़ को उबालने से एक प्रकार की शर्करा निकलती है, इसे चरक और सुश्रुत में 'यासशर्करा' कहा है । यह रेचक, मूत्रप्रद और कफनिःसारक है । रुधिरविकार, कोढ़, खांसी, वातरक्त, वमन और ज्वर को नष्ट करता है ।[६३]

**१६१. रजनी**—अथर्ववेद में यह श्वेतकुष्ठ, पलित (बालों का श्वेत होना) आदि की चिकित्सा के रूप में वर्णित है ।[६४] यह रंगने के लिए है । कौशिकसूत्र में दारिल ने इसे 'मेथिका' (मेथी) बताया है । केशव इसे 'हरिद्रा' (हल्दी) मानते हैं । हल्दी अर्थ अधिक उपयुक्त है ।

**१६२. रामा**—अथर्ववेद में रामा ओषधि का उल्लेख है ।[६५] सायण ने इसका अर्थ भृंगराज लिया है । अन्य ओषधियों के साथ इसका श्वित्र (श्वेत कुष्ठ) और पलित (बाल सफेद होना) में प्रयोग होता है । इसके प्रयोग की विधि बतायी गयी है कि सूखे उपले से श्वित्र प्रदेश को रगड़े और जब रक्त आने लगे तब भृंगराज, हरिद्रा, इन्द्रवारुणी और नीलिका को पीस कर लेप करे । पलित में पके बालों को काला करने के लिए लेप करे । अथर्ववेद के दो सूक्तों (१.२३ और २४) में श्वेतकुष्ठनाशन में इसका प्रयोग बताया है ।

**१६३. रोपणाका**—अथर्ववेदमें इसका उल्लेख है ।[६६] सायण ने इसका अर्थ

काष्ठशुक पक्षी किया है । इसका अर्थ सारिका (मैना) पक्षी भी किया जाता है । केशव इसे एक वनस्पति मानते हैं । यह कामिला (पीलिया) रोग की चिकित्सा बतायी गयी है ।

**१६४. रोहणी**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[६७] सायण ने इसका अर्थ लाक्षा (गोंद, लाख, लीसा) लिया है । यह टूटी हड्डी को जोड़ने और घावों को भरने में प्रयुक्त होती है ।

**१६५. रोहितक**—मैत्रायणी संहिता में इसका उल्लेख है ।[६८] यह यज्ञिय वृक्ष है । इसका यूप बनाया जाता था । उपनयन में इसके दण्ड का विधान है ।

**१६६. लाक्षा**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[६९] इसके अन्य नाम दिए हैं—अरुन्धती, सिलाची, स्परणी, निष्कृति । यह टूटी हड्डी को जोड़ने और घाव, चोट आदि को ठीक करने में प्रयुक्त होती है । यह प्लक्ष, न्यग्रोध, भद्र, अश्वत्थ, खदिर, धव आदि से प्राप्त होती है । यह लाल रंग की होती है । यह वस्त्र आदि रंगने के भी काम आती है । केशवपद्धति (२८.४) में शास्त्राघात, रक्तस्राव और हड्डी टूटने में लाक्षा के जल से सेचन का विधान है ।

**१६७. लिबुजा**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७०] यह पेड़ पर चढ़ने वाली एक बेल है ।

**१६८. वचा**—अथर्वपरिशिष्ट में इसका उल्लेख है ।[७१] वचा को वच भी कहते हैं । इसके भावप्रकाशनिघण्टु में अन्य नाम दिए हैं—उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था, शतपर्विका, क्षुद्रपत्री, जटिला, उग्रा, लोमशा आदि । घुड़वच, सफेदवच, खुरासानी वच, महाभरी वच (कुलंजन), अकरकरा ये सब वच की जाति के हैं । इसकी गंध उग्र होती है । यह अग्निवर्धक है, मल-मूत्र को शुद्ध करती है । कब्ज, अफरा, शूल, अपस्मार (मृगी), कफ, उन्माद और वात को हरने वाली है । वच अल्प मात्रा में पाचक है । कब्ज और पेट फूलना में उपकारी है । बच्चों के पेटदर्द में लाभकारी है । इसका क्वाथ (काढ़ा) कंपकंपी वाले ज्वर में हितकर है । खांसी और श्वास रोगों में विशेष लाभप्रद है । बच्चों के अजीर्ण और पेट फूलने में नाभि पर इसका लेप लाभकारी है । बच्चों को बालवच देने से दांत का चबाना बन्द हो जाता है और दांत शीघ्र निकलते हैं ।[७२] यह विषनाशक है । यह स्मरणशक्ति और वाक्शक्ति को बढ़ाती है । कौशिकसूत्र में दारिल ने वचा का अर्थ वासा ओषधि लिया है ।

**१६९.वंश**— ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७३] यह बांस है । भावप्रकाशनिघण्टु में इसके अन्य नाम दिए हैं—त्वक्सार, तृणध्वज, शतपर्वा, वेणु, मस्कर, तेजन आदि । यह दस्तावर, वस्तिशोधक और मलछेदक है । यह कफ, पित्त, कोढ़, रुधिरविकार, व्रण और सूजन को नष्ट करता है । बांस के

पत्ते रजःस्रावकारी हैं । वंशलोचन शक्तिप्रद, टॉनिक और शीतल है । इसका कफरोग, क्षय, खांसी, श्वासरोग एवं ज्वर में प्रयोग होता है । इसके पत्तों का रस रक्तरोधक है ।[७४]

**२००. वट**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७५] इसको न्यग्रोध (बड़) भी कहते हैं । अथर्ववेद में न्यग्रोध का भी उल्लेख है । बड़ की शाखाएं नीचे की ओर आकर भूमि में प्रविष्ट होकर नए वृक्ष का रूप धारण कर लेती हैं । दृढ़ता और विस्तार के कारण यह क्षात्रधर्म का प्रतीक है । राजा भी इसी प्रकार बढ़े और फैले । बड़ के अन्य नाम हैं—न्यग्रोध, रक्तफल, स्कन्धज, क्षीरी, बहुपाद आदि । यह कफ, पित्त व्रण, विसर्प, दाह और योनिदोष को दूर करता है ।[७६] निघण्टु ग्रन्थों के अनुसार इसका उपयोग इन रोगों को दूर करने में होता है—दाह (जल जाना), तृषा (प्यास), मूर्च्छा (बेहोशी), रक्तपित्त (खून की कै), कफ और पित्त के रोग । मधुमेह, सूजाक, शुक्रक्षीणता, योनिरोग, दस्त, पेचिश, दांतदर्द, गठिया का दर्द, व्रण (घाव) आदि में भी यह उपयोगी है ।

**२०१. वरण**—अथर्ववेद में अनेक मंत्रों में इसका उल्लेख है ।[१] इसको वरुण भी कहते हैं । इसके अन्य नाम हैं—वरुण, सेतु, तिक्तशाक, कुमारक । इसको हिन्दी में वरना या वरुण कहते हैं । वरुण की छाल पाचक, शक्तिवर्धक, रेचक है । यह अश्मरी (पथरी रोग) को नष्ट करती है । इसकी छाल का काढ़ा पथरी को गलाकर मूत्र के द्वारा बाहर निकाल देता है । यह मूत्रदोष, मूत्रकृच्छ्र (कष्ट से मूत्र आना), वातगुल्म (गठिया) और रक्तविकार को ठीक करता है । पैर के तलवे में सूजन होने पर इसके पत्तों का लेप किया जाता है । यह राजयक्ष्मा (T. B.) को ठीक करता है । यह रक्तशोधक है और वातरोगों को दूर करता है । यह विष का प्रभाव नष्ट करता है । पथरी रोग के लिए यह अत्युत्तम ओषधि है ।[२] तपैदिक दूर करने के लिए इसकी लकड़ी की माला (मणि) गले में बांधी जाती है ।

**२०१. वातीकृतनाशनी**—इसका अथर्ववेद में उल्लेख है ।[३] यह विषाणका का विशेषण है । यह वातरोगों को नष्ट करती है । मंत्र में विषाणका का दूसरा लाभ बताया गया है कि यह आनुवंशिक रोगों को भी नष्ट करती है ।

**२०३. वातीकृतभेषजी**—अथर्ववेद में यह पिप्पली (पीपर) का पर्याय है ।[४] पूरे सूक्त में तीन मंत्रों में पीपर का महत्त्व वर्णित है । इसे वातरोग और उन्माद रोग की चिकित्सा बताया है । मंत्र में यह भी कहा गया है कि जो पीपर का सेवन करता है, वह कभी रोगी नहीं होता ।[५] मंत्र में कहा गया है कि यह महाव्याधियों की चिकित्सा है । भावप्रकाशनिघण्टु में भी इसका बहुत गुणगान है । यह रसायन है, वीर्यवर्धक है, भूख बढ़ाती है, बुद्धिवर्धक है । हरी पीपर पित्तनाशक है और सूखी

पीपर पित्तकारक है । हरी पीपर पित्तनाशक है और सूखी पीपर पित्तकारक है । पीपर श्वास रोग, खांसी, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म (प्लीहा या तिल्ली बढ़ना), बवासीर, प्लीहा-शूल और आमवात को नष्ट करती है । जीर्णज्वर और मन्दाग्नि में पीपल गुड़ के साथ खाना उपयुक्त है । गुड़ की मात्रा दुगुनी होनी चाहिए । गुड़ के साथ पीपर खाने से खांसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदय, के रोग, पाण्डुरोग और कृमिरोग नष्ट होते हैं । नव्यमत है कि पीपल उष्ण, वातनाशक, रेचक और रसायन है । यह खांसी, दस्त, पेचिश, पुराना कफरोग, तिल्ली और जिगर की वृद्धि, आमवात, कटिवात आदि रोगों में व्यवहृत होती है । पाषाणभेद के साथ इसका स्तनों पर लेप करने से दूध अत्यधिक पैदा होता है ।[६]

**२०४. वालदुच्छ**—पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है ।[७] यह कोई सुगन्धित ओषधि है ।

**२०५. विकङ्कत, विकङ्कतिका**—मैत्रायणी संहिता और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[८] मैत्रायणी का कथन है कि अग्नि की ज्योति निकल कर इसमें प्रविष्ट हो गयी । इससे ज्ञात होता है कि इसकी लकड़ी में आग्नेय गुण हैं । यह पवित्र यज्ञिय वृक्ष है । इसमें कांटे नहीं होते और यह कोमल वृक्ष है । यज्ञ में इसके बने यूप और विभिन्न पात्रों का उपयोग होता था । इसकी समिधा यज्ञ में डाली जाती थी । इसकी स्रुवा (चम्मच) बनती थी । यह यज्ञ में घी डालने के काम आती थी ।

**२०६. वितन्त्री**—पैप्पलाद संहिता में इसका उल्लेख है ।[९] यह ओषधि पृथिवी से खोदकर निकाली जाती है ।

**२०७. विबाध**—अथर्ववेद में यह जंगिड वृक्ष का पर्याय है ।[१०] दारिल ने जंगिड का अर्थ अर्जुन वृक्ष किया है । प्रो० कैलेन्ड भी इसे अर्जुन वृक्ष मानते हैं । यह पवित्र और शान्त वृक्ष माना जाता है ।

**२०८. विशफ**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[११] द्युलोक को इसका पिता और पृथिवी को माता कहा गया है । इससे ज्ञात होता है कि यह कोई वर्षाकाल में होने वाली ओषधि है । इसे विष्कन्ध (शारीरिक कुरूपता, अंगदोष) की चिकित्सा कहा गया है ।

**२०९. विश्वभेषज, विश्वभेषजी**—ऋग्वेद में वायु को विश्वभेषज अर्थात् सब रोगों की चिकित्सा कहा गया है ।[१२] वायु अर्थात् शुद्ध वायु के सेवन और प्राणायाम से सारे रोग नष्ट होते हैं । इसी प्रकार जल को विश्वभेषजी कहा है ।[१३] जल से सारे रोगों की चिकित्सा हो सकती है और इससे सारे रोगों को दूर किया जा सकता है ।

**२१०. विषदूषण, विषदूषणी**—अथर्थवेद में इन दोनों का उल्लेख है ।[१४]

तौदी और घृताची नाम की ये ओषधियां विषनाशक हैं । कुछ ओषधियां शीघ्र विष उतारती हैं, उन्हें उग्र विषदूषणी कहा है । बड़ी इलायची को घृताची कहते हैं ।

२११. **विषा**—तैत्तिरीय ब्राह्मण में विषा का उल्लेख है ।[१५] यह बाणापर्णी (शरपुंखा) का विशेषण है । इसका अर्थ सायण ने 'व्यापक' किया है ।

२१२. **विषाणा, विषाणका**—विषाणा बुरे स्वप्न और बुरे विचारों को नष्ट करने वाली ओषधि है ।[१६] विषाणका वातव्याधियों और आनुवंशिक रोगों को नष्ट करती है ।[१७] इसे रक्षोनाशक और कृमिनाशक कहा गया है । सहस्रचक्षु इसका विशेषण है । इसका लेटिन नाम Gymnema Sylvestre (जीम्नेमा सिल्वेस्टर) है ।

२१३. **विषातकी**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[१८] यह एक विषैली ओषधि है । यह कड़वी है और जलन पैदा करती है । यह प्यास बढ़ाती है । यह बाणापर्णी (शरपुंखा) का विशेषण है ।

२१४. **विष्कन्धदूषण**—अथर्ववेद में यह जंगिड का विशेषण है ।[१९] दारिल ने जंगिड का अर्थ अर्जुन वृक्ष किया है । इसके मणिधारण का विधान है । यह शारीरिक विकृतियों को (विष्कन्ध) दूर करता है । यह आयुवर्धक, शत्रुनाशक, कृत्यानाशक, रोगनाशक और विश्वभेषज कहा गया है । अथर्ववेद में इसके मणिधारण का बहुत महत्त्व वर्णित है ।

२१५. **विहह्ल**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[२०] यह सर्षप (सरसों) का पिता कहा गया है । सरसों के बीजों का तेल और इसके पत्तों का साग औषध रूप में प्रयुक्त होता है । चक्षुरोगग्रस्त को सरसों के तेल में पकाया हुआ सरसों के पत्ते का साग खिलाने का विधान है ।

२१६. **वीरिण, वीरण, वैरिण**—ऋग्वेद में इसका उल्लेख है ।[२१] यह एक प्रकार की घास है । यह कहा गया है कि जहाँ कुश और वीरण अधिक होते हैं, वहाँ भवन बनाना अधिक उपयुक्त है । यह ऊषर भूमि में अधिक होता है । श्वेतकुष्ठ में सफेद फूल वाले वीरण की इषीकाओं के बांधने को विधान है । अपचित (गंडमाला) और राजयक्ष्मा में इसकी तावीज बांधने का विधान है ।

२१७. **वीरोदीक**—पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है ।[२२] इसकी जड़ को पीसकर मुख पर लगाया जाता है । यह सौमनस्यजनक और वशीकरण है ।

२१८. **वृश्चिकजम्भन**—पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है ।[२३] यह बिच्छू मारने और बिच्छू के विष का प्रभाव नष्ट करने वाली ओषधि है ।

२१९. **वृष**—कठ और काठक संहिता में इसका उल्लेख है ।[२४] वृष और यवाष (जवासा) गर्मी में होते हैं और वर्षा ऋतु में सूख जाते हैं । यह वासा का

पर्याय है । सर्पविष में मधुला और लिंगा के साथ इसे पीसकर मधु में मिलाकर पिलाने का विधान है ।[२५] निघण्टु में इसके गुण बताए हैं कि यह हृदय के लिए हितकर है और कफ, पित्त, रक्तविकार, श्वास, खांसी, ज्वर, प्रमेह, कुष्ठ और क्षयरोग का नाशक है । यह पुरानी खांसी में बहुत लाभप्रद है ।[२६]

**२२०. वेणु**—ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[२७] यह बांस है । इससे बांसुरी (वीणा) बनती है । इसकी अनेक शाखाएं निकलती हैं । इससे सूप, दण्ड, पात्र आदि बनते हैं । अपचित (गंडमाला)—भैषज्यप्रकरण में वेणु की तीखी शलाका या नोक से रोगी को विद्ध करने का विधान है । (देखो वंश शब्द १६६ भी)

**२२१. वेतस**—ऋग्, यजुः और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[२८] यह बेंत है । यह जलीय प्रदेश में होता है । इसकी चटाई, चम्मच, शलाका आदि पात्र बनते हैं । यह शीतल और पित्तनाशक है । यह दाह, शोथ, बवासीर, योनिरोग, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, पथरी, कफ और वात का विनाशक है ।[२६]

**२२२. वेद**—अथर्ववेद में यह दर्भमुष्टि या मुंजमुष्टि के लिए है, अर्थात् मुट्ठी भर कुश या मूंज ।[३०] (देखो दर्भ शब्द ११३)

**२२३. व्यल्कशा**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[३१] व्यल्कशा का अर्थ है विविध शाखा वाला । यह शाण्डदूर्वा और पाकदूर्वा का विशेषण है । इसमें दूर्वा के गुण हैं । (देखो दूर्वा ११७, पाकदूर्वा १३५)

**२२४. व्याघ्रमणि, व्याघ्री**—अथर्ववेद में वैयाघ्रमणि का उल्लेख है ।[३२] यह मणि व्याघ्र की हड्डी या नाखून से बनती है । इसका लाभ बताया गया है कि यह सारे रोगों को दूर करती है । रक्षोनाशक और कृमिनाशक है । हिंसा और दोषारोपण से बचाती है । अथर्वपरिशिष्ट में सिंही के साथ व्याघ्री का भी उल्लेख है ।[३३]

**२२५. व्रीहि**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में यव (जौ) के साथ व्रीहि (चावल) का उल्लेख है ।[३४] यव और व्रीहि को दिव्य और अमृतरूपी भेषज कहा गया है । इन दोनों के विषय में कहा गया है कि ये राजयक्ष्मा को रोकते हैं और स्वास्थ्य के लिए उत्तम हैं । गुण की दृष्टि से अन्तर किया गया है कि जौ में प्राणशक्ति (आग्नेय गुण) अधिक हैं, यह शारीरिक बल देता है और चावल में अपान शक्ति (सोमीय तत्त्व) अधिक हैं, यह बुद्धिवर्धक है और सोम्यगुण देता है ।[३५] इसका सत्तू और पायस (खीर) आदि बनता है । व्रीहि धान्य (चावल) के गुण बताए गए हैं—यह वीर्यवर्धक, शीतल, त्रिदोषनाशक, बलदायक, ज्वरनाशक, विष, व्रण, श्वास, खांसी तथा दाह को नष्ट करता है ।[३६]

**२२६. शंखपुष्पी, न्यस्तिका**—अथर्ववेद में शंखपुष्पी के न्यस्तिका,

सुभगंकरणी, सहस्रपर्णी, संवननी, समुष्पला, बभ्रु, कल्याणी आदि नाम दिए गये हैं।[३७] यह वीर्यवर्धक, सौभाग्यप्रद और वशीकरण ओषधि कही गयी है। यह बुद्धिवर्धक है और इसके सेवन से उत्कृष्ट वक्ता होता है।[३८] शंखपुष्पी के क्वाथ (काढ़ा) पर रहने को पर्णकृच्छ्र व्रत कहा जाता है। शांखायन गृह्यसूत्र (१.१.१२) के भाष्य में यह सर्व-रोग-ओषधि कही गयी है। कौशिकसूत्र (१०.१६) में यह बुद्धिवर्धक ओषधि मानी गयी है। यह मांगलिक वस्तुओं में परिगणित है। सौभाग्य के लिए इसकी जड़ हाथ में बांधने का विधान है। यह दस्तवार, मेधावर्धक, वीर्यवर्धक, मानसिक रोगों को नष्ट करने वाली, रसायन है। स्मृति, कान्ति, बल और अग्नि को बढ़ाती है। मृगी, कोढ़, कृमि और विष को नष्ट करती है।[३६]

**२२७. शंशप, शिंशपा**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है।[४०] अथर्ववेद में इसके लिए शंशप शब्द आया है।[४१] यह शीशम का वृक्ष है। इससे रथ के पहिए बनाये जाते थे। यह उष्णवीर्य, कोढ़, श्वेतकुष्ठ, वस्तिरोग, व्रण, दाह, रक्तविकार, सूजन और कफ को नष्ट करता है।[४२]

**२२८. शण**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है।[४३] यह सन है। इसकी रस्सी बनती है। विष्कन्ध (अंगविकार, विकृत अवयव) में इसकी मणि बांधी जाती थी। इसकी खेती होती है। यज्ञ में इसकी मेखला पहनी जाती थी। इसके फूल रक्तप्रदर को रोकते हैं।[४४]

**२२६. शतकाण्ड**—अथर्ववेद में यह दर्भ (कुश) का पर्याय है।[४५] इसके लिए दुश्च्यवन, सहस्रपर्ण, उग्रौषधि, अच्छिन्नपर्ण, सहस्रकाण्ड, सहमान आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इनसे इसकी विशेषताओं और उग्रता का ज्ञान होता है। काण्ड का अर्थ पर्व है। इसके सैकड़ों पर्व (गांठ, जोड़) होते हैं। इसका मणिबन्धन आयुवर्धक माना गया है। (देखो दर्भ शब्द ११३)

**२३०. शतपर्वा**—पैप्पलाद संहिता में इसका उल्लेख है।[४६] यह रक्षोनाशक और कृमिनाशक माना गया है।

**२३१. शतवार**—अथर्ववेद में इसकी मणि का बहुत गुणगान किया गया है।[४७] सायण ने शतवार का अर्थ किया है— जिसके सौ मूल या शूक (कांटे) हों या जो सैकड़ों रोगों को नष्ट करे। इसको 'दुर्णामचातन' अर्थात् अर्श या बवासीर, कुष्ठ और खुजली आदि रोगों का नाशक कहा गया है। यह शतवार है। यह बुद्धिवर्धक, बलवर्धक, दूध बढ़ाने वाली, वीर्यवर्धक और रसायन है। यह बवासीर, संग्रहणी एवं नेत्ररोगों को नष्ट करती है। शुक्रक्षय और मूत्र की कमी में इसे दिया जाता है।[४८]

**२३२. शफक**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है।[४६] यह जल में होने वाली

कुमुद आदि के तुल्य वनस्पति है । इसके पत्ते शफ (खुर) की आकृति के होते हैं, अतः इसे शफक कहते हैं । आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (६.१४.१४) में इसे भोज्य जलीय ओषधि कहा है । मजूमदार ने इसका अर्थ शृंगाटक (सिंघाड़ा) लिया है ।

**२३३. शमक, शमका**—पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है ।[५०] वाराह गृह्यसूत्र में शमी के साथ इसका उल्लेख है । विवाह के समय यह कलश में डाला जाता है । कौशिकसूत्र में इसे शान्त ओषधियों में गिना गया है ।[५१] दारिल ने इसे जल के समीप होने वाली ओषधि वरण माना है ।

**२३४. शमी**— यजुर्वेदीय संहिताओं में और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५२] यह छोकर या सफेद कीकर है । सायण ने इसकी अर्थ किया है कि यह अग्नि-दाह को शमन करता है, अतः इसे शमी कहते हैं । मैत्रायणी संहिता ने भी इसका यही अर्थ किया है ।शमीवृक्ष पर अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष पैदा हो जाता है । शमी में आग्नेय तत्त्व है, अतः अश्वत्थ की अरणि से उसे रगड़ने पर अग्नि उत्पन्न हो जाती है । इसके यज्ञिय पात्र शंकु, स्रुवा, अभ्रि, ध्रुवा आदि बनाए जाते थे । इसको हिन्दी में छोकर, जण्ड या सफेद कीकर कहते हैं । शमी के पेड़ बबूर के पेड़ से मिलते-जुलते होते हैं । यह कफ, खांसी, श्वास, कोढ़, बवासीर तथा कृमि का नाशक है । इसके क्षार को हरताल के साथ लगाने से बाल झड़ जाते हैं, अतः इसे केशहन्त्री कहते हैं ।[५३]

**२३५. शर**—ऋग्वेद,मैत्रायणी संहिता और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५४] यह सरकंडा है । यह विषघ्न है । मूत्रकृच्छ्र और मूत्रावरोध में लाभकर है । यह मूत्र-जनक है । संस्कृत में इसे बाण, तेजन, भद्रमुंज भी कहते हैं । यह वीर्यवर्धक है । दाह, तृषा, मूत्रकृच्छ्र और नेत्ररोग दूर करता है ।[५५]

**२३६. शाण्डदूर्वा**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५६] यह जलीय स्थान में होने वाली दूब है । सायण ने इसे बृहद् दूर्वा या बड़ी दूब कहा है । इसका मूल अंडाकार और कांड लंबा होता है । दूब के रोकने के लिए दी जाती है । मूत्रकारक होने से मूत्रकृच्छ्र में इसका प्रयोग होता है । खून बन्द करने के लिए इसका उपयोग होता है। नाक से खून आना या चोट से रक्तस्राव में इसका प्रयोग होता है ।[५७]

**२३७. शालि**—अथर्वपरिशिष्ट में शालि का उल्लेख है ।[५८] यह लाल चावल है । कम स्वादिष्ट होने से यह घटिया चावल माना जाता है । गुण की दृष्टि से यह उत्तम है । यह त्रिदोषनाशक, नेत्रों के लिए हितकर, मूत्रकारक, वीर्यवर्धक, अग्निदीपक और पुष्टिकारक है । यह ज्वर, श्वास, खांसी और दाह को नष्ट करता है ।[५९]

**२३८. शालूक**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[६०] सायण ने इसे उत्पलकन्द (कमल की जड़) कहा है ।

**२३६. शाल्मलि, शल्मलि**—ऋग्वेद और यजुर्वेद में शाल्मलि (सेमर) के लिए शल्मलि शब्द है ।[६१] विवाह के लिए शाल्मलि का रथ बनाया जाता था और उसे फूलों से सजाया जाता था । यह वृक्षों में सबसे बड़ा बताया गया है । इसके फूलों को 'शिम्बल' (ऋग्० ३.५३.२२) कहते हैं । सेमर (सेमल) मधुर, रसायन, पित्त, वात, रुधिरविकार और रक्तपित्त को नष्ट करता है । पाश्चात्य मतानुसार सेमल का मूल संकोचक और रसायन है । अतिसार, रक्तातिसार और रजःस्राव में दिया जाता है । सेमल के मूसले (वृक्षमूल) को क्षय रोग (T. B.) में छोटे टुकड़े करके लड्डू के रूप में बलवृद्धि के लिए देते हैं ।[६२]

**२४०. शिंशपा, शंशप**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है । यह शीशम का वृक्ष है । (देखो शंशप शब्द २२७)

**२४१. शिखण्डी**—अथर्ववेद में यह एक बड़े वृक्ष के रूप में वर्णित है ।[६३] इसको महावृक्ष कहा है ।

**२४२. शिग्रु**—ऋग्वेद में इसका उल्लेख है ।[६४] यह सहजन, सहिंजना या सहिंजन वृक्ष है । यह वीर्यवर्धक और हृदय के लिए हितकारी है । कफवात, सूजन, क्रिमि, मेद, अपची, विष, प्लीहा, गुल्म, गंडमाला और व्रणों को नष्ट करता है । यह कफनिःसारक और मूत्रल है । इसके मूल का प्रलेप चमड़े पर उत्तेजना पैदा करता है । जीरा के साथ सहिंजन का प्रलेप दंतशूल और दन्तकृमि में उपयुक्त है । इसकी त्वचा का प्रयोग गर्भपात के लिए होता है । इसके गोंद को मीठे तेल के साथ कर्णरोग में देते हैं । इसके पत्तों की पुलटिस सूजन पर हितकारी है । इसकी छाल के लेप से फोड़ा पक जाता है ।[६५]

**२४३. शिलाची, सिलाची**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[६६] यह लाक्षा का पर्याय है । इसके अन्य नाम दिए हैं—जयन्ती, स्परणी, अरुन्धती, लाक्षा, निष्कृति । यह लाख (गोंद) है । यह टूटी हड्डी को जोड़ने और घाव, चोट आदि को ठीक करने में प्रयुक्त होती है । (देखो अरुन्धती १५ एवं लाक्षा १६६ शब्द)

**२४४. शीतिका**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में उल्लेख है ।[६७] यह शीतप्रदेश में होने वाली ओषधि है । इसका गुण शीतलता है, अतः इसे शीतिका कहते हैं ।

**२४५. शीपाल, शीपाला**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[६८] यह शैवाल या सेवार के लिए है । यह नदी एवं तालाबों में होता है । यह शीतल और दाहशामक होता है । सर्पविषनाशन में इसका उल्लेख है ।

**२४६. शेपहर्षणी**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[६९] एक पूरे सूत्र में इसका वर्णन है । इसके पर्याय हैं—उच्छुष्मा, तनूवशी । यह वाजीकरण ओषधि है । श्री प्रियव्रत शर्मा ने इसे कपित्थक (कैथ) माना है । इसके मूल का क्षीरपाक वाजीकरण

के लिए प्रयुक्त होता है । यह भी कहा गया है कि यह सोम के साथ समुद्रमन्थन के समय निकला था और अतिशय वीर्यवान् है । [७०] सोम को इसका भाई कहा गया है ।[७१]

**२४७. शेवल, शेवाल**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७२] यह शैवाल या सेवार है । यह जरायुपातन (झिल्ली या खेड़ी को गिराने वाला) कहा गया है । (देखो शीपाल शब्द २४५)

**२४८. शोचि**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७३] यह कुशा है । दर्भ के साथ इसका उल्लेख है । यह सर्पविषनाशक ओषधि है ।

**२४९. श्यामा**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७४] यह श्वित्र (श्वेत कुष्ठ) और पलित (बालों की सफेदी) की उत्तम ओषधि है । सफेदी को दूर करके समान रूप वाला बना देने के कारण इसे 'सरूपंकरणी' कहा गया है । यह संभवतः भृंगराज (देखें रामा शब्द शब्द १९२) या नीली का वाचक है ।

**२५० श्यामाक**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[७५] यह सांवा धान्य है । कंगनी या चेना की जाति का अन्न है । इसके दाने बहुत छोटे-छोटे होते हैं । यह वर्षा ऋतु में पकता है । संस्कृत में इसके अन्य नाम हैं—श्यामक, श्याम, त्रिबीज, सुकुमार, राजधान्य और तृणबीजोत्तम । यह रूक्ष और वातकारक है । कफ और पित्त का नाशक है ।[७६]

**२५१. संवननी**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[१] यह शंखपुष्पी का पर्याय है । इसके अन्य पर्याय दिए गए हैं—न्यस्तिका, सुभगंकरणी, सहस्रपर्णी, समुष्पला । यह सौभाग्यवर्धक और वशीकरण ओषधि है । (देखें शंखपुष्पी शब्द २२६)

**२५२. संस्कन्ध, संस्कन्द, संस्कन्दा**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[२] पैप्पलादसंहिता में इसका नाम संस्कन्द और संस्कन्दा ओषधि दिया है । इसको ओजस्य और गर्भस्थापक कहा है ।[३] अथर्ववेद में यह जंगिड वृक्ष के लिए है । प्रो० कैलण्ड ने जंगिड का अर्थ अर्जुन वृक्ष लिया है । (देखें अर्जुन १८ एवं जंगिड शब्द ६२)

**२५३. सचीन**—पैप्पलाद संहिता में इसका उल्लेख है ।[४] यह विषनाशक ओषधि है ।

**२५४. सदंपुष्पा, सदंपुष्पी**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[५] इसको सहस्राक्ष और सहस्रचक्षु कहा गया है, अर्थात् इसकी हजार आंखें हैं । दारिल ने इसका अर्थ त्रिसंध्या और केशव ने संध्या अर्थ किया है ।[६] सायण का कथन है कि इसके फूल आँख की आकृति के होते हैं । इसमें अद्भुत गुण हैं । अतः इसकी मणि को ग्रह,

भूत आदि का निवारक कहा गया है। इसको सहस्रचक्षु, गरुड़ की कनीनिका (पुतली), कश्यप और सरमा का नेत्र कहा गया है। इसकी मणि को दिव्य दृष्टि का साधन बताया गया है। अथर्ववेद के इस पूरे सूक्त में इसके द्वारा दिव्य दर्शन-शक्ति का लाभ बताया गया है। गृह्यसूत्रों में समावर्तन संस्कार में इसका विधान है। सर्पविष-निवारण में भी इसका प्रयोग कौशिकसूत्र में वर्णित है। भावप्रकाश निघण्टु में कुन्द को 'सदापुष्प' कहा गया है। यह कफ, शिर के रोग, विष और पित्त को हरने वाला है। इसके फूल प्रत्येक ऋतु में खिले रहते हैं।[७]

२५५. **सदंफला**—पैप्पलादसंहिता में सदंपुष्पा के साथ सदंफला का उल्लेख है।[८] इसमें हर ऋतु में फल होते हैं। (देखो सदंपुष्पा २५४)

२५६. **समक्तभेषज**—पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है।[९] यह एक सर्वांगीण ओषधि बतायी गयी है। वह आयुवर्धक, शक्तिवर्धक, रक्षोनाशक और समग्र कुशलता देने वाली है।

२५७. **समुष्पला**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है।[१०] यह शंखपुष्पी का पर्याय है। (देखो शंखपुष्पी २२६ और संवननी शब्द २५१)

२५८. **सरूपंकरणी**—अथर्ववेद में यह श्यामा ओषधि का पर्याय है।[११] यह सवर्णीकरण ओषधि है। श्वित्र (श्वेतकुष्ठ), पलित (बालों की सफेदी) आदि में प्रयुक्त होती है। यह चमड़े और बालों आदि की सफेदी दूर करके उनका रंग ठीक कर देती है। यह संभवतः भृंगराज या नीली के लिए है। अथर्ववेद के 'कृष्णा' शब्द से दारिल ने नीली का ग्रहण किया है। भृंगराज, हरिद्रा और इन्द्रवारुणी के साथ पीसकर श्वित्र और पलित में इसके लेप का विधान है। (देखो श्यामा शब्द २४६)

२५९. **सर्षप**—अथर्ववेद में सफेद और पीली सरसों के लिए बज और पिंग शब्द हैं।[१२] इनको नीवि (सफेद सरसों) और भार्य (पीली सरसों) भी कहा गया है।[१३] अथर्ववेद के एक सूक्त में २६ मंत्रों में सर्पष को गर्भरक्षक बताया गया है। अथर्ववेद में सरसों के लिए 'आबयु' शब्द भी आया है।[१४] नेत्ररोग में सर्षपतैलाभ्यंग (सरसों के तेल की मालिश), सर्षपकाण्डमणिबन्धन और सरसों के साग का प्रयोग विहित है।

२६०. **सह**—अथर्ववेद में उल्लेख है।[१५] पांच श्रेष्ठ वीरुधों में इसकी गणना है। अन्य चार वीरुध् हैं—सोम, दर्भ, भङ्ग और यव।

२६१. **सहदेवी**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है।[१६] इसके विशेषण दिए गए हैं—अरुन्धती, विश्वरूपा, सुभगा, जीवला। यह शक्तिवर्धक, रोगनाशक और रक्षोनाशक है। इसके सेवन से गाय आदि पशुओं का दूध बढ़ता है। पारस्कर

गृह्यसूत्र में इसके मूल का भी प्रयोग बताया गया है । बलाचतुष्टय को सिडा कार्डिफोलिया (Sida Cordifolia) कहते हैं । इसमें चार ओषधियां हैं—बला, अतिबला, नागबला और महाबला । महाबला को सहदेवी और पीतपुष्पा कहते हैं । हिन्दी में इसको सहदेई या सहदेइया कहते हैं । सहदेवी की कई किस्म हैं, जिनमें पीत, बैंगनी, गुलाबी पुष्प की सहदेवी प्रसिद्ध है । पेड़ प्रायः तुलसी की तरह होते हैं । इनमें पीतपुष्पा सहदेवी अधिक गुणकर है । इसका मूल शीतल, बलकारक, ज्वरनाशक और मूत्रल है । सोंठ के साथ यह ज्वर, मूत्रदोष एवं वात में व्यवहृत होता है । इसका रस सूजाक, प्रदाह और दस्त में सेव्य है ।[१७]

**२६२. सहमाना**—यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[१८] इसको जीवला, नघारिषा, जीवन्ती, त्रायमाणा, सहस्रवीर्या भी कहा गया है । सहदेवी के पर्याय में भी इसका उल्लेख है । यह शक्तिवर्धक और रक्षोनाशक है । सायण ने इसे पाठा ओषधि माना है । यह पृश्निपर्णी का भी विशेषण है । सहमाना का अर्थ है—रोग आदि पर विजय दिलाने वाली ।

**२६३. सहस्य**—पैप्पलादसंहिता में इसका उल्लेख है ।[१९] इसके सौ पर्व और हजारों शाखाएं बतायी गयी हैं, अतः इसे शतपर्व और सहस्रकाण्ड कहा गया है ।

**२६४. सहस्रकाण्ड**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[२०] यह संभवतः दर्भ का पर्याय है ।

**२६५. सहस्रचक्षु, सहस्राक्ष**—अथर्ववेद में यह सदंपुष्पा के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।[२१] पैप्पलादसंहिता में यह विषाणा का पर्याय है और वातीकृतभेषजी (वातरोग की ओषधि) कही गयी है ।[२२]

**२६६. सहस्रपर्ण**—अथर्ववेद में यह दर्भ का पर्याय है ।[२३]

**२६७. सहस्रपर्णी**—अथर्ववेद में शंखपुष्पी का पर्याय है ।[२४] बहुवचन में प्रयोग होने पर इससे इस प्रकार की अन्य ओषधियों का बोध होगा । (देखो शंखपुष्पी, न्यस्तिका, शब्द २६६)

**२६८. सहस्वती**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[२५] यह पाठा और पृश्निपर्णी का पर्याय है । सायण के मत से यह कोई स्वतंत्र ओषधि हो सकती है । इसको सपत्नी-नाशक और वशीकरण ओषधि कहा गया है ।

**२६९. सहीयसी**—अथर्ववेद में कुछ अधिक शक्तिशाली ओषधियों को सहीयसी कहा गया है ।[२६] ये गुणों में उत्कृष्ट हैं । ये मोल भी बेची और खरीदी जाती थीं ।

**२७०. साल, शाल**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[२७] सायण ने साल को वृक्षविशेष माना है । इसको शाल भी कहते हैं । यह Shorea Robusta (शोरिया

रोबुस्टा, शाखू या साखू) वृक्ष है । पातंजलमहाभाष्य में शालसार, खदिरसार का उल्लेख है ।[२८] इसकी मणि भी धारण की आती थी । गृह्यसूत्रों में इसका उल्लेख है । इसका वृक्ष लंबा और सीधा होता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है । यह मकान और फर्नीचर बनाने के काम आती है । इसमें सार अधिक होता है । इसे गोंद या राल कहते हैं । इसमें ओषधि के गुण हैं । यह कफ, कृमि, विद्रधि (Ulcer), बहरापन, योनिरोग, कर्णरोग, प्रमेह, कोढ़, विष और व्रण का नाशक है । चर्मरोगों में भी प्रयुक्त होता है ।[२९]

**२७१. सिलाञ्जाला, शलाञ्जाला**—अथर्ववेद और कौशिकसूत्र में इसका उल्लेख है ।[३०] सायण ने इसका अर्थ सस्यमंजरी किया है । आँख के रोगों के लिए इसे उपयुक्त बताया गया है ।

**२७२. सुगन्धितेजन**—मैत्रायणी संहिता में इसका उल्लेख है ।[३१] यह सुगन्धित ओषधि है । यज्ञों में इसका बहुत उपयोग होता था । इसके लिए 'सुगन्धिक' शब्द भी आता है । बृहद्देवतानुक्रमणी और मैत्रायणी संहिता में इसको देवदारु, गूगल आदि के तुल्य सुगन्धित कहा गया है ।[३२] कात्यायन श्रौतसूत्र में इसे 'रोहिणपुष्प' और आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में इसे सुगन्धित तृणविशेष कहा गया है ।

**२७३. सुभगंकरणी**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[३३] यह शंखपुष्पी का पर्याय है । (देखो शंखपुष्पी शब्द २२६)

**२७४. सैर्य**—ऋग्वेद में इसका उल्लेख है ।[३४] सायण का कथन है कि तालाब आदि के किनारे होने वाला तृणविशेष हैं । इसे अश्ववाल कहते हैं । यह संभवतः कास है । ऋग्वेद में सर्पादि के विषनाशन में इसका प्रयोग बताया गया है । इसकी मेखला यज्ञोपवीत संस्कार में धारण की जाती थी ।

**२७५. सोम**—ऋग्, यजुः और अथर्व तीनों वेदों में सोम या उल्लेख है ।[३५] वैदिक काल में यह अत्यन्त प्रसिद्ध ओषधि थी । यह मुञ्जवान् पर्वत पर विशेषरूप से होता था । यह ओषधियों का राजा माना गया है । सोम बभ्रु, अरुण या हरितवर्ण कहा गया है । इसमें पर्व और अंशु होते हैं । इसका कांड अंगुलि के आकार का होता है । इसमें पत्र भी होते हैं । इसका रस उत्तेजक और मादक कहा गया है । पत्थर आदि से पीस कर इसका रस निकालते थे । दूध, घी या मधु मिलाकर इसका उपयोग करते थे । ऋग्वेद के पूरे नवम मंडल में सोम का वर्णन है ।

कुछ विद्वान् एफेड्रा (Ephedra) को सोम लता मानते हैं । यह हिमालय पर्वत की ८ हजार फीट से १४ हजार फीट की ऊँचाई पर पायी जाती है । इसका मूल और लकड़ी का क्वाथ आमवात, फिरंग, उपदंश, पूयमेह को नष्ट करता है । इसके फल का रस श्वास रोगों को नष्ट करता है । शाखाओं का क्वाथ ज्वर दूर करता

है । इसका अर्क जलोदर, हृदयरोग, श्वासरोग, रोहिणीरोग और निमोनिया आदि को ठीक करता है ।[३६]

**२७६. सोमावती**—ऋग्वेद आदि में इसका उल्लेख है ।[३७] इसका अश्वावती आदि के साथ उल्लेख है । यह शक्तिप्रद और अतिप्रभावशाली ओषधि है ।

**२७७. स्पन्दन**—इसका ऋग्वेद में उल्लेख है ।[३८] यह शिंशपा (शीशम) के साथ वर्णित है । इसकी लकड़ी भी शीशम की तरह मजबूत होती है । इससे रथ बनता था ।

**२७८. स्रक्त्य**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[३६] यह तिलक वृक्ष है । इसे प्रतिसर भी कहते हैं । इसके मणिधारण का भी विधान है । अथर्ववेद में २६ मंत्रों में (८. ५. १ से २६) प्रतिसर मणि का गुणगान है । इस मणि को धारण करने वाले को कोई रोग, शोक, कृत्या, अभिचार आदि नहीं लगता । वह सिंह के तुल्य अजेय हो जाता है । कोई हिंसक जीव उसपर आक्रमण नहीं कर सकता है । वह सारे रोगों से बचता है और विजयी होता है । तिलक का वृक्ष बिलोचिस्तान एवं पश्चिमोत्तर हिमालय की तराई में होता है ।

**२७६. स्रेकपर्ण**—मैत्रायणी और काठक संहिता में इसका उल्लेख है ।[४०] यह करवीर या कनेर है । इसके फूल सफेद, लाल और पीले होते हैं । श्वेत और लाल कनेर औषधार्थ प्रयुक्त होते हैं । यह नेत्रपीडा, कोढ़, व्रण, कृमि और खुजली को नष्ट करता है ।इसकी जड़ और मूलत्वक् (जड़ की छाल)दोनों ही अमोघ मूत्रकारक और हृदय को बल देने वाले हैं । गर्भपात के लिए कनेर का मूल (जड़) प्रयुक्त होता है । इसके मूलत्वक् का लेप फिरंग, व्रण, शिश्नक्षत और दाद के लिए हितकर है । खाने पर इसका विषवत् प्रभाव होता है ।[४१] इसका लेटिन नाम नेरियम ओलियन्डर (Nerium Oleander) है ।

**२८०. स्वधा**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[४२] मजूमदार इसे एक वनस्पति मानते हैं ।

**२८१. स्वधिति**—ऋग्वेद में उल्लेख है ।[४३] प्रो० रोठ के अनुसार यह विशाल वृक्ष है । इसको वृक्षों में सबसे बड़ा कहा गया है ।

**२८२. हरितभेषज**—अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[४४] यह आञ्जन (अंजन) का विशेषण है । (देखो आञ्जन शब्द ३०)

**२८३. हारिद्रव, हरिद्रु**—ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है ।[४५] सायण ने इसका अर्थ हरिताल (हरताल) वृक्ष लिया है । मैकडानल और कीथ ने हरिद्रु का अर्थ देवदारु (देवदार) लिया है, परन्तु प्रियव्रत शर्मा इसे Adina Cordifolia

मानते हैं । दोनों वेदों में इसे हृदयरोग और कामला (पीलिया) रोग की चिकित्सा बताया गया है । शुद्ध हरताल गर्म है । यह विष, खुजली, कोढ़, मुख के रोग, रुधिरविकार एवं व्रण को नष्ट करता है ।[४६]

**२८४. हिरण्यपर्ण**—यजुर्वेद में इसका उल्लेख है ।[४७] यह सुनहरी वर्ण के पत्तों वाली वनस्पति है । खिलस्थान में 'हिरण्यपर्णा' शब्द आया है । यह लाक्षा का विशेषण है ।

**२८५. हिरण्यपुष्पी, सुवर्णपुष्पी**—पैप्पलादसंहिता और अथर्वपरिशिष्ट में इसका उल्लेख है ।[४८] इसका वशीकरण में प्रयोग है । इसके द्वारा पति को वश में करने का वर्णन है ।

**२८६. ह्लादिका**—अथर्ववेद में उल्लेख है ।[४९] यह शीतिका के तुल्य जलीय स्थान में होने वाली ओषधि है । यह सुखकारक है, अतः इसे ह्लादिका कहा गया है । सायण ने इसका ह्लादक नामक ओषधि अर्थ लिया है ।



**विविध ओषधियाँ**

१. ऋग्० १०.९७. १ से २३
२. यजुर्वेद १२. ७५ से १०१
३. विस्तृत विवरण के लिए देखें—द्रव्यगुणविज्ञान, भाग ४, आचार्य प्रियव्रत शर्मा, पृष्ठ २०० से २१६
४. प्राणो वै वनस्पतिः । ऐ० ब्रा० २.४; ५.२३; ७.३२
५. तत् ते कृणोमि भेषजं सुभेषजम्० । अ० २.३.१
६. ओषधीनां रसेन... वि यक्ष्मेण समायुषा । अ० ३. ३१.१०
७. यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव । अ० ३.२३.६
८. अथर्व० ६.९५.३
९. निरुक्त ९.२७
१०. ओषं धयेति तत ओषधयः समभवन् । शत० २. २.४.५
११. ऋग्० ७.४.५
१२. वनस्पतीन् वानस्पत्यान् ओषधीरुत वीरुधः । अथर्व० ८.८.१४
१३. अथर्व० ८.७.८
१४. अथर्व० ८.७.१ से २८
१५. या ब्रभवो याश्च शुक्रा० । अ० ८.७.१
१६. प्रस्तृणती स्तम्बिनी० । अ० ८.७.४
१७. जीवलां नघारिषां० । अ० ८.७. ६-१०
१८. पुष्पवतीः प्रसूमतीः० । अ० ८.७.२७
१९. अधि पर्वतात् । अ० २.३.१
२०. पर्वतेषु समेषु च । अ० ८.७.१७

२१. उदकात्मान ओषधयः । अ० ८.७.६
२२. उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् । अ० २.३.४
२३. नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणम्० । अ० २.३.३
२४. पृथिव्या अध्युद्भृतम् । अ० २.३.५
२५. हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् । अ० ३.७.१
२६. यजु० १२.८२
२७. यजु० १२.८०
२८. यजु० १२.७८
२९. अ० ८.७.११
३०. अ० ५. ४.२
३१. अ० ४.७.६

**वेदों में निर्दिष्ट वनस्पतियाँ । शब्द १ से ५०**

१. विभीदकः । ऋग्० ७.८६.६; १०.३४.१
अक्षैः । अथर्व० ७.५०.१, अक्षाः । अ० ७.५०.६
२. छा० उप० ७.३.१
३. मेटीरिया मेडिका आफ इंडिया, खोरी, भाग २, पृष्ठ २५६
४. अघद्विष्टा देवजाता० । अथर्व० २.७.१ से ५
५. अजशृंगी अराटकी तीक्ष्णशृंगी व्यृषतु । अथर्व० ४. ३७.६
६. भाव० गुडू० २५७-२५६ । पृष्ठ २५६-२५७
७. अतसम्, ऋग्० ४.४.४, अतसेषु, ऋग्० ४.७.१०, अतसीनाम्,
ऋग्० ८.३.१३, अथर्व० २०.५०.१
८. पिप्पली अतिविद्धभेषजी । अ० ६.१०९. १से ३
९. केशव० २६. ३३-४०
१०. भावप्रकाश० हरीतक्यादि० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
११. इमां खनाम्योषधिम् अदृष्टदहनीम् अहम् । पै० ६.६.१ से १२
१२. शतदंष्ट्रां सहस्रां जयन्तीम् अपराजिताम् । पै० २०.२०.६
१३. अथर्व परि० १८.१.१५ से १७
१४. अपस्कम्भस्य शल्याद् निरवोचमहं विषम् । अ० ४.६.४
१५. शतपथ० ६.६.२.११
१६. कौ० सूत्र २८.२
१७. अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यं सुव । यजु० ३५.११
मैत्रायणी सं० २.६.३; ४.३.४, काठक० १५.२
अथर्व० ४. सूक्त १७ से १९
१८. यजु० ३५.११
१९. भावप्रकाश, गुडूच्यादि० २१७-२२१ । पृष्ठ २३७ से २३९
२०. भेषजम्.... अभिरोरुदम् । अथर्व० ७.३८.१
२१. आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि । अ० ७.३८.२
२२. पैप्प० २०.३०.७
२३. अभ्रिखाते न रूरुपः । अ० ४.७.५, पैप्प० २.१.१-५
२४. अमूलायाम् । अ० ५.३१.४
२५. अरट्वे अक्षे । ऋग्० ८.४६.२७ । अरदुपरम । अ० २०.१३१.१५

२६. रोहयेदम् अरुन्धति । अ० ४.१२.१
भद्रात् न्यग्रोधात्...अरुन्धति । अ० ५.५.५
२७. ओषधिः सह देवीररुन्धती । अ० ६.५६.२
जीवलाम् .... अरुन्धतीम् । अ० ८.७.६
२८. अरुस्राणमिदं महत् । तदास्रावस्य भेषजम् । अ० २.३.५; पैप्प० १.८.३
२९. अर्कवर्णेन जुहोति । तैत्ति० ५.४.३.३
अयमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु । अ० ६.७२.१
३०. भावप्रकाश, गुडूच्यादि० ६५ से ७० । पृष्ठ १६५-१६६
३१. आर्जुनानि लोहिततूलानि....बभ्रुतूलानि० । काठक० ३४.३
हरिता अर्जुना उत । अथर्व० ४.३७.५
३२. भावप्रकाश वटादि० श्लोक २६-२७ । पृष्ठ ३४४
३३. अलसालासि । अ० ६.१६.४
३४. अलसालेत्यालभेषजम् । कौशिक० ५१-१५
३५. सर्पा अदुह्र-अलाबुना विषम् । मैत्रा० ४.२.१३
अलाबुपात्रं पात्रम् । अथर्व० ८.१०.५. १४
३६. भाव० शाकवर्ग, ५७-५८ । पृष्ठ ४१०
३७. समुद्रस्य त्वाऽवकया० । यजु० १७.४
अवकादान्० । अथर्व० ४.३७.८ से १०
३८. भाव० पुष्पादि० १७-१८
३९. अथो अवघ्नती हन्ति । ऋग्० १.१९१.२
४०. किंशुकाशोकपद्माभः वह्निः । अ० परि० २१.७.३
४१. अश्वत्थम् । ऋग्० १.१३५.८
अश्वत्थे वो निषदनम् । यजु० १२.७९
अश्वत्थो देवसदनः । अ० ५.४.३
४२. अथर्व० ३.६.१ से ८
४३. ऐत० ब्रा० ७.३३; ८.१६
४४. अथर्व परि० २३.६.५
४५. भावप्रकाश वटादि० ३ । पृष्ठ ३३७-३३८
४६. पक्ष्माणि यद् अश्ववारा । मैत्रायणी सं० ३.७.६
अश्वस्य वारः । अथर्व० १०.४.२
४७. अश्वावतीं सोमावतीम् । ऋग्० १०.९७.७ । यजु० १२.८१
पैप्प० सं० ११.६.१०
४८. असिक्नी असि ओषधे,..नाशया पृषत् । अथर्व० १.२३.३
४९. अस्तृतं वीर्याय कम् । अ० १९.४६. १ से ७
५०. यत्र...अर्जुना...आघाटाः... संवदन्ति । अ० ४.३७.५
५१. आञ्जनगन्धिं सुरभिम् । ऋग्० १०.१४६.६
आञ्जनं त्रैककुभम् आङ्क्ते । मैत्रायणी० ३.६.३
यदाञ्जनं त्रैककुदम् । अथर्व० ४.९.१ से १०
५२. अथर्व० ४.९.१ से १०; १९.४४.१ से १०; १९.४५. १ से ५
५३. पैप्प० १.५५.१-४; ८.३.१ से १३

५४. आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसम् । अ० ४.३४.५
५५. आम्बानां चरुम् । तैत्ति० सं० १.८.१०.१, काठक सं० १५.५
नाम्बानां चरुम् । मैत्रा० २.६.६ (१५-१६)
५६. अदृष्टान् हन्ति-आयती । ऋग्० १.१९१.२
५७. आलाक्ता । ऋग्० ६.७५.१५ । अपेहि निराल । अ० ६.१६.३
५८. आवयो अनावयो । अ० ६.१६.१
५९. आसुरी....किलासभेषजम् । अ० १.२४.२
६०. सरूपकृत् त्वमोषधे । अ० १.२४.३
६१. भावप्रकाश, धान्यवर्ग, ७२ से ७४ । पृष्ठ ३९८
६२. श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् । अ० ६. ४४.२
६३. रोगस्थानम् असृक्स्थानम् अथो आस्रावभेषजम् । पै० २०.५४.३
६४. भाव० गुडूच्यादि० १५७-१५८ । पृष्ठ २११-२१२
६५. इक्षवः । यजु० २५.१ । इक्षुणा । अ० १.३४.५
६६. भाव० इक्षु० १-२ । पृष्ठ ४५०-४५१
६७. इट इव । अ० ६.१४.३
६८. पैप्प० ९.१०.९ । भाव० गुडू० १९६-१९९ । पृष्ठ २२८-२३०
६९. इषीकामिव । अ० ७.५६.४
७०. दर्भो य उग्र ओषधिः । अ० १९.३२.१
७१. उच्छुष्मा ओषधीनाम् । पैप्प० ११.६.८
७२. उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति । ऋग्० १०.१४५.२, अ० ३.१८.२
७३. भाव० गूडूच्यादि० १८२ से १८४, पृष्ठ २२१-२२२
७४. औदुम्बरीम् आदधाति, ऊर्ग् वा उदम्बरः । तैत्ति० ५.१.१०.१
महान् भद्र उदुम्बरः । अ० २०.१३६.१५
७५. अथर्व० १९.३१.१ से १४
७६. भाव० वटादि० ८-९ । पृष्ठ ३३६
७७. अश्वावतीम्...उदोजसम् । ऋग्० १०.९७.७
उदोजसम् । यजु० १२.८१ । पैप्प० ११.६.१०
७८. बदरैरुपवाकाभिर्भेषजम् । मैत्रा० ३.११.२ और ९
७९. भाव० हरीतकी० १५०-१५२ । पृष्ठ ४८ से ५१
८०. उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । ऋग्० ७.५९.१२
यजु० ३.६०, मूलमुर्वावा इव । अ० ६.१४.२
८१. भाव० शाक० ६०-६१, फलादि० ४२-४३
८२. उलपस्य । ऋग्० १०.१४२.३ । उलपेषु । अ० ७.६६.१
८३. ऊर्जयन्तीम् । ऋग्० १०.९७.७, पैप्प० ११.६.१०

**वेदों में निर्दिष्ट वनस्पतियाँ । शब्द ५१ से १००**

१. ऋतजात...मधुला । अ० ५.१५.१ से ११
२. ऋतजात ऋतावरि । अ० ५.१५.१
३. ऋतावरि...शमि । अ० ६.३०.३
४. गुल्गुलूः...औक्षगन्धिः । अ० ४.३७.३
५. पैप्प० ५.९.१
६. कनक्नकम् । अ० १०.४.२२

७. कृष्णफला कब्रू बलासभेषजी ।
विसल्पकस्य भेषजीः । पैप्प०२०.५६.६
८. सौम्यानि वै करीराणि । तैत्ति० २.४.६.२
९. भाव० वटादि० ६३ । पृष्ठ ३५५
१०. दध्नो रूपं कर्कन्धूनि । यजु० १६.२३, मैत्रा० ३.११.६
कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखे । मैत्रा० ३.११.६
११. भाव० फलादि० ६८ से ७४ । पृष्ठ ३१६
१२. कल्मलिर्मणिः । अ० १५.२.५
१३. मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिम् ।
अशस्तीर्वि हि नीनशः । ऋग् ६.४८.१७
१४. कान्दाविषम् । अ० १०.४.२२
१५. सर्वे ते वध्रयः कृताः । अ० ४.६.७-८
१६. काष्मर्यमयाः परिधयो भवन्ति रक्षसामपहत्यै । मैत्रा० ३.७.६
१७. सुकिंशुकम् । ऋग्० १०.८५.२०
१८. भावप्रकाश, वटादि० ४६-५३ । पृष्ठ ३५२-३५३
१९. इदं किलासभेषजम्, इदं किलासनाशनम् । अ० १.२४.२
२०. आण्डीकं कुमुदम् । अ० ४.३४.५
२१. कुवलम् । यजु० १६.२२
२२. कुशीभिः । मैत्रा० ४.५.७
२३. भाव० गुडूच्यादि० १५७-१५६
२४. शरासः कुशरासो दर्भासः । ऋग्० १.१६१.३
२५. कुष्ठेहि तक्मनाशन । अ० ५.४.१ से १०; १६.३६.१ से १०
२६. पैप्प० १.३१.१ से ४
२७. अ० परि० ३५.१.१४-१५
२८. कौ० सूत्र ३५.२१; ३८.६
२९. केशव० ३५.२१
३०. केशव० २८.१३
३१. भाव० हरीत० १६४ । पृष्ठ ५८
३२. भावप्रकाश पृष्ठ ५८ से ६०
३३. कूद्यं पदयोपनीम् । अथर्व० ५.१६.१२
३४. कृष्णलानि....समृद्ध्यै । मैत्रा० २.२.२ । काठक० ११.४
३५. केशदृंहणीरथो ह केशववर्धनीः । अ० ६.२१.३
३६. अथर्व० ६.१३६.१ से ३; ६.१३७.१ से ३
३७. पैप्प० १.३८.१ से ४
३८. कियाम्बु । ऋग्० १०.१६.१३ । क्याम्बूः । अ० १८.३.६
३९. पैप्प० ६.१०.६
४०. अग्नेः प्रिया तनूर्यत् क्रमुकः । मैत्रा० ३.१.६
४१. कौ० सूत्र २८.२
४२. ओषधे, क्लीबं..कृधि । अथर्व० ६.१३८.१
४३. पिप्पली क्षिप्तभेषजी । अ० ६.१०६.१, पैप्प० १६.२७.६
४४. भाव० हरीतकी० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६

४५. क्षुम्पमिव । अ० २०.६३.५
४६. वीरुत् क्षं।त्रेयनाशनी । अ० २.८.१ से ५
४७. पैप्प० १.६६.१ से ४; १६.३५.७ से १०
४८. खदिरस्य सारम् । ऋग्० ३.५३.१६
स खदिरोऽभवत् । खादिरः स्रुवः । तैत्ति० ३.५.७.१
अश्वत्थात् खदिराद् धवात् । अथर्व० ५.५.५
४६. मणिं...खदिरमोजसे । अथर्व० १०.६.७
५०. पैप्प० २.५८.१ से ६; १६.४२.६ से ८
५१. भाव० वटादि० ३० से ३२ । पृष्ठ ३४५-३४६
५२. आर० एन० खोरी, मेटीरिया मेडिका० भाग २, पृष्ठ१८४
५३. ते खर्जूरा अभवन् । तैत्ति० २.४.६.२
५४. भाव० फलादि० ११५ से १२१ । पृष्ठ ३२७-३२८
५५. खल्वाश्च मे । यजु० १८-१२ । खल्वां इव । अ० ५.२३.८
५६. भाव० धान्य० ५३-५६ । पृष्ठ ३६५-३६६
५७. गर्मुत्, गार्मुतं चरुम् । तैत्ति० २.४.४.१ से ३
५८. भाव० धान्य० ३८-४० । पृष्ठ ३६३
५६. गावीधुकं चरुम् । तैत्ति० १.८.७.१
६०. भाव० धान्य० ३१-३५ । पृष्ठ ३६३
६१. तद् गुल्गुलु । तैत्ति० ६.२.८.६
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते । अ० १६.३८.१ से ३
६२. भाव० कर्पूरादि० ३१ से ४३ । पृष्ठ १०६
६३. गोधूमाश्च मे । यजु० १८.१२
६४. भाव० धान्य० ३१ से ३५ । पृष्ठ ३६३
६५. घृताची । ऋग्० १.१६७.३
विश्वाची च घृताची चाप्सरसौ । तैत्ति० ४.४.३.२,
तौदी नामासि कन्या घृताची नाम । अ०१०.४.२४
६६. केशव० २७.१४ से १८
६७. पैप्प० २.३७.१ । कौशिक० ८.१६
६८. वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् । अ० ६.१२७.१ से ३
६६. पैप्प० ५.३.१ से ८
७०. जङ्गिडः । अथर्व० २.४.१.६; १६.३४ एवं १६.३५ सूक्त
७१. जाम्बीलेन अरण्यम् । यजु० २५.३ । मैत्रा० ३.१५.३
७२. भाव० पलादि० १३४-१३५ । पृष्ठ ३३१
७३. जर्तिलाश्च । तैत्ति० ५.४.३.२
७४. रुद्रं जलाषभेषजम् । ऋग्० १.४३.४
रुद्र जलाषभेषज । अ० २.२७.६
७५. जीवन्तीमोषधिमहम् । अ० ८.२.६
७६. केशव० ३१.२८
७७. जीवलाम् । अ० ६.५६.३
७८. तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः । अ० ६.१५.३
७६. केशवपद्धति १६.२६

८०. भाव० कर्पूरादि० १०० । पृष्ठ १३५-१३६
८१. तस्तुवेनारसं विषम् । अथर्व० ५.१३.११
८२. ताजद्भङ्ग इव भज्यन्ताम् । अ० ८.८.३

**वेदों में निर्दिष्ट वनस्पतियाँ । शब्द १०१ से १५०**

१. ताबुवेनारसं विषम् । अ० ५.१३.१०
२. तार्ष्टाघीः...समिधः । अ० ५.२९.१५
३. तिलाश्च मे । यजु० १८.१२
तिलस्य तिलपिञ्ज्या । अ०२.८.३
४. अथर्वपरि० १.३०.२; ४.२.६; १४.१.८
५. केशव० ३१.२८
६. करम्भं कृत्वा तिर्यग् । अ० ४.७.३
७. भाव० धान्य० ६३ से ६५ । पृष्ठ ३६६-३६७
८. तैल्वकीम् अभिचरन्०, एष वनस्पतीनां वज्रः । मैत्रा० ३.१.९
९. भाव० वटादि० ७६ । पृष्ठ ३५९
१०. अजशृङ्गी...तीक्ष्णशृङ्गी । अ० ४.३७.६; ८.७.९
११. तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातकी । अ० ७.११३.१-२
गन्धेनौषधिः घुणजम्भनी , पैप्प० २०.१.७
१२. तार्ष्टाघीः । अ० ५.२९.१५
१३. क्षेत्रमिव विममुस्तेजनेन । ऋग्० १.११०.५
तेजनम् । अ० १.२.४
१४. भाव० गुडूच्यादि० पृष्ठ २०८
१५. तौदी नामासि ...विषदूषणम् । अं० १०.४.२४
१६. तौविलिके । अ० ६.१६.३
१७. त्रायमाणां सहमानाम्० । अ० ८.२.६
त्रायमाणां सहदेवीम् । पैप्प० ८.२.११
१८. रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः । अ० १९.२७.३
१९. शरासः...दर्भासः । ऋग्० १.१९१.३
दर्भा आप ओषधयः । मैत्रा० १.७.२
अयं दर्भो विमन्युकः । अथर्व० १९.२८, २९ एवं ३० सूक्त; ६.४३.१ से ३
२०. पैप्प० १.८७.१ से ४; १२.५.१ से ५; १३.११.१ से २३
२१. भाव० गुडूच्यादि० १५७-१५९ । पृष्ठ २११-२१२
२२. अथर्व० १९.२८ से ३० सूक्त
२३. दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्याः । अ० २.९.१
२४. सूकरस्त्वाखनन्नसा । दिप्सौषधे० । अ० ५.१४.१
२५. शतकाण्डो दुश्यवनः.... दर्भः । अथर्व० १९.३२.१
२६. दूर्वाया इव तन्तवो व्यस्मदेतु दुर्मतिः । ऋग्० १०.१३४.५
दूर्वे प्र तनु । तैत्ति० ४.२.९.२
दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः । अ० ६.१०६.१
२७. अघद्विष्टा ...शपथयोपनी । अथर्व० २.७.१
२८. भाव० गुडूच्यादि० १६४-१६८ । पृष्ठ २१३-२१४
२९. मुनेर्देवस्य मूलेन० । अ० ७.७४.१

३०. अश्वत्थः खदिरो धवः । अ० २०.१३१.१४
३१. खदिराद् धवात् । अ० ५.५.५
३२. जीवलां नघारिषाम् । अ० ८.२.६
३३. नडा इव सरसः । ऋग्० ८.१.३३
केशा नडा इव वर्धन्ताम् । अ० ६.१३७.२
३४. त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः । नद्यायम्० । अ० १६.३६.२
३५. कुष्ठस्य नलदस्य च । अ० ६.१०२.३
३६. गुल्गुलूः पीला नलदी । अ० ४. ३७.३
३७. नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि । अ० ६.१३६.१
३८. नीलागलसाला । अ० ६.१६.४
३६. नीवाराश्च मे । यजु० १८.१२
४०. भाव० धान्य० ८६
४१. भेषजौ नीविभार्यौ । अ० ८.६.२०
४२. अवरोधैर्न्यग्रोधः । मैत्रा० ४.४.२
न्यग्रोधा महावृक्षाः । अ० ४.३७.४
४३. भाव० वटादि० १-२ । पृष्ठ ३३६
४४. न्यस्तिका...सुभगंकरणी । अ० ६.१३६.१ से ५
४५. परुषस्य वारः । अ० १०.४.२
४६. परुषाह्वः । अ० ८.८.४
४७. कौथुमगृह्यसूत्र १६.१४
४८. पर्णे वो वसतिष्कृता । ऋग्० १०.६७.५
ब्रह्म वै पर्णः । मैत्रा० ४.१.१
पर्णो राजापिधानम् । अ० १८.४.५३
४६. पर्णमणिर्बली । अ० ३.५.१ से ८
५०. भाव० वटादि० ४६-५३. । पृष्ठ ३५२
५१. अश्वत्थपलाशम् । अ० २०.१३५.३
५२. केशवपद्धति ४.२५.२०
५३. पाकदूर्वा । ऋग्० १०.१६.१३
५४. शाण्डदूर्वा व्यल्कशा । अ० १८.३.६
५५. उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति । ऋग्० १०.१४५.१ से ६
पाटामिन्द्रो व्याश्नात् । अथर्व० २.२७.४
५६. बजश्च तेषां पिंगश्च । अथर्व० ८.६.२४
५७. अथो पिनष्टि पिंषती । ऋग्० १.१६१.२
५८. पिप्पलं स्वादवत्ति । ऋग्० १.१६४.२०, २२
५६. पिप्पली क्षिप्तभेषजी..वातीकृतस्य भेषजीम् । अ० ६.१०६.१ से ३
६०. भावप्रकाश हरीतक्यादि० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
६१. पीतुदारुर्भवति । काठक० २५.६, कपि० ३६.४
पूतुद्रुर्नाम भेषजम् । अ० ८.२.२८
६२. भाव० कर्पूरादि० २३-२४ । पृष्ठ १०४-१०५
६३. गुल्गुलूः पीला नलदी० । अ० ४.३७.३

६४. श्यामाकं पक्वं पीलु च । अ० २०.१३५.१२
रक्षोहणं वृत्रहणं पीलुं पिशाचजम्भनम् । पैप्प० ७.१६.१ से १०
६५. भाव० फलादि १२८ । पृष्ठ ३२६
६६. ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि । ऋग्० १०.१४२.८
ह्रदो वा पुण्डरीकवान् । अ० ६.१०६.१
पुण्डरीकं नवद्वारम्० । अ० १०.८.४३
६७. भाव० पुष्पादि० १ से ५ । पृष्ठ २७६-२७७
६८. या रोहन्ति पुनर्णवाः । अ० ८.७.८
६९. भाव० गुडूच्यादि० २३५-२३७ । पृष्ठ २४४-२४५
७०. निषिक्तं पुष्करे मधु । ऋग्० ८.७२.११
पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । यजु० ११.३२
पुष्करपर्णं पात्रम् । अ० ८.१४.६
७१. भाव० पुष्पादि० १ से ५, हरीतक्यादि० १६५-१६६, पृष्ठ ६०-६१
७२. पैप्प० १.५.३
७३. पुष्पां मधुमतीम् । अ० ८.७.६
७४. केशव० २६.२२ से २४
७५. पूतुद्रुर्नाम भेषजम् । अ० ८.२.२८
७६. पूतीकैर्वा पर्णवल्कैर्वा । तैत्ति० २.५.३.५

**वेदों में निर्दिष्ट वनस्पतियाँ । शब्द १५१ से २००**

१. पूतुदारुर्देवदारुः । दारिल
२. अहिं पैद्वोऽरन्धयत् । अ० १०.४.१०
३. अयं प्रतिसरो मणिः । अ० ८.५.१ से २२
४. प्रतीचीनफलस्त्वम् । अ० ४.१९.७
५. प्रमन्दनी । अ० ४.३७.३
६. पैप्प० १३.४.३
७. प्रियङ्गवश्च मे । यजु० १८.१२ । मैत्रा० २.११.४
८. भाव० धान्य० ७६-७७ । पृष्ठ ३६८
९. इदं यत् प्रेण्यः...हार्दि ते शोचयामसि । अ० ६.८९.१
१०. प्लक्षो मेघेन । काठक० ४४.१ । प्लक्षात् । अ० ५.५.५
११. भाव० वटादि० ११-१२ । पृष्ठ ३४०
१२. भेषजं बजं दुर्णामचातनम् । अ० ८.६.३
१३. सक्तूनां रूपं बदरम् । यजु० १९.२२
बदरैरुपवाकाभिर्भेषजम् । मैत्रा० ३.११.२
१४. भाव० फलादि० ६९-७४ । पृष्ठ ३१६-३१७
१५. बभ्रु कल्याणि सं नुद । अ० ६.१३९.३
१६. भाव० गुडूच्यादि० २७२-२७३ । पृष्ठ २६१-२६२
१७. पैप्प० १९.३९.१ से १३
१८. बलासं सर्वं नाशय । अ० ६.१४.१-३ । बलासनाशनीः० । अ० ८.७.१०
१९. बल्बजस्तुकाः । ऋग्० ८.५५.३
बल्बजा अपि । मैत्रा० २.२.५
यं बल्बजं न्यस्यथ । अ० १४.२.२२

२०. विभीदको जागृविः । ऋग्० १०.३४.१
नेमो वैभीदकः । मैत्रा० २.१.६ । पैप्प० १६.३२.८ से १०
२१. भाव० हरीतक्यादि० ३४ से ३६ । पृष्ठ ८-६
२२. ज्योतिषो बिल्वोऽजायत । मैत्रा० ३.६.३
महान् वै भद्रो बिल्वः । अ० २०.१३६१५
२३. भाव० गुडूच्यादि० १२-१३ । पृष्ठ १४६-१४७
२४. कुमुदं... विसम् । अ०४.३४.५
२५. भाव० शाक० ११४-११६ । पृष्ठ ४१८
२६. दर्भो भङ्गो यवः सहः । अ० ११.६.१५
२७. भाव० हरीतक्यादि० २१८ । पृष्ठ ८५ से ८७
२८. भद्रात् प्लक्षात् । अ० ५.५.५
२६. भूर्जो वै नामैष वृक्षः, कार्या एतस्य स्रुचः । मैत्रा० १.१०.१२
३०. भाव० वटादि० ४७-४८ । पृष्ठ ३५१-३५२
३१. मण्डूकी-अप्सु शं भुवः । अ० १८.३.६०
३२. भाव० गुडूच्यादि० २८२-२८४ । पृष्ठ २६४-२६६
३३. वि ते मदं मदावति० । अ० ४.७.४
३४. मदुघान्मधुमत्तरः । अ० १.३४.४ । मधूलकम् । अ० १.३४.२
३५. भाव० हरीतक्यादि० १३८-१३६ । पृष्ठ ४२-४४
३६. मधुला मधूः । अ० ७.५८.२
३७. इयं वीरुन्मधुजाता...मधुला मधूः । अ० ७.५८.२
३८. पुष्पां मधुमतीम् । अ० ८.७.६
३६. मधुला मधूः, मशकजम्भनी । अ० ७.५६.२
मधु त्वा मधुला चकार । ऋग्० १.१६१.१०
४०. शां० गृ० १.१२.६; ४.१७.३
४१. भाव० फलादि० ६३-६५ । पृष्ठ ३२१ से ३२२
४२. जिह्वामूले मधूलकम् । अ० १.३४.२ । भाव० हरी० पृष्ठ ४२ से ४४
४३. मधुला...मशकजम्भनी । अ० ७.५६.२
४४. मसूराश्च मे । यजु० १८.१२
४५. भाव० धान्य० ५० । पृष्ठ ३६५
४६. न्यग्रोधा महावृक्षाः । अ० ४.३७.४
४७. माषाश्च मे । यजु० १८.२ । माषाः पिष्टाः । अ० १२.२.५३
४८. भाव० धान्यवर्ग ४१-४३ । पृष्ठ ३६४
४६. गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि । अ० २.२५.१ से ५
५०. कौ० सूत्र २६.३६
५१. भाव० गुडूच्यादि० १४०-१४१ । पृष्ठ २०५
५२. पिबता मुञ्जनेजनम् । ऋग्० १.१६१.८
मुञ्ज इत् । अथर्व० १.२.४; २.३.१ से ५
ऊर्ग् वै मुञ्जाः । काठक० १६.१०
५३. पैप्प० १०.३२.१२; २०.३३.६
५४. भाव० गुडूच्यादि० १५०-१५१ । पृष्ठ २०६
५५. शाफको मुलाली । अ० ४.३४.५

५६. अयक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । अ० ३.१२.६; ६.३.२३
५७. गोभिर्यवं न चर्कृषत् । ऋग्० १.२३.१५
यद् हरिणो यवम् अत्ति । यजु० २३.३०
व्रीहिर्यवश्च भेषजौ । अ० ८.७.२०
५८. यवे ह प्राण अहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते । अ० ११.५.१३
५९. यवो भिषक्, यवस्य महिमा महान् । पैप्प० १६.४.८
६०. भाव० धान्य० २७-३० । पृष्ठ ३९२
६१. मृगो न यवसे । ऋग्० १.३८.५
६२. तौ वृषश्च यवाषश्चाभवताम् । काठक० ३०.१
६३. भाव० गुडूच्यादि० २०८-२११ । पृष्ठ २३३-२३५
६४. इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् । अ० १.२३.१
६५. नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च । अ० १.२३.१
६६. शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अ० १.२२.४
६७. रोहण्यसि रोहणी-अस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी । अ० ४.१२.१ से ७
६८. यत्र चमसं न्यौब्जत् ततो रोहितकोऽजायत । मैत्रा० ३.९.३
६९. अपामसि स्वसा लाक्षे० । अथर्व० ५.५.१ से ९
७०. लिबुजेव वृक्षम् । ऋग्० १०.१०.१३ और १४
यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे । अ० ६.८.१
७१. अथर्वपरि० १.४४.१०; ५.१.५
७२. भाव० हरीतक्यादि० ९८-९९ । पृष्ठ· ३२-३३
७३. उद् वंशमिव येमिरे । ऋग्० १.१०.१
यथा मध्यमो वंशः० । मैत्रायणी० ४.८.१०
वंशानां ते नहनानाम् । अ० ९.३.४
७४. भाव० गुडूच्यादि० १४५-१४८ । पृष्ठ २०७-२०८
७५. पिपीलिकावटः । अ० २०.१३५.३
७६. भाव० वटादि० १-२ । पृष्ठ ३३६-३३७ । नादकर्णी IMM. Vol. I, P. 543

**वेदों में निर्दिष्ट वनस्पतियाँ । शब्द २०१ से २५०**

१. वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः । अ० ६.८५.१ से ३
अयं मे वरणो मणिः० । अ० १०.३.१ से २५
२. भाव० वटादि० ६५-६६ । पृष्ठ ३५६-३५७
३. विषाणका नाम वा असि....वातीकृतनाशिनी । अ० ६.४४.३
४. पिप्पली क्षिप्तभेषजी-उतातिविद्धभेषजी । अ० ६.१०२.१
वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् । अ० ६.१०२.३
५. यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः । अ० ६.१०२.२
६. भाव० हरीतक्यादि० ५३ से ५८ । पृष्ठ १४ से १६
७. वालदुच्छस्य गन्धेन । पैप्प० २०.२०.२
८. अग्नेर्वै सृष्टस्य भा अपाक्रामत्, तद् विकङ्कतं प्राविशत् । मैत्रा० ३.१.९
वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह । अ० ५.८.१
९. इमां खनाम्योषधिं वितन्त्रीम् । पैप्प० ३.२९.१ से ६
१०. विबाध उग्रो जङ्गिडः । अ० १९.३४.७
११. कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता । अ० ३.९.१

१२. आ वात वाहि भेषजं.. त्वं हि विश्वभेषजः । ऋग्० १०.१३७.३
१३. आपश्च विश्वभेषजीः । ऋग्० १.२३.२०
१४. तौदी नामासि....घृताची....आ ददे विषदूषणम् । अ० १०.४.२४
उग्रा या विषदूषणीः । अ० ८.७.१०
१५. तै० ब्रा० ३.७.१३.१४
१६. विषाणा...दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्व । अ० ६.१२१.१
१७. विषाणका नाम वा असि पितॄणां मूलादुत्थिता
वातीकृतनाशनी । अ० ६.४४.३ । पैप्प० ३.२२.१ से ६.
१८. तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि । अ० ७.११८.२
१९. देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् । अ० १९.३५.१ से ५
२०. विहह्लो नाम ते पिता । अ० ६.१६.२
२१. मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः । ऋग्० १.१९१.३
२२. वीरोदीकस्य मूलेन मुखेन मर्दनं कृतम् । पैप्प० २.७७.२
२३. पैप्प० १९.४७.१-२
२४. तौ वृषश्च यवाषश्चाभवताम् । तौ वर्षेषु शुष्यतः । कठ० ४६.४
२५. कौशिक० २९.१०
२६. भाव० गुडूच्यादि० ८३ से ८५ । पृष्ठ १७७ से १७९
२७. शतं वेणून् । ऋग्० ८.५५.३
वेणुर्वै वनस्पतीनां फलग्रहितमः । मैत्रा० ३.१.२
वैणवी सुषिरा भवति । काठक० १९.१ । पैप्प० ४.१४.१
२८. हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् । ऋग्० ४.५८.५
हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः । यजु० १३.३८
यो वेतसं हिरण्ययं.... वेद । अ० १०.७.४१
२९. भाव० गुडूच्यादि० १३०-१३२ । पृष्ठ १९९-२००
३०. वेदः स्वस्तिः । अ० ७.२८.१
३१. शाण्डदूर्वा व्यल्कशा । अ० १८.३.६
पाकदूर्वा व्यल्कशा । ऋग्० १०.१६.१३
३२. वैयाघ्रो मणिर्वीरुधाम्० । अ० ८.७.१४
३३. अथर्वपरि० १८.१.१५ से १७
३४. व्रीहयश्च मे यवाश्च मे । यजु० १८.१२
व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ । अ० ८.७.२०
व्रीहियवावबलासावदोमधौ । अ० ८.२.१८
३५. यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते । अ० ११.४.१३
३६. भाव० धान्य० १७ से २५ । पृष्ठ ३६१-३६२
३७. न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम । अ०. ६.१३९. १ से ५
३८. सभायामह त्वं वद । अ० ७.३८.४
३९. भाव० गुडूच्यादि० २७२-२७३ । पृष्ठ २६१-२६२
४०. ओजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् । ऋग्० ३.५३.१९
४१. भगेन मा शांशपेन । अ० ६.१२९.१
४२. भाव० वटादि० २४-२५ । पृष्ठ ३४३
४३. शणश्च या जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् । अ० २.४.५

४४. भाव० धान्य० ८८ । पृष्ठ ४०१
४५. शतकाण्डो दुश्च्यवनः । अ० १६.३२.१ से १०
४६. पैप्प० ५.६.२
४७. शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा । अ० १६.३६.१ से ६
४८. भाव० गुडूच्यादि० १७४ से १७६ । पृष्ठ २१८-२१६
४६. बिसं शालूकं शफको मुलाली । अ० ४.३४.५
५०. पैप्प० १६.३८.१
५१. वाराह० १४.६ । कौशिक० ८.१६
५२. तमशमयत्, तं शम्याः शमीत्वम् । मैत्रा० १.६.५
शमीमश्वत्थ आरुढः । अ० ६.११.१
५३. भाव० वटादि० ७२-७३ । पृष्ठ ३५८
५४. शरासः कुशरासो दर्भासः । ऋग्० १.१६१.३
शरमयं बर्हिर्भवति । मैत्रा० २.१.६
विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यम् । अ० १.२.१
५५. भाव० गुडूच्यादि १५०-१५१ । पृष्ठ २०६
५६. शाण्डदूर्वा व्यल्कशा । अ० १८.३.६
५७. भाव० गुडूच्यादि० १६४-१६८ । पृष्ठ २१३-२१४
५८. अथर्वपरि० ७०.१.६ से ६
५६. भाव० धान्य० १५-१६ । पृष्ठ ३६१
६०. बिसं शालूकं शफकः । अ० ४.३४.५
६१. सुकिंशुकं शल्मलिम् । ऋग्० १०.८५.२०
शल्मलिर्वृद्‌ध्या । यजु० २३.१३ । तैत्ति० ७.४.१२.१
६२. भाव० वटादि० ५४-५५ । पृष्ठ ३५३-३५४
६३. यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः । अ० ४.३७.४
६४. शिग्रवो यक्षवश्च । ऋग्० ७.१८.१६
६५. भाव० गुडूच्यादि० ६६-१०५ । पृष्ठ १८६ से १८८
६६. सिलाची नाम वा असि । अ० ५.५.१ से ६
६७. शीतिके शीतिकावति । ऋग्० १०.१६.१४ । अ०१८.३.६०
६८. उद्‌नः शीपालमिव वात आजत् । ऋग्० १०.६८.५ । अ० २०.१६.५
मधु परुष्णी शीपाला । अ० ६.१२.३
६६. तं त्वा वयं खनामसि ओषधिं शेपहर्षणीम् । अ० ४.४.१ से ८
७०. अथर्वपरि० ५.२.१ से ३ । पार० गृ० १.२१
७१. उत सोमस्य भ्रातासि । अ० ४.४.५
७२. अवैतु पृश्नि शेवलम् । अ० १.११.४
७३. दर्भः शोचिस्तरूणकम् । अ० १०.४.२
७४. श्यामा सरूपंकरणी । अ० १.२४.४
७५. श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे । यजु० १८.१२
श्यामाकं पक्वं पीलु च । अ० २०.१३५.१२
७६. भाव० धान्य० ७६ । पृष्ठ ३६६

**वेदों में निर्दिष्ट वनस्पतियाँ । शब्द २५१ से २८६**

१. संवननी समुष्पला । अ० ६.१३६.३

२. संस्कन्धमोज ओजसा । अ० १६.३४.५
३. संस्कन्दमोज ओजसा० ।
सं नया पत्न्या, योन्यां संस्कन्दासि ओषधे । पै० १६.४८.१३ से १६
४. नमामि शच्यागतं सचीनं विषदूषणम् । पैप्प० १.४४.२
५. सदंपुष्पे संदफले सदम् इन्द्राभिरक्षताम् । पैप्प० १३.१०.११
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे । अ० ४.२०. १ से ६
६. कौशिक सूत्र २८.७ । केशवपद्धति २८.७ (सदंपुष्पा संध्या प्रसिद्धा)
७. भाव० पुष्पादि० ५० । पृष्ठ २६२
८. सदंपुष्पे सदंफले सदम् इन्द्रामिरक्षताम् । पैप्प०१३.१०.११
९. दीर्घायुत्वाय सहसे मह्या अरिष्टतातये ।
सुपर्णो मह्यम् अब्रवीद् एतत् समक्तभेषक्तम्
एतत् पुरुषभेषजम् । पैप्प० १६.४०.३; २०.५४.६
१०. संवननी समुष्पला । अ० ६.१३९.३
११. श्यामा सरूपंकरणी । अ० १.२४.४
१२. बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् । अ० ८.६.१ से २६
१३. गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ । अ० ८.६.२०
१४. आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो । अ० ६.१६.१
१५. पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहः० । अ० ११.६.१५
१६. शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती । अ० ६.५६.१ से ३
१७. भाव० गुडूच्यादि० १३७-१३६ । पृष्ठ २०२ से २०५
१८. सहमानास्योषधे । यजु० १२.६६
जीवलां नघारिषां...त्रायमाणां सहमानाम्० । अ० ८.२.६
१९. सहस्येन भेषजेन दिव्येन शतपर्वणा । पैप्प० १६.२३.१ से ८
२०. तेन सहस्रकाण्डेन० । अ० २.७.३
२१. तां मे सहस्राक्षो देवः । अ० ४.२०.४
२२. विषाणा नाम वातीकृतभेषजी । पैप्प० १६.३१.१२
२३. शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्णः... दर्भः । अ० १६.३२.१
२४. ता मा सहस्रपर्ण्यो० । अ० ८.७.१३
२५. सहमानां सहस्वतीम्० । अ० ८.२.६
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति । ऋग्० १०.१४५.२
२६. अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः । अ० ८.७.१०
२७. निःसालां धृष्णुं धिषणम् । अ० २.१४.१
२८. महाभाष्य ३.३.१७; ६.१.६१
२९. भाव० वटादि० १६ से २१ । पृष्ठ ३४२
३०. सिलाञ्जालास्युत्तरा । अ० ६.१६.४
कौशिकसूत्र ५१.१६
३१. यामोषधीषु तां सुगन्धितेजने । मैत्रा० ३.८.५
३२. बृहद्० ७.७८ । मैत्रा० ३.८.५
३३. न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम । अ० ६.१३९.१
३४. शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत । ऋग्० १.१९१.३

३५. सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत् । ऋग्० ९.९२.६
या ओषधीः सोमराज्ञीः । यजु० १२.९२
सोमो वीरुधामधिपतिः । अ० ५.२४.७
३६. भावप्रकाश नि० परिशिष्ट पृष्ठ ५५१-५५२ एवं पृष्ठ २५८
३७. अश्वावतीं सोमावतीम् ऊर्जयन्तीम् उदोजसम् । ऋग्० १०.९७.७
३८. ओजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् । ऋग्० ३.५३.१९
३९. अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः । अ० ८.५.४
उत्तमो असि-ओषधीनाम् । अ० ८.५.११
४०. स्रेकपर्णाऽष्टीवन्ता० । मैत्रा० ४.१३.४ । काठक० १६.२१
४१. भाव० गुडूच्यादि० ७९-८० । पृष्ठ १७३-१७४
४२. सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु । अ० ६. ९६.३
४३. स्वधितिर्वनानाम् । ऋग्० ९.९६.६
४४. अथो हरितभेषजम् । अ० ४.९.३
४५. अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि । ऋग्० १.५०.१२
अथो हारिद्रवेषु ते० । अ० १.२२.४
४६. भाव० धातु० १२८-१३२ । पृष्ठ ३७७-३७८
४७. वनस्पतिर्हिरण्यपर्णः । यजु० २१.५६
४८. अथर्वपरि० १८.१.१६
हिरण्याक्षो मधुवर्णो० । पैप्प० २.७९.१ से ५
४९. ह्लादिके ह्लादिकावति । अ० १८.३.६०

●

## सहायक ग्रन्थ


१. चरकसंहिता, भाग १ और २, व्याख्या —पं० काशीनाथ शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी सन् १६८३

२. सुश्रुतसंहिता, भाग १ और २, व्याख्या —डा० अम्बिकादत्त शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी सन् १६८१, १६८२

३. अष्टाङ्गहृदयम्, व्याख्या —कविराज अत्रिदेव गुप्त, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी सन् १६८७

४. भावप्रकाशनिघण्टु, व्याख्या —पं० विश्वनाथ द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १६७७

५. अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन —डा० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर, वाराणसी १६८८

६. द्रव्यगुणविज्ञान, भाग ४, —आचार्य प्रियव्रत शर्मा, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी १६८४

७. अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र, —पं० प्रियरत्न आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि), सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, दिल्ली १६४१

८. वैदिक साहित्य में शल्यचिकित्सा —डा० रामजीत विश्वकर्मा, राहुल प्रकाशन, वाराणसी १६८६

६. Economy of Plants in the Vedas, —Rajiva Kamal, Common Wealth Publishers, New Delhi १६८८

# निर्देशिका (INDEX)

[सूचना : अंक पृष्ठबोधक हैं ।]

# भाषाविद् डॉ० कपिलदेव द्विवेदी की अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

- अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन
- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति
- संस्कृत व्याकरण और लघुसिद्धान्तकौमुदी
- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास
- प्रौढरचनानुवादकौमुदी
- रचनानुवादकौमुदी
- प्रारम्भिक रचनानुवादकौमुदी
- संस्कृत-निबन्ध-शतकम्
- राष्ट्र-गीताञ्जलिः
- आत्मविज्ञानम्
- अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन
- वेदों में राजनीतिशास्त्र
- वेदों में आयुर्वेद
- वेदों में विज्ञान
- शर्मण्याः प्राच्यविदः
- भक्ति-कुसुमाञ्जलिः
- The Essence of the Vedas
- A Cultural Study of the Atharvaveda

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर ( भदोही )